नाम

प्रस्तुत प्रवचन के '**शीर्षक**' का **नाम** है—**'नाम'**। दृश्यमान सृष्टि की विभिन्न विधाओं का नामकरण **'मानव'** द्वारा हुआ। विभिन्न प्राणी जगत, वनस्पतियों, फलों, पृथ्वी के असंख्य भूमिखण्डों, जल के विभिन्न स्रोतों, आकाश के सूर्य, चन्द्र आदि ग्रह-नक्षत्रों, वायु के आँधी, तूफान आदि विभिन्न रूपों, अग्नि की दावाग्नि, बड़वाग्नि, जठराग्नि, क्रोधाग्नि आदि विधाओं का नामकरण मानव ने ही **मानव-देह की अवचेतना में 'मैं'** शब्द के प्रकट होने पर किया। सम्पूर्ण महाब्रह्माण्ड जो साकार और निराकार दोनों रूपों में है, उसमें जो कुछ भी था, है और रहेगा उस सबका **'नामकरण'** मानव ने किया और मानव ही करेगा। यहाँ तक कि मानव को, मानव भी, मानव ने ही कहा। अन्य समस्त प्राणियों जलचर, नभचर, थलचर तथा समस्त जड़-चेतन चराचर जगत में विभिन्न नामकरण मानव द्वारा ही हुए। कोई ऐसा प्राणी या पक्षी जो आज तक किसी ने देखा न हो, तो उसका नामकरण भी मानव ही करेगा। नए-नए रोग प्रकट होते हैं, औषधियाँ बनती हैं, उनका नाम भी मानव ही रखता है।

ईश्वर को ईश्वर, परमात्मा, God, खुदा या अल्ला भी मानव ने कहा। जब मानव-शिशु पैदा होता है, तो वह कोई **'नाम'** लेकर नहीं आता। उसका ईश्वर प्रदत्त मात्र एक रूप होता है। सब शिशु के जन्म की बधाई देते हैं। अतः जो पैदा हुआ है, वह बेनाम या अनाम है। अन्ततः, अन्त (मृत्यु) का अन्त (अन्तान्त) होने अर्थात् देह के शव के पूर्णतः पंच महाभूतों में विलय होने पर जो **'भसम'** अविशेष प्रकट होता है, देह का वह पदार्थ अनाम के साथ अरूप

भी होता है। जन्म होते ही शैशव स्थिति में शिशु देह का मात्र एक रूप होता है और देहान्त होने पर **'शव'** स्थिति में रूप के साथ नाम भी रहता है। लेकिन उसी देह की **'भस्मी'** अनाम और अरूप अविशेष के रूप में दृश्यमान होती हुई, प्रकट होती है।

जन्म लेने वाला शिशु अनाम है, लेकिन विविध सम्बन्धों, देश, काल, धर्म, कर्म, लिंग, कुल, जाति और माया की सभी विधाओं से जकड़ा हुआ पैदा होता है। विभिन्न सम्बन्ध, धर्म, जाति, कुल, देश, रीति, रिवाज और असंख्य मर्यादाएँ व जीवन-मूल्य उस पर थोपे-थोपाए होते हैं। सम्बन्ध हैं, लेकिन नाम नहीं है। **'नाम'** बाद में रखा जाता है। जब मानव की बुद्धि परिपक्व हो जाती है, तो वह उसी नाम के साथ 'तद्‌नाम' हो जाता है। वह अनेक (अन्य एक) से स्वयं को पृथक् मान लेता है। अनेक और एक में Common **'एक'** है। क्योंकि एक है, तो अनेक हैं और अन्य एक (अनेक) में से कोई एक भी है तो देह रूप में एक **'मैं'** तो हूँगा ही। सम्पूर्ण संसार और युगों-युगान्तरों की समस्त सृष्टि देह रूप में मेरे **'एक'** के होने पर होती है, अन्यथा नहीं होती। मैं स्वयं को यदि अमुक (रूप)-अमुक (नाम) की देह मानकर समस्त प्रकट-अप्रकट सृष्टि को अपने से पृथक् मान रहा हूँ, तो मेरा, एक देह रूप में महत्त्व उस समस्त सृष्टि में नगण्य प्रायः है।

मुझे मेरे अनेक से पृथक् करने के लिए **'नाम'** रखा जाता है। उन अनेक (जो मेरे एक के होने पर, मेरी वजह से, मेरी एक देह की अवचेतना में प्रकट होते हैं) से पृथक् करते हुए मेरे समष्टिगत रूप को एक व्यक्ति बना दिया जाता है। किसी के चार पुत्र हैं, तो उन सबका **'नाम'** एक ही नहीं रखा जाता। एक दूसरे से पृथक् करने के लिए अलग-अलग नाम रखे जाते हैं। एक के साथ जो अनेक हैं, उनसे एक को अलग करने के लिए **'नाम'** रखा जाता है। एक प्रकार से उसके अनेक की **'उपेक्षा'** करते हुए **'नाम'** रखा जाता है, जिनकी **'अपेक्षा'** से देह रूप में उस एक का अस्तित्व है। बुद्धि परिपक्व होते ही उन्हीं **अनेकों से और अनेकों में** उसे अपने एक **'नाम'** की चाहत होती है। कुछ गलत हो जाए, तो वह कहता है मेरा नाम

मत लेना और यदि जय-जयकार हो जाए तो अपना **'नाम'** सर्वोपरि चाहता है। यह प्रत्येक मानव का सहज स्वभाव है। कोई कक्षा के सौ छात्रों में प्रथम आता है, तो वह 99 की **'अपेक्षा'** आता है। यदि कक्षा में एक वही हो, तो उसके प्रथम आने का महात्म्य ही क्या है? वह एक फेल भी होता, तो भी प्रथम ही आता। एक को **प्रथम** लाने के लिए ९९ सहायक हुए। कई देशों की टीमें हारती हैं, तो एक देश की टीम प्रथम आती है। अतः एक और अनेक **'एक'** ही सत्ता के असंख्य नाम-असंख्य रूप हैं।

एक योद्धा को लड़ने वाले, व्यापारी को ग्राहक, डॉक्टर को मरीज़, अध्यापक को छात्र, गुरु को शिष्य, मालिक को नौकर, भिखारी को भीख देने वाले, माँ को बेटा या बेटी, पिता को पुत्र या पुत्री, सेवा करने वाले को सेवा लेने वाले अनेक (अन्य एक) चाहिएँ। जब एक देह के साथ **'मैं'** लगेगी, तभी उसका देह सहित जगत सक्रिय होगा। अन्यथा हो ही नहीं सकता। एक डॉक्टर सोया हुआ है और मरीज़ आ गया, तो सुषुप्तावस्था में **'मैं'** शब्द प्रकट नहीं होता। अतः डॉक्टर, मरीज़ के किसी काम का नहीं है, डॉक्टर को उठाना पड़ेगा। डॉक्टर उठा तो मरीज सो गया। सोया हुआ मरीज़, मरीज़ भी नहीं है। **'मैं'** लगते ही मैं देह की अवचेतना में आया, तो मेरी देह अपने जगत सहित सक्रिय हुई। **'मैं'** जीवात्मा का द्योतक शब्द है। जब तक एक देह के साथ मैं नहीं लगता, तब तक देह और उसका जगत निष्क्रिय और अर्थहीन रहते हैं। सबकी **'मैं'** एक ही है, चाहे कोई छत्रपति सम्राट हो चाहे भिखारी हो, व्यापारी हो या ग्राहक, अध्यापक हो या छात्र, डॉक्टर हो या मरीज़, माँ हो या बेटा-बेटी, मालिक हो या नौकर। **'मैं'** एक क्यों है? क्योंकि **'मै'** (जीवात्मा) एक ही है।

मानव-देह स्वयं में यथार्थ है और यथार्थ देह ही ईश्वरीय कलाओं के दर्शन, उन समस्त बहुआयामी कलाओं के असंख्यामी प्रदर्शन, उस अदृश्य कलाकार (ब्रह्मात्मा) के दिग्दर्शन एवं स्वयं जीवात्मा का प्रतिनिधित्व करेगी। **अन्यथा 'नहीं',** अन्यथा जो होगा वह '**अन्य अथाह**' है। इसमें पतन एवं अधोगति भी असीम है। अवनति एवं अधोगति से आरोहण के

लिए मानव-देह के यथार्थ से अवगत होना अत्यावश्यक है। मानव-देह के यथा **'अर्थ'** से विमुखता में निरर्थ, व्यर्थ और अनर्थ की भटकन एवं श्रंखलाएँ भी अनंत हैं। **'अर्थ'** से जब ऊर्ध्वगमन या आरोहण होता है, तो अर्थ, धर्म, काम और अन्ततः मोक्ष के सोपानों पर ऊर्ध्वगति होती है। जो मात्र कृपा साध्य है। कृपा हो जाए, तो अर्थ से सीधा मोक्ष भी हो सकता है। **'अर्थ'** आधार है।

परमात्मा अदृश्य है और वह अदृश्य '**कलाकार**', बहुआयामी कलाओं का स्वामी स्वयं में **कलातीत एवं कालातीत** है। युगों-युगान्तरों में विस्तृत पंच-महाभूतों की कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों की निराकार व साकार सृष्टि मायिक है, जो उस स्रष्टा की बहुआयामी कलाओं का असंख्यामी प्रदर्शन है। सम्पूर्ण महाब्रह्माण्ड का दिग्दर्शन करने से प्रतीत होता है, कि इसका निर्माता, पालनकर्ता और संहारकर्ता कोई बहुत अद्वितीय व अद्भुत कलाकार है। उसकी कलाएँ स्वयं में अदृश्य हैं। जब उनका प्रदर्शन होता है, तो कलाएँ दृश्यमान होती हैं। दृश्यमान में देखना, सुनना, चखना, सूँघना, स्पर्श करना सभी विधाएँ हैं। इस समस्त मायिक प्रपंच का एक दृष्टा जीवात्मा है, जो स्रष्टा परमात्मा की भाँति अदृश्य है। स्रष्टा समस्त प्रकृति सहित कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों का निर्माणकर्ता, पालनकर्ता और संहारकर्ता है और इन तीनों विधाओं का दृष्टा जीवात्मा है।

स्रष्टा और **दृष्टा** दोनों **अदृश्य** हैं, यह बहुत बड़ा रहस्य है। सर्वोपरि और सर्वोत्कृष्ट शक्तियाँ परमात्मा ने अपने हाथ में रखी हैं, क्योंकि परमात्मा उस दृष्टा जीवात्मा का भी दृष्टा है। कृपया एकाग्र करें। स्रष्टा न केवल स्रष्टा है, बल्कि अपनी ही विधा दृष्टा (जीवात्मा) का भी दृष्टा है। ब्रह्मात्मा स्वयं में निर्विकल्प है। उसमें उसकी आद्याशक्ति (इच्छाशक्ति) ने एक संकल्प पैदा किया। वह आद्याशक्ति उस विरक्त एवं निर्विकल्प ब्रह्म की आसक्ति है। ब्रह्म में अपनी कोई इच्छा नहीं है, लेकिन **'इच्छाशक्ति'** है। वही उसकी आसक्ति है, उस ने अपने विरक्त प्रभु में एक संकल्प पैदा किया—'एकोऽहम् बहुस्याम्' और ब्रह्मात्मा ने आनन्दमय प्रदर्शन के लिए

अदृश्य में ही अपनी दो विधाएँ प्रकट कीं—**परमात्मा** व **जीवात्मा**। परमात्मा ने उस आनन्दमय खेल में स्रष्टा का कार्यभाग लिया और जीवात्मा को दृष्टा का भाग दिया। दोनों स्वयं में अदृश्य हैं। यह दोनों का अदृश्य अद्वैत में द्वैत सा है।

इस अदृश्य दृष्टा को उस स्रष्टा कलाकार का प्रशंसक होना आवश्यक है। वह स्वयं स्रष्टा न होते हुए भी स्रष्टा के भावों, विचारों एवं उसकी समस्त कलाओं के रहस्यों का मर्मज्ञ होता है। इसीलिए उसे स्रष्टा द्वारा रचित आगामी दृश्यों का अति कौतूहल होता है। कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों के प्रदर्शन के दृष्टा (जीवात्मा) को उस समस्त प्रकट-अप्रकट, ज्ञात-अज्ञात परिदृश्य और बहुआयामी कलाओं के स्वामी (स्रष्टा) के साथ सतत् जुड़ा रहना अत्यावश्यक है। उसे यह ज्ञान होना आवश्यक है, कि प्रदर्शन की तीनों (निर्माण, पालन व संहार) विधाओं को देखते हुए हर समय मुझे भी कोई देख रहा है।

स्रष्टा अदृश्य एवं निर्विकल्प है, उस ब्रह्मात्मा के अभावमय एवं आनन्दमय मानस में आद्याशक्ति की इच्छा से जो 'एकोऽहम् बहुस्याम्' समभाव उभरा, उससे सर्वप्रथम 'ॐकार' नाद प्रकट हुआ। ॐ सम्पूर्ण सृष्टि का बीज है। बिन्दु संयुक्तम् ॐ भगवान शंकर का स्वरूप है। **'अ उ म' से बना नाद 'ॐ' है।** दृष्टा जीवात्मा दृश्यमान साकार व निराकार अलौकिक एवं आलोकित सृष्टि के अवलोकन, प्रशंसा एवं वाह-वाह करने के लिए है। इसलिए उस अदृश्य दृष्टा (जीवात्मा) का सम्पूर्ण महाब्रह्माण्ड में जो शब्द-रूप में प्रकाट्य होता है, वह शब्द **'मैं'** है। **'ॐ'** और **'मैं'** दोनों **'शब्द ब्रह्म'** हैं। प्रश्न उठता है, कि जब ॐ नाद रूप में सृष्टि का बीज है, तो सृष्टि के अथाह शब्द भण्डार से मात्र **'मैं'** ही जीवात्मा का द्योतक एवं प्रतिनिधि शब्द क्यों है?

पूरे महाब्रह्माण्ड में मानव-शिशु के उत्पन्न होने पर उसके रुदन के साथ पहला शब्द **'मैं'** प्रकट होता है। उस रुदनपूरित **'मैं' 'मैं'** से **'मैं'** शब्द की उत्पत्ति हुई। जानवरों के बच्चों के पैदा होते समय कुछ पृथक् शब्द निकलते हैं, लेकिन मानव शिशु रोता हुआ **'मैं' 'मैं'** करके ही पैदा होता है।

भिन्न-भिन्न प्राणी देहों के जन्म के समय भिन्न-भिन्न शब्द प्रकट हुए और मानव-देह **'मैं' 'मैं'** शब्द के साथ प्रकट हुई। उस शब्द को पहचानने वाला और मान्यता देने वाला भी **'मैं'** मानव ही था। उसने मानव देह के मुख से पहली बार **'मैं'** शब्द सुना। जिस शिशु ने जन्म लेते समय 'मैं' शब्द उच्चारित किया, उसे कोई ज्ञान नहीं था, लेकिन जिसने सुना, उसने पहला शब्द 'मैं' सुना। 'मैं' शब्द के प्राकट्य से सारे शब्द और नाद प्रकट हुए और जीवात्मा ने मानव-देह का रूप देखा, जो पहले अनाम (नामरहित) था। उसने अपने कानों से पहला शब्द 'मैं' तब सुना होगा, जब वह 'उठा हुआ' अवचेतना में होगा। उसने बेनाम-अनाम मानव-देह रूपी आकार से सर्वप्रथम **'मैं'** शब्द सुना और मान लिया, कि ये जो आकार है, वह **'मैं'** हूँ। अन्य प्राणी जगत के बच्चे पैदा होते समय क्या बोलते हैं, यह भी मानव ने **'मैं'** शब्द लगने के बाद देखा और सुना। जानवर और अन्य मानवेतर प्राणी जगत आत्म-तत्त्व (मैं) को न जानते हैं और न जान सकते हैं।

'मैं' लगने के बाद मानव-देह की क्रियाशीलता होने पर आत्मतत्त्व को **'मैं'** शब्द रूप में मानव ने ही जाना। इसलिए सर्वप्रथम जीवात्मा मानव-देह के ही रूप के साथ तद्‌रूप हो गया। फिर उन रूपों के नाम रखकर रूप का निर्धारण कर लिया गया। **'मैं'** को रूप के साथ **'नाम'** में निर्धारणा हो गई, यह **'सन्देह'** था। सन्देह में भी **'मैं'** (आत्मतत्त्व) का वर्चस्व था; लेकिन 'मैं देह हूँ' के भाव में **'नाम'** और **'मैं'** अलग होते हुए भी एक हो गए। आप कौन ? कि "**मैं** सुनील हूँ" अथवा **'मैं'** ही सुनील हूँ अथवा 'सुनील मैं ही हूँ', 'मैं सुनील ही हूँ।' **'अमुक-अमुक ही 'मैं' हूँ'** यह वक्तव्य कोई देह नहीं देगी। क्योंकि **'मैं'** आत्मतत्त्व द्योतक शब्द है, जो एक नाम-एक रूप से बँधा नहीं है। पहचानने वाले **'मैं'** (जीवात्मा) ने किसी भी मानव को नाम-रूप में पहचाना और इसकी तद्‌रूपता मात्र मानव-देह के आकार के साथ नाम-रूप में हो गई।

भारतीय संस्कृति में ऐसा ही हुआ। मानव-देह ईश्वरीय सुकृति है। इसके साथ **'मैं'** (जीवात्मा) को सन्देह हो गया, कि 'मैं देह हूँ' तो संस्कृति

विकसित हुई। सम्पूर्ण मानव-सभ्यता का विकास भारत में ही हुआ और समस्त संस्कृति सन्देह में पली, बढ़ी तथा विकसित हुई। ईश्वरीय सृष्टि की सर्वोत्कृष्ट सुकृति (मानव-देह) और **'मैं'** (जीवात्मा) के साथ तद्रूपता सी के सन्देहवश संस्कृतिगत विकास विभिन्न आयामों में होता रहा। **बिन्दु संयुक्तम् स सुकृति =संस्कृति। 'मैं'** शब्द ज्यों का त्यों रहा, देह पल-पल परिवर्तनशील थी। देह के साथ समय-समय भिन्न-भिन्न जगत था। नाम बदलते रहे, परिवार, कुल, नाम, पीढ़ी दर पीढ़ी सन्देह में जीव-सृष्टि पनपने लगी। पाश्चात्य सभ्यता में **'मैं'** शब्द प्रकट होते ही उस रूप व आकार को 'Man' (मैन) कह दिया गया। वहाँ **'मैं'** और देह रूपी आकार मैन (Man) रूप में एक हो गए। उन्होंने मैं को I कहा अतः अवचेतना में प्रकट **'मैं'** शब्द भी **'मैं'** न (Man) हो गया। वहाँ आत्मतत्त्व (मैं) के अनाच्छादन की सम्भावनाएँ ही नहीं रहीं। इसलिए वह जगत, मात्र देह और देह मात्र तक सीमित है।

मानव-देह के सान्निध्य में **'मैं'** शब्द के प्रकाट्य के साथ मानव ने विभिन्न प्राकृतिक रूपों, पहाड़ों, नदियों, वनस्पतियों आदि के भी नाम रखे। कवियों ने कविताओं में अपने नाम डाल दिए। डॉक्टरों, वैज्ञानिकों ने दवाइयों, बीमारियों के नाम रख दिए। बुद्धि का विकास होता रहा। मानव ने, मानव-देह को **'मैं'** माना, मैं और देह के रूप के साथ तद्रूपता के बाद सबको नाम दिए। अतः पंच-महाभूतों की समस्त सृष्टि की पहचान अवचेतना में है। सम्पूर्ण प्रदर्शन में नामकरण सन्देह में है, क्योंकि सभी नाम मानव ने 'मैं देह हूँ' के सन्देह में रखे हैं। जब कभी इष्ट कृपा, सद्गुरु कृपा से इस सन्देह (मैं देह हूँ) में सन्देह हो जाए, कि **'मैं'** देह कैसे हुआ ? यह देह मुझे कब मिली, क्यों मिली, कब तक रहेगी, कब कैसी स्थिति में होगी, किस स्थान पर किस समय क्या रूप दिखाएगी, आज क्या होना है, कल मैं हूँगा या नहीं, कल जो कुछ हुआ, क्यों, कैसे हुआ? मैं कुछ नहीं जानता। यह देह किसी के द्वारा चलाई जा रही है। जब **'मैं'** (जीवात्मा) को देह-चिन्तन एवं स्वाध्याय करते-करते निःसन्देह सन्देह का ज्ञान हो गया, कि देह है, मैं हूँ, लेकिन मैं देह नहीं हूँ, तो उसे जिज्ञासा हुई, कि मैं कौन हूँ ? उस समय देह धारणा

(मैं देह हूँ) छूटने लगती है और देह **अवधारणा** (मैं देह नहीं हूँ) बन जाती है। साथ ही **'मैं'** और देह में दरार पड़नी शुरू हो जाती है।

मैं बहुत ही सरल उदाहरण देकर इस परम सद् को और स्पष्ट करूँगा। आपने बिल्डिंग देखी होंगी। उसमें ग्राउन्ड फ्लोर, फर्स्ट फ्लोर, सैंकण्ड फ्लोर आदि होते हैं। किसी-किसी बिल्डिंग में बेसमैन्ट भी होता है। बेसमैन्ट उस बिल्डिंग की अवधारणा है। फर्स्ट, सैकेण्ड फ्लोर की गणना का आधार ग्राउन्ड फ्लोर है। बिल्डिंग के पूर्व, पश्चिम, उत्तर व दक्षिण में कुछ भी भिन्न-भिन्न हो सकता है, लेकिन बेसमैन्ट की चारों दिशाओं में मिट्टी ही मिट्टी होती है। नीचे मिट्टी है और ऊपर बिल्डिंग है। कुल बिल्डिंग का आधार बेसमैन्ट है और बेसमैन्ट अपने में पूर्ण है तथा बिल्डिंग की अवधारणा है। जैसे ही जीवात्मा को निस्सन्देह सन्देह का ज्ञान हो जाता है, कि मैं देह नहीं हूँ, तो वह पीढ़ी-दर-पीढ़ी जीव-सृष्टि की बिल्डिंग के बेसमैन्ट में आ जाता है। उसकी देह धारणा का रूपान्तरण अवधारणा में हो जाता है। देहधारणा को इस अवधारणा का धरातल मिल जाता है।

किसी भी देह में देह का प्रतिनिधित्व **'रूप'** (चेहरा) करता है। **'रूप'** का निर्धारण **'नाम'** द्वारा किया जाता है। किसी का भी परिचय उसके चेहरे को सम्बोधित करते हुए कराया जाता है, कि ''अमुक (रूप)-अमुक (नाम) से मिलिए''। चेहरा (रूप जो **'नाम'** द्वारा निर्धारित है) पाँचों ज्ञानेन्द्रियों (नाक, जिह्वा, त्वचा, नेत्र, कान) द्वारा क्रमशः पाँचों महाभूतों (पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश) का प्रतिनिधित्व करता है। जब **'रूप'** का निर्धारण **'नाम'** से हो जाता है, तो उसके साथ **'सब कुछ'** निर्धारित हो जाता है। जितना भी निर्धारण है, उसका आधार **'नाम'** है। विभिन्न भौतिक सम्बन्ध, धन-सम्पदा, भाव-स्वभाव, तथाकथित डिग्रियाँ, पद-प्रतिष्ठा, उन्नति-अवनति, देश-विदेश, धर्म-कर्म-कर्तव्य, शुभ-अशुभ, पाप-पुण्य, जाति, कुल, गोत्र आदि-आदि **'नाम'** द्वारा निर्धारित होते हैं। यहाँ परम रहस्यमय एवं विशेष रूप से चमत्कारिक **'सद्'** यह है, कि किसी भी **नाम** का अपना कोई **'नाम'** और अपना कोई **'रूप'** नहीं है। प्रत्येक रूप का अपना-अपना नाम है, लेकिन

नाम स्वयं में **'अनाम'** एवं **'अरूप'** है। कृपया एकाग्र करिए।

प्रत्येक देह विशेष और विशेष देह में रूप का नाम स्वयं में **'अनाम'** और **'अरूप'** होता है। एक ही **'नाम'** के हज़ारों लोग होते हैं। **'मैं'** (जीवात्मा) की तरह किसी भी नाम का अपना कोई रूप नहीं होता और साथ ही स्वयं में किसी भी **'नाम'** का अपना कोई एक नाम भी नहीं होता। **'रूप'** का नाम है और **'रूप'** नाम से बँधा होता है लेकिन **'नाम'** किसी एक रूप से बँधा हुआ नहीं है और नाम का अपना कोई निर्धारित नाम नहीं है। भारतीय तत्त्वज्ञों, मनीषियों और योगियों ने **'नाम'** की इसी विशेषता का लाभ उठाते हुए अध्यात्म के गहन और अति दुर्लभ रहस्यों का ज्ञान प्राप्त किया। जिस प्रकार दृष्टा जीवात्मा स्वयं में अनाम और अरूप है, उसी प्रकार **'नाम'** स्वयं में **'अनाम'** और **'अरूप'** है। जीवात्मा भ्रमवश, अज्ञानवश पंच-महाभूतों में ही विलय हो जाने वाली परम रहस्यमयी ईश्वरीय सुकृति मानव-देह के साथ तद्‌रूप **सा** हो गया। वह देह अपने जगत सहित जीवात्मा के प्रतिनिधि एवं द्योतक शब्द **'मैं'** के प्रकट होने पर ही सक्रिय घोषित होती है। आत्म तत्त्व (मैं) देह के नाम द्वारा निर्धारित रूप के साथ तद्‌रूप सा होने में चेतना से अवचेतना में आ गया। इससे **मानव-देह** का **यथा अर्थ (यथार्थ), 'मैं'** (जीवात्मा) का **आत्म स्वरूप** एवं **ईश्वर** का **ईश्वरत्व** तीनों आच्छादित हो गए। वह देह जो जीवात्मा को अर्थ से धर्म, काम, मोक्ष के पुरुषार्थ सोपानों पर ऊर्ध्व गति के लिए लब्ध हुई थी, अपना **'अर्थ'** (भस्मी या विरक्ति) खोकर निरर्थ, व्यर्थ और अनर्थ की असीम व अनन्त अधोगति में स्वयं भी भटकने लगी तथा इसे भी जन्मों-जन्मान्तरों की जीव-सृष्टि के कल्पित, मिथ्या एवं निराधार काल-चक्र में भटकाने लगी। मानव-देह के रूप का नाम में निर्धारण होने से अजन्मा, व अजर-अमर एक जीवात्मा देह के साथ तद्‌रूपता में जन्म-मृत्यु, जरा-रोग, कर्मबन्धन, काल-बन्धन एवं प्रारब्ध की अनंत श्रृंखला में युगों-युगान्तरों से भटक रहा है।

देहभाव (मैं देह हूँ) में मानव-मानस असंख्य काल्पनिक व स्वनिर्मित चिन्ताओं एवं मोह के जाल में जकड़ा रहता है, कि मेरे बाद मेरी अमुक

प्रौपर्टी, धन-सम्पदा, विभिन्न सम्बन्धियों आदि-आदि का क्या होगा? अर्थात् **'नाम'** से सम्बन्धित असंख्य विधाएँ मन-मस्तिष्क को घेरे हुए इसके आनन्दमय एवं अभावमय स्वरूप को आच्छादित किए रहती हैं। जबकि जिस देह का नाम रखा जाता है, वह मृत्योपरान्त अपने तथाकथित सब कुछ सहित भस्मी बनते हुए पंच-महाभूतों में विलय हो जाती है। जीवन-काल में इस नाम को जो स्वयं में **'अरूप'** और **'अनाम'** है, उसे रूप से हटा कर दृश्यमान नाम-रूप की देह के **'अरूप'** और **'अनाम'** दृश्यमान स्वरूप (भस्मी) के साथ जोड़ना ही शाश्वतता, अमरत्व और यथार्थ है। यही व्यक्तिगत मानवीय कर्म है। Transfer of name from **अरूप** (मैं) to **अरूप** (भस्मी) through **रूप** (देह)। इसके बाद वह **'नाम'** तथाकथित रूप का नाम होगा और अमुक रूप का तथाकथित प्रतिनिधित्व करेगा। लेकिन वह **'नाम'** स्वयं में अरूप, अनाम एवं अदृश्य जीवात्मा का होगा। सद्गुरु कहता है, कि ''जीवन-काल में मानव-देह का सदुपयोग मात्र यही है, कि जिस रूप को **'नाम'** में निर्धारित किया है, उस नाम (जो स्वयं में अरूप और अनाम है) को देह के ही अनाम और अरूप स्वरूप पर प्रस्थापित कर दे। यही तेरे हर **'रूप'** की सार्थकता है। इसी से तेरा आत्मत्व और अमरत्व जाग्रत होगा।'' कृपया एकाग्र करें, मैं सविस्तार वर्णन करूँगा।

मानव-देह रूपी प्रश्न का अर्थ (उत्तर) प्रश्न (देह) में ही समाहित है, लेकिन अर्थ इसके अदृश्य होने पर दृश्यमान होकर प्रकट होता है। प्रत्येक सारगर्भित प्रश्न में उसका सारगर्भित उत्तर होता है और प्रश्न के दौरान उत्तर या अर्थ अदृश्य होता है। प्रश्न हल करने वाला यदि सारगर्भित और **'स धि'** (बुद्धि सहित) हो, तो उस **दृश्यमान प्रश्न से** अदृश्य अर्थ (उत्तर) को निकालता है। अर्थ निकालने के बाद अर्थ (उत्तर) दृश्यमान हो जाता है और प्रश्न अदृश्य हो जाता है अथवा प्रश्न का कोई महात्म्य नहीं रहता। प्रश्न में जो स्वयं में अदृश्य अर्थ है, उसे हल करने से पूर्व यदि उस अर्थ का ज्ञान हो जाए तथा उसे आत्मसात् कर लिया जाए, तो प्रश्न बहुत सरलता एवं सहजता से हल किया जा सकता है। तब प्रश्न हल करने में गलती नहीं

होती और अगर गलती होती भी है, तो तुरंत उसका आभास हो जाता है। प्रश्न हल करने वाला शीघ्र ही सतर्क होकर गलती का निराकरण कर लेता है। जीव-सृष्टि में जीवात्मा की जब तक यह मान्यता रहती है, कि 'मैं देह हूँ', तब तक उसे ज्ञान नहीं होता, कि मानव-देह एक प्रश्न है। जीव अपने ही प्रश्न निर्मित करता है और उनके अर्थ भी उसके अपने होते हैं। उसके अर्थ को जब कुछ लोग मान लेते हैं, तो वह तथाकथित सफल व्यक्ति कहा जाता है। कुछ समय वह चर्चा का विषय बना रहता है, जिसे वह अपनी तथाकथित कर्मठता के फलस्वरूप हुई उन्नति मान लेता है। लेकिन हर उत्तर या अर्थ स्वयं में अनेक प्रश्नों को लिए हुए प्रकट होता है।

जीवन हमारे लिए प्रश्नों का जाल बना हुआ है। हर प्रश्न का हम हल खोजते हैं और एक भविष्य खड़ा करते हैं। यह करेंगे, तो ऐसा हो जाएगा। वह हो भी जाता है। उसके बाद असंख्य प्रश्न और खड़े हो जाते हैं। इसी **'उधेड़-बुन'** में देह की अवधि समाप्त हो जाती है और उधेड़-बुन की मानसिकता लिए जीवात्मा पुनः देह धारण करता है। इसी उधेड़-बुन में जन्म-दर-जन्म निरर्थक, व्यर्थक और अनर्थक बीतते रहते हैं। मानव-जीवन के समस्त दुःख, रोग, कष्ट, विपत्तियाँ इसी अधोगति में हैं। उधेड़-बुन में प्रश्नों को उत्पन्न करना और उनके उत्तर पाकर कुछ क्षण अस्थाई प्रसन्नता के बाद फिर असंख्य प्रश्नों में उलझ जाना, वास्तविक मानव-जीवन नहीं है।

मानव-जीवन एवं मानव-देह स्वयं में एक प्रश्न है, कि 'देह काहे के लिए है?' मैं देह नहीं हूँ, देह है, मैं हूँ, देह मेरे (जीवात्मा के) द्योतक 'मैं' शब्द द्वारा अपने जगत सहित समय-समय पर प्रकट होती है। देह का जन्म होते मैंने नहीं देखा। 'मैं देह हूँ' यह मेरा सन्देह था। मुझे सद्‌गुरु कृपा से निस्सन्देह सन्देह का ज्ञान हो गया, कि मैं देह नहीं हूँ। **'मैं'** कौन हूँ और देह क्या है, कौन है, क्यों है? 'मैं' अदृश्य हूँ, निराकार- साकार से परे हूँ, फिर **'मैं'** देह के साथ तद्‌रूप सा भी क्यों हुआ और मानव-देह के साथ **ही** तद्‌रूप क्यों हुआ? इसका मुझसे और मेरा इससे सम्बन्ध क्या है? ये असंख्य प्रश्न जिज्ञासा, हूक व बेचैनी बनकर जब कोटि-कोटि जीवों की जीव-सृष्टि में

भटकते साधक 'जीव' को तड़पाते हैं, तो **'मैं'** और **'देह'** में दरार पड़ जाती है। दोनों अपने-अपने यथार्थ एवं सद् से अवगत होने के लिए परस्पर **'संधि'** कर लेते हैं। मानव-देह को ही प्रभु ने अपनी चेतन बुद्धि एवं आनन्दमय मन से नवाज़ा है, ताकि दोनों के परस्पर समन्वय का प्रकाट्य सच्चिदानंद की सृष्टि के प्रदर्शन में सद् रूप में दर्शित हो।

मैं स्वयं को खोजना और पाना चाहता हूँ, यह वक्तव्य भी मैं मानव-देह के सन्दर्भ और उसकी साक्षेपता में ही दे सकता हूँ। आत्म तत्त्व (मैं) को देहत्व की सिद्धि करनी होगी। क्योंकि देह के साथ तद्रूपतावश **'मैं'** (जीवात्मा) अपने पद से च्युत होकर सन्देह (मैं अमुक-अमुक हूँ) में नाम-रूप की देह में एक संकीर्ण व तुच्छ सा जीव बनकर चेतना से अवचेतनामय अधोगति में भटक रहा हूँ। इसी कारण जीवात्मा (**मैं**) का विशुद्ध सच्चिदानंद स्वरूप आच्छादित हो गया तथा मानव-देह भी अन्यार्थ होती हुई अपना सर्वव्यापी स्वरूप खो बैठी। **'मैं'** (जीवात्मा) और मानव-देह दोनों की चमक आच्छादित हो गई। 'मैं देह हूँ' के सन्देह में उत्कृष्टतम ईश्वरीय चेतना युक्त बुद्धि अवचेतन हो गई तथा ईश्वरीय अभावमय, आनन्दमय मानस का आनन्द लुप्त सा हो गया। दोनों में परस्पर समन्वय के अभाव में अवचेतन बुद्धि से **'मैं'** देह व जगत से सम्बन्धित विभिन्न दृश्यमान विधाओं के सुखों में उस आनन्द को खोजने लगा। इस सन्देह (मैं देह हूँ) में मेरी हर सोच और भाव In doubt रहा, मेरा प्रत्येक तथाकथित कर्म Doubtful एवं हर प्राप्ति अथवा खोना full of doubts रहा। मैं कर्म की परिभाषा भूल गया। मैंने विचार ही नहीं किया, कि मेरा कोई कृत्य निजी अथवा व्यक्तिगत है ही नहीं। जैसे ही मैं अपनी देह की अवचेतना में आता हूँ, मुझे सन्देह हो जाता है, कि मैं अमुक (रूप) अमुक (नाम) हूँ, उसी समय मेरा आनन्द खो जाता है। मेरी देह के साथ-साथ स्वतः एवं मेरी उस समय की मानसिकता के अनुसार जो जगत प्रकट होता है, उससे मैं स्वयं को पृथक् मान लेता हूँ। फिर उसी जगत **से** और उसी **में** अपनी प्रशंसा व अपना नाम चाहता हूँ।

देह में, देह का प्रतिनिधित्व रूप यानि चेहरा करता है। रूप को नाम में निर्धारित कर मैं नाम-रूप की देह पर आधारित असंख्य निर्धारणाओं के स्व-निर्मित मिथ्या माया जाल में उलझ गया। नाम को जाति, कुल, धर्म, देश, काल, सम्बन्ध, लिंग, दोस्त, दुश्मन, पद, प्रतिष्ठा, कर्तव्य, समाज, मर्यादाओं, रीति, रिवाजों, परम्पराओं, धारणाओं, मान्यताओं में पुनः पुनः निर्धारित कर अपने ही बनाए मकड़जाल में फँसा हुआ असमर्थ, असहाय एवं विवश हो गया। स्वयं को एक नाम का व्यक्ति मानकर मैं अपने ही उस जगत से अलग सा अकेला हो जाता हूँ, जो मेरी देह के साथ-साथ, स्वतः मेरी समय-समय की मानसिकता के अनुसार प्रकट होता है और सतत् परिवर्तित होता रहता है। यह प्रकट जगत भी दो प्रकार का होता है–

1. **प्रकट-प्रकट**–जो मेरे सम्मुख देह व जगत बनकर दृश्यमान होता है।

2. **अप्रकट-प्रकट**–जो विभिन्न भावों के रूप में मेरी ही उस समय की मानसिकता के अनुसार अदृश्य रूप से मेरे मानस में भूत अथवा भविष्य बन कर दृश्यमान होता है ।

समस्त सन्देह की श्रृंखलाओं से मुक्ति के लिए जीव सद्‌गुरु कृपा एवं निर्देशन से देह के साथ **'संधि'** की **'युक्ति'** पाता है और अपने **सन्देह** (मैं देह हूँ) से **'मुक्ति'** चाहता है। यहाँ इसकी अवचेतना में चेतना का स्तर बढ़ने लगता है और चेतना के बढ़ते हुए स्तर का यह सदुपयोग करता है। इसी को **'संधि' (स धि)** कहा गया है। जिसमें यह **बिंदु संयुक्त स देह** (संदेह) को **बिन्दु संयुक्तम् स धि** (संधि) में रूपान्तरित करता है, ताकि 'मैं देह हूँ' इस संदेह से मुक्त हो सके। इसमें वही देह जो इसे सन्देह में भटका रही थी, अपनी समस्त शारीरिक, बौद्धिक एवं मानसिक शक्तियों के साथ इसकी सहायक होनी शुरू हो जाती है। यह भी देह को साथ लेकर चलता है। देह की समस्त सम्भावित सम्भावनाओं, भावनाओं और अवस्थाओं का भाव से उल्लंघन करता है। अन्ततः भावों में ही देह को देह की अवधि के समाप्त होने पर देह के अन्तान्त (भस्मी) तक ले जाता है। जहाँ पंच-महाभूतों की देह पंच-महाभूतों में विलय होते हुए अदृश्य होकर अपने में ही समाहित विरक्ति

को दृश्यमान अविशेष, भस्मी रूप में प्रकट कर देती है। देह का यह **'अर्थ'** स्वयं भी देखना चाहता है तथा देह को भी दिखाना चाहता है। अन्ततः देह रूपी प्रश्न का अर्थ या उत्तर 'अविशेष' रूप में इसे मिल जाता है।

युगों-युगान्तरों में देह विशेष (नाम) और विशेष देहें (देह व देहों की विभिन्न अवस्थाएँ, व्यवस्थाएँ, स्वभाव, धर्म-कर्म, योजनाएँ, परियोजनाएँ, प्रणालियाँ, गतिविधियाँ, कार्यक्रम, गुण-अवगुण आदि) हुई हैं। देह विशेष और विशेष देहों का अविशेष (भस्मी) एक ही है। वहाँ न देह विशेष होती है और न विशेष देह होती है तथा देह भी नहीं होती। उस अविशेष का नाम **'भसम'** है। जीव-कोटि में जीवात्मा देहार्थ (देह के लिए) जीवन-दर-जीवन ढोता है। जब संधि करता है, तो 'देह काहे के लिए है' देह का अर्थ क्या है' ? केवल इसी लक्ष्य को सम्मुख रख जीवन जीता है। वह जानता है, कि मैं अवधि से परे हूँ और देह की अवधि है। देह नहीं थी, तब भी मैं था और देह न रहने पर भी, मैं रहूँगा।

'मैं' शब्द में जीवात्मा का प्रकाट्य किसी देह की सापेक्षता में ही होता है। 'मैं देह हूँ', मैं हूँ, 'मैं देह नहीं हूँ' और 'मैं कौन हूँ? कहने के लिए देह चाहिए। 'मैं था', 'मैं हूँ', 'मैं रहूँगा' वक्तव्य जीवात्मा देह के सन्दर्भ में ही देता है। स्वयं में जीवात्मा 'था', 'हूँ' और 'रहूँगा' भूत, वर्तमान और भविष्य से परे कालातीत है अर्थात् जीवात्मा काल और अकाल दोनों से परे है। लेकिन देह की **अपेक्षा** में वह काल के भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों आयामों से जुड़ सा जाता है। **'अस्ति'** का तत्त्व मात्र एक ही **'है'।** उसमें **'गा'** और **'था'** अर्थात् भविष्य और अतीत की **गाथा** नहीं होती। **'मैं हूँ'** में अधिकतर देह रूप में मेरा उस समय का जीवन्त वर्तमान होता है। जहाँ यह वर्तमान होगा उसके साथ प्रत्यक्ष (प्रकट-प्रकट) अथवा अप्रत्यक्ष (अप्रकट-प्रकट) भूत और भविष्य भी होगा ही। Present Tense, Past Tense, Future Tense के साथ तीन Tention होती हैं। अतीत का शोक और भविष्य की चिन्ताएँ, जब **'मैं'** देह रूप में होता हूँ, तो होती ही हैं। अतः वर्तमान में मेरी समस्त क्रियाएँ-अक्रियाएँ अधिकतर अतीत के शोक को ध्वस्त एवं निर्मूल करने व

भूलने के लिए होती हैं अथवा किसी काल्पनिक भविष्य के लिए होती हैं। यह होना, मेरा अस्तित्व (हैत्व) नहीं है। सद्‌गुरु कृपा से जब 'मैं देह हूँ' इस सन्देह में जीव को निस्सन्देह सन्देह का ज्ञान हो जाता है, कि मैं देह नहीं हूँ, तो जिस देह की '**अपेक्षा**' में इसका प्रकाट्य **'मैं'** शब्द में होता है, उस देह की यह **'उपेक्षा'** करता है। उसमें हुंकार पैदा हो जाती है 'कोऽहम्' मैं कौन हूँ? मैं देह की अपेक्षा में भूत, भविष्य, वर्तमान में उलझ जाता हूँ। देह दृश्यमान है और **'मैं'** (जीवात्मा) अदृश्य हूँ। देह सीमित है, मैं असीम हूँ। फिर भी यह देह क्यों है? उसमें आर्तनाद पैदा हो जाती है।

देहधारणा के कारण उसे सन्देह था, कि मैं देह हूँ। देहधारणा निराधार थी और इस निराधार धारणा को **'नाम'** में निर्धारित कर असंख्य निराधार निर्धारणाओं की बिल्डिंग पीढ़ी-दर-पीढ़ी खड़ी होती रही। फिर इसे सन्देह में सन्देह हुआ, कि 'मैं देह नहीं हूँ' देहधारणा का रूपान्तरण देह अवधारणा में हो गया। जिस देह की अपेक्षा इसका **'मैं'** शब्द में प्रकाट्य होता है, उसके प्रति सन्देह को हटाने के लिए तथा उस नाम-रूप की निराधार निर्धारणाओं की उपेक्षा करने के लिए वह देह से **'संधि'** करता है। दृश्यमान देह की अदृश्य जीवात्मा और सीमित देह की असीम जीवात्मा से संधि होती है। **'दृश्यादृश्य'** (दृश्य+अदृश्य) और **'सीमितासीम'** (सीमित+असीम) की संधि में देह की अवचेतना में चेतना का स्तर क्रमशः बढ़ने लगता है।

सन्देह और संधि में बहुत बड़ा अन्तर है। संदेह में स देह पर ऊंकार का बिन्दु लगने से देह और मैं एक ही हो गए, 'मैं देह हूँ'। 'स धि' में जब वही बिन्दु लगा, तो सन्देह, संधि में रूपान्तरित हुआ और स 'धि' बिन्दु सहित होकर (संधि) ईश्वरीय चेतना बन गई। यह **'बिन्दु'** ऊंकार स्वयं में बेनाम है। 'धि' अर्थात् बुद्धि अर्थात् ईश्वरीय चेतना। जब **'मैं'** (जीवात्मा) 'स' 'धि' हो गया तब उसकी चेतना जाग्रत हो गई और उस पर ऊंकार का बिन्दु लगा, तो मैं की देह के साथ संधि हुई। यह संधि स्वयं में सद्‌गुरु द्वारा निर्देशित आध्यात्मिक राजनीति है। दो राजा एक विशेष लक्ष्य की प्राप्ति के लिए संधि करते हैं। **'मैं'** शाश्वत्, असीम एवं अदृश्य है और देह नश्वर,

सीमित व दृश्यमान है। **‘दृश्यादृश्य’** व **‘सीमितासीम’** की सन्धि सद्गुरु द्वारा निर्देशित दैवीय राजनीति है। पहले अदृश्य (मैं) को दृश्य के अंग एक देह के साथ सन्देह हो गया था, कि ‘मैं देह हूँ’। इस देह धारणा में देह के रूप का **‘नाम’** में निर्धारण हुआ। एक नाम की देह ने अपने अनेक (अन्य एक जो उसके साथ उसकी सापेक्षता में प्रकट हुए थे) की उपेक्षा की और फिर उन्हीं अनेक से, अनेकों में **‘नाम’** की अपेक्षा की। जिनकी **‘नाम’** के कारण ‘**उपेक्षा**’ हुई, उनसे नाम की ‘**अपेक्षा**’ कैसे की जा सकती है? यह **‘उपेक्षापेक्षा’** (**उपेक्षा+अपेक्षा**) इसे अधोगति में ले गई। **‘मैं’** स्वयं में अनाम एवं अदृश्य है और सब देहों की एक ही है।

सद्गुरु ही दृश्य एवं सीमित (देह) और अदृश्य एवं असीम (मैं) की सन्धि करवाता है। यह **‘दृश्यादृश्य’** एवं **‘सीमितासीम’** की सन्धि में **‘मैं’** नाम-रूप की Conceptual (नौ महीने माँ के गर्भ में बनकर पैदा हुई) देह का, भाव में प्रज्ज्वलन कर देह का अन्तान्त (भस्मी) देखने के लिए देह का अवलम्बन लेता है। भस्मी, दृश्यमान देह का ऐसा दृश्यमान पदार्थ है, जो देह का **‘अर्थ’** है और जीवात्मा के पद का अर्थ है। साथ ही वह न किसी **देह विशेष** का है और न **विशेष देह** का है। देह के उस क्षेत्र में देह व जगत की समस्त विशेषताएँ “**अ विशेष=अविशेष**” हो जाती हैं। देह की अवधारणा (मैं देह नहीं हूँ) को आधार मिल जाता है, **‘मैं’** (जीवात्मा) उस पदार्थ (भस्मी) से आत्मसात् हो जाता है और उसे अपने सब कुछ (सच्चिदानंद स्वरूप) की स्मृति आ जाती है। अब वह देह को आधार नहीं बनाता, क्योंकि देह में उसे निःसन्देह सन्देह का ज्ञान हो जाता है, कि मैं देह नहीं हूँ। कृपया एकाग्र करिए।

‘कोऽहम्’ (‘मैं कौन हूँ’) जानने के लिए साधक देह का तनिक अवलम्बन उस देह की भस्मी से आत्मसात् होने के लिए लेता है। उस आधार पर कहता है, कि ‘मैं अग्नियुक्त भस्मी हूँ’। वहाँ समस्त संसार के शेष और विशेष समाप्त हो जाते हैं लेकिन **‘नाम’** और अविशेष **‘भस्मी’** रह जाती है। **‘नाम’** पैदा होने के साथ नहीं आया था, ऊपर से रखा गया। नाम

चिता की अग्नि में नहीं जलता। **अग्नि का नाद 'हर-हर-हर' है**। अग्नि का सर्वोत्कृष्ट एवं विलक्षण गुण यह है, कि अग्नि कभी प्रदूषित नहीं होती। सम्पूर्ण संहार प्रकरण अग्नि द्वारा ही होता है। पंच-महाभूतों में जब मानव-देह का विलय होता है, तो **अग्नि द्वारा, अग्नि सहित** होता है। संहार में अग्नि के दो स्वरूप हैं। एक अग्नि से, अग्नि प्रकट होती है और उस अग्नि के द्वारा पंच-महाभूतों की देह में समाहित अग्नि सहित, देह पंच-महाभूतों में विलय होती है। तत्त्वातीत तत्त्व **'भस्मी'** के प्रकाट्य के लिए **'अग्नि'** तत्त्व का होना आवश्यक है। ज्ञानाग्नि, ध्यानाग्नि, तपाग्नि, प्राणायामाग्नि भी अग्नि के स्वरूप हैं। शंकर अग्नि प्रिय है। जगदम्बा का स्वरूप अग्नि है। अग्नि जब रूप धारण करती है, तो शंकर की अर्धांगिनी महाशक्ति बनती है। जीवन्त अग्नि को शक्ति कहते हैं। उसके द्वारा दहन होने पर जो महातत्त्व **'भस्मी'** प्रकट होता है, शंकर उसे धारण करता है।

'भस्मी' देहधारी के नाम से गंगा जी में प्रवाहित की जाती है, कि अमुक-अमुक की भस्मी है। पहले नाम का आधार देह विशेष और विशेष देह थी। देह पंच-महाभूतों में विलय हो गई, तो अविशेष (भस्मी) प्रकट हुआ और **'नाम'** लटका रह गया। सद्गुरु कहता है, कि "ध्यानाग्नि में देह का प्रज्ज्वलन करके भसम रूप में रूपान्तरित करके उस अविशेष को धारण कर तथा प्रार्थना कर, हे प्रभु ! मेरा '**नाम**' मेरी भस्मी को दे दो। जीते जी यह नाम का स्थानान्तरण (Transfer of name) है। जब कोई तेरा नाम ले, तो तुझे जलती हुई भस्मी नज़र आए और तू किसी को देखे, तो वह भी तुझे जलती हुई खाक ही लगे। तेरे नाम को दिया यह आधार कोई छीन नहीं सकता।"

मरने के बाद उनकी चिन्ता होती है, जो नाम के साथ चिपके होते हैं। अतः जीते जी देह के रहते मैं अपना **'नाम'** देह के उस अनाम एवं अरूप पदार्थ के साथ चिपका दूँ, जहाँ से कोई और तो क्या, परमात्मा भी अलग न कर सके। सन्धि के बाद जब मेरा नाम मेरी भस्मी के साथ जुड़ जाएगा, तो 'मैं देह हूँ' यह सन्देह हमेशा के लिए समाप्त हो जाएगा। **'गत सन्देह'** होने से मेरा देह का मोह नष्ट (नष्टो मोहः) हो जाएगा और मेरे जीवात्मा स्वरूप की

स्मृति जाग्रत (स्मृतिर्लब्ध) हो जाएगी। अन्ततः सद्गुरु कृपा से मैं उसी स्वरूप में स्थित (स्थितोऽस्मि) हो जाता हूँ। देह का मोह नष्ट होने से मुझे मेरा **'धर्म'** विरक्ति मिल जाता है। विरक्ति मिलते ही छः ईश्वरीय विभूतियाँ स्वतः प्रकट होने लगती हैं। जो देह इस प्रकरण में सहायक होती है, वह देह यथार्थ हो जाती है। उसकी भस्मी उसके देह के **'नाम'** से जानी जाती है। इसलिए वह **'नाम'** चिरंजीवी होता है।

'मैं देह हूँ' सन्देह में निस्सन्देह सन्देह का ज्ञान होना, कि मैं देह नहीं हूँ, साधना का प्रथम सोपान है। दूसरे सोपान में साधना सन्देह (मैं देह नहीं हूँ तो मैं कौन हूँ) को दूर करने के लिए की जाती है और यह देह से **'संधि'** करता है। यह संधि एक विशेष लक्ष्य को दृष्टि में रख कर की जाती है, कि देह, **'मैं'** (जीवात्मा) को अपने अन्त और अन्तान्त तक की समस्त अवस्थाओं का दिग्दर्शन कराए। देह का अविशेष भस्मी जब दृश्यमान होती है, तो देह अदृश्य हो जाती है। उस अविशेष के साथ आत्मसात् होने में जीवात्मा विशेष **'संतृप्ति'** का अनिर्वचनीय अनुभव करता है। इस परम विश्राम की स्थिति में इसकी अपने इष्ट के साथ **'संलग्नता'** हो जाती है। इष्ट के साथ **'संलग्न'** होते ही इसे अपने **स्वरूप** की **'स्मृति'** आ जाती है और उसमें इसकी पूर्ण **'स्थिति'** हो जाती है। साधना के इन छः सोपानों में **'संधि'** सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। देह ही साधक का साधन और उसकी सहायक होती है। 'मैं देह हूँ' इस सन्देह में जब तक सन्देह का ज्ञान नहीं होता तब तक देह व जगत इसका **'प्रतिरोधी'** बना रहता है। जब इसे निस्सन्देह सन्देह (मैं देह हूँ) में सन्देह का ज्ञान हो जाता है, कि 'मैं देह नहीं हूँ' तो जगत सहित देह साधक की '**सहयोगी**' होने लगती है। अन्ततः सन्देह का पूर्णतः निवारण होने और अपने स्वरूप में स्थित होने पर 'देह सहित जगत' इसका **'विनियोग'** (परिचय) होता है।

'मैं' घट-घट वासी है और सबकी एक ही है। **'मैं'** शब्द स्वयं में ईश्वरीय चेतना (जीवात्मा) का द्योतक भी है और प्रतिनिधि भी है। इसके प्राकट्य के लिए मानव-देह की अवचेतना में चेतना का न्यूनतम स्तर होना

अनिवार्य है, अन्यथा **'मैं'** शब्द का प्रकाट्य ही नहीं होगा। जीवात्मा को दी गई एक मानव देह अवचेतना में चेतना के न्यूनतम स्तर से अधिकतम स्तरों में पंच-महाभूतों में होने वाले निर्माण, पालन एवं संहार के रसास्वादन का हेतु है। कृपया एकाग्र करिए, मैं एक सरलतम उदाहरण द्वारा इस **'सद्'** को आध्यात्मिक इतिहास में प्रथम बार सहज ग्राह्य बनाने का प्रयत्न करूँगा।

हीरा अनमोल होता है, लेकिन उसके अलंकार (गहने) बनाने के लिए 24 कैरेट का विशुद्ध सोना नहीं चाहिए, क्योंकि उसमें हीरा जड़ा नहीं जा सकता। विशुद्ध हीरे द्वारा देह के अलंकरण के लिए उसका आभूषण रूप में प्रकाट्य आवश्यक है। इस प्रकाट्य के प्रकरण में सोने की विशुद्धता अधिक से अधिक 18 कैरेट हो सकती है। इसी प्रकार **'मैं'** शब्द के प्रकाट्य के लिए मानव-देह का अवचेतना में होना आवश्यक है। अवचेतना में चेतना के न्यूनतम स्तर से पहले और चेतना की चरम सीमा होने के बाद देह **'मैं'** शब्द लगाने योग्य नहीं रहती। पूर्ण जड़ता (गहन निद्रा, मूर्च्छा, विस्मृति, मृत्यु) और पूर्ण चेतना (तुरिया समाधि) में जीवात्मा का द्योतक एवं प्रतिनिधि शब्द 'मैं' लुप्त हो जाता है। जहाँ पर अवचेतना में चेतना का न्यूनतम स्तर भी नहीं रहेगा, वहाँ देह **'जड़'** हो जाएगी और अवचेतना में चेतना के अधिकतम स्तर के बाद देह **'मैंमयी'** अथवा चेतनामयी विदेह-देह हो जाएगी। वह देह **'मैं मयता'** अथवा चेतनामयता के न्यूनतम स्तर पर आ जाएगी। अवचेतना में चेतना के न्यूनतम स्तर से अधिकतम स्तर होने तक देह सहित जगत **'मैं' (आत्म तत्त्व) पर हावी होता है; इसके बाद आत्म तत्त्व (मैं)** देह सहित जगत पर हावी होता है। पहले **'मैं'** अवचेतना में चेतना के अधिकतम स्तर आने के लिए देह का अवलम्बन लेती है, इसके बाद देह अविलम्ब आत्मतत्त्व (मैं) पर अवलम्बित हो जाती है। वहाँ पर **'मैं'** की तड़प बढ़ जाती है। आत्म दर्शन के लिए आत्म-चिन्तन व आत्म-मनन शुरू हो जाता है।

'मैं' स्वयं में चेतना है। विशुद्ध हीरे का प्रतीक है। मानव का व्यक्तिगत कर्म यह है, कि देह की अवचेतना में चेतना के विभिन्न स्तरों में किसी भी प्रकार और सब प्रकार से चेतना का स्तर बढ़ाए। सुषुप्ति जड़ता है, इसलिए

'मैं' प्रकट नहीं होती। इस जड़ता में किंचित चेतना के स्पर्श मात्र से स्वप्न-सृष्टि में प्रकट हो जाती है। उसके साथ देह व जगत प्रकट हो जाता है, जिसमें जीव सोए-सोए स्वप्न देखता है और देखते समय यह ज्ञान नहीं होता, कि मैं सोए-सोए यह सब देख रहा हूँ, इसलिए यह स्वप्न है। देह की जड़ता (निद्रा, मूर्च्छा, विस्मृति, मृत्यु) और अवचेतना (तथाकथित **निद्रा में उठना स्वप्न सृष्टि**) और **निद्रा से उठना (तथाकथित जागृति)** तथा अवचेतना में चेतना के निम्नतम से अधिकतम स्तर को उद्घोषित एवं प्रमाणित करने वाला शब्द **'मैं'** ही है।

देहान्त और एकान्त दोनों में बहुत अन्तर है। देहान्त, एकान्त नहीं है और एकान्त, देहान्त नहीं है। देहान्त या अपनी मृत्यु का 'ध्यान-समाधि' में दर्शन किया जाए, तो नाम-रूप की देह रहती है। अतः उस नाम-रूप पर आधारित जगत का आभास भी रहता है। लेकिन वहाँ आत्म तत्त्व की जागृति होने से आत्मानुभूति होनी प्रारम्भ हो जाती है। अनिर्वचनीय विश्राम मिलता है और प्राप्तियों, सुखों-दुःखों, सम्बन्धों तथा देह व देह पर आधारित जगत की विभिन्न विधाओं से मुक्ति मिलनी प्रारम्भ हो जाती है। निरन्तर साधना द्वारा कुछ वर्षों में इसका दिव्य प्रभाव देह व जगत के प्रकाट्य में प्रतिभासित होने लगता है। जीव की गतियाँ सद् की ओर होने से देह व जगत में दिव्यता प्रतिभासित होने लगती है। एकान्त (एक+अन्त) का 'एक', नाम-रूप की एक देह का द्योतक है। एक का अन्त वस्तुतः नाम-रूप की देह की अवचेतना का अन्त है। वहाँ अनेक का स्वतः अन्त हो जाता है। क्योंकि **'अनेक'** एक के साथ ही होते हैं। जब एक प्रकट होता है, तो उसके साथ ही अनेक प्रकट होते हैं, अनेक होंगे, तो एक (देह) अवश्य होगी ही। इसलिए एकान्त को अनेकान्त कहने की आवश्यकता नहीं है।

दिल-दिमाग में घूमता अप्रकट-प्रकट जगत एवं प्रत्यक्ष रूप से प्रकट-प्रकट जगत एक देह रूप में मेरी निद्रा में स्वतः नहीं रहता। लेकिन यह **'एकान्त'** नहीं है। एकान्त वह है, जिसमें **'मैं'** एक देह के अन्त का देह द्वारा दर्शन (दरश+न) कर लूँ। देह चाहे यथार्थ हो अथवा Conceptual हो,

जगत सहित ही होती है। Conceptual देह प्रकट नहीं लगती, Factual प्रकट होती है और जगत तद्नुसार प्रकट होता है। **'देह'** वास्तव में एक अदृश्य भाव है, जो स्वयं में अदृश्य है। भाव का प्रकाट्य जब जगत सहित देह रूप में होता है, उसमें 'मैं देह हूँ', के सन्देह में जीव स्वयं को जगत से पृथक् मान लेता है। **'मैं'** देह सहित जगत का मात्र दृष्टा हूँ, स्रष्टा नहीं हूँ। वह स्रष्टा न केवल समस्त सृष्टि का निर्माण, पालन व संहार करने वाला है, बल्कि मुझ दृष्टा का दृष्टा भी है। **'मैं'** (जीवात्मा) मात्र दृष्टा हूँ, मैं स्रष्टा, न हूँ और न हो सकता हूँ। जिज्ञासुओं के मन में जिज्ञासा उठती है, कि फिर मुझ दृष्टा की आवश्यकता ही क्या है? भारतीय ऋषि, मनीषी निद्रा एवं स्वप्न-दृष्टा हुए हैं। एक है, स्वप्न देखना और दूसरा है, स्वप्न को देखना। जीव-सृष्टि में जीव, देह के मोह की निद्रा में सुषुप्त स्वयं को नाम-रूप की देह मानते हुए देह के साथ प्रकट जगत को स्वयं से पृथक् मान लेता है। इस भटकन एवं तड़पन में विवश परन्तु मोह के वशीभूत जीव, निद्रा में देखे स्वप्न की सुख-दुःखमयी मानसिकताओं को भी ढोता रहता है।

सद्गुरु कहता है, कि "तू नाम-रूप की देह है यह तेरा सन्देह है और इस सन्देह का तुझे ज्ञान नहीं है। तू रात को सोने जा रहा था, निद्रा में तूने स्वप्न देखा और निद्रा से उठकर तू स्वप्न सुना रहा है। रात को थकी, सोने को उद्यत देह, स्वप्न वाली देह और निद्रा से उठ कर स्वप्न का वर्णन करने वाली तीनों देहें पृथक्-पृथक् हैं। तू तीनों के साथ **'मैं'** लगा रहा है और तीनों को एक मान रहा है। तू घोर सन्देह में है, क्योंकि सुषुप्ति तूने देखी नहीं। रात में तू सोया हुआ सोने में थका हुआ सोने जा रहा था। जो तू सपना देख रहा था, वह सोया हुआ स्वप्न देख रहा था, इसलिए देखते समय तुझे मालूम नहीं था, कि यह स्वप्न है। यह जो उठकर स्वप्न सुना रहा है, यह सुषुप्ति में उसी प्रकार उठा हुआ है जैसे निद्रा के दौरान स्वप्न में उठा हुआ था और दूसरे स्वप्न में पहला स्वप्न सुना रहा है। एक तत्त्व Common है, कि तीनों निद्रा में हैं, लेकिन निद्रा का दृष्टा कोई नहीं है। मैं अमुक-अमुक देह हूँ, यह भी Common है। तू निद्रा की मानसिक स्थिति का दर्शन कर। **'उत्तिष्ठ**

जाग्रत ! तू देख पाएगा, कि तीनों स्थितियों में जगत सहित तेरी **'देह'** पृथक्-पृथक् है। तब तू जानेगा, कि तू कौन है। एक नाम की धारणा के कारण पृथक्-पृथक् रूपों की देहों के साथ तेरी तद्रूपता ही नहीं तद्नामता भी हो गई है।'

'मैं' के प्रकाट्य एवं जगत के रसास्वादन के लिए चेतन **'मैं'** को किंचित अवचेतना में आना ही पड़ता है। चेतना में जगत निर्मित नहीं होता, इसलिए कोई देह व जगत होता ही नहीं। **'मैं'** अलग है और अमुक-अमुक नाम पृथक् हैं। उस स्रष्टा महाकलाकार ने सृष्टि रूप में एक तमाशा, जादू और इन्द्रजाल रचा है। यह उस महाचेतन का चिदाभास अथवा मायिक प्रदर्शन है, जो स्वयं में 'है **सा** है'। बहुत कुछ होते हुए भी इसका आधार व नींव विरक्ति अथवा **'कुछ नहीं'** है।

सद्गुरु कहता है, कि "ध्यान में तू स्वयं को सौ वर्ष आगे ले जा। आज 17 जनवरी 2011 है, तू मान ले आज 17 जनवरी 2111 है। अब तू देख, तू कौन है और तेरे साथ कौन-कौन हैं।" शिष्य कहता है, कि "प्रभु ! मैं तो हूँ ही नहीं। मैं देख रहा हूँ, कि मेरे माँ-बाप, बीवी-बच्चे, नाती, पोते, मित्र-शत्रु कोई नहीं है। मैं अपने जगत सहित अपना नहीं होना देख रहा हूँ" सद्गुरु कहता है, कि "ये तू है। जिसे तू अपना स्वरूप मान रहा था, वह देह है ही नहीं, लेकिन तू है और देहाभास में कुछ न कुछ तेरी कल्पना में चल रहा है।" सद्गुरु इस प्रकार मानसिक प्रकरण करवाता है। "तेरे पैदा होने से पहले भी जगत था और मरने के बाद भी जगत तो रहेगा, लेकिन तू सन्देह में जो अब स्वयं को नाम-रूप की देह मान रहा है, यह तू अमुक-अमुक नहीं होगा। अर्थात् यह मात्र मध्य के कुछ अन्तराल का खेल है। तेरे पैदा होने से पहले **'मैं'** आत्मतत्त्व था और मरने के बाद **'मैं'** रहेगी, लेकिन यह देह और इस पर आधारित छोटा सा जगत न था और न रहेगा। तो यह मायिक जगत जो भी है, तू उसका रसास्वादन कर। तू ध्यान में 100 वर्ष आगे और 100 वर्ष पीछे की मानसिक सैर कर। जो अब हैं, वे सब तेरे लिए गैर हो जाएँगे। इस प्रकरण द्वारा तू स्वयं अपने लिए **'गैर'** हो जाएगा। 100 वर्ष पूर्व तू नहीं था,

इसलिए **तेरे लिए** जगत नहीं था, लेकिन जगत था। तू अभी है, तभी तो तू कह रहा है, कि 100 वर्ष पूर्व जगत था और 100 वर्ष बाद जगत होगा। अतः तेरा होना कह रहा है, कि जगत था और जगत होगा। **तू As देह न था न होगा**। वास्तव में तू देह नहीं है। तू विशुद्ध जीवात्मा है, जो अदृश्य, अनाम एवं अरूप है। जब तेरा सन्देह (मैं देह हूँ) हट जाएगा, तो तू युग-दृष्टा हो जाएगा। इसके बाद तुझे अनुभूति होगी, तू जो भी देख रहा है, वह सपना है। सपने में जब तुझे ज्ञान हो जाएगा, कि यह सपना है, तो तू देह व जगत का भरपूर रसास्वादन ही करेगा।''

अनेकों के नाम अनेक हैं और 'एक' देह का 'एक' नाम है। एक देह जो, जब, जहाँ, जैसी भी है, **'रूप'** पृथक्-पृथक् हैं। उसके साथ प्रकट-प्रकट एवं अप्रकट-प्रकट जगत पृथक् है, लेकिन **'नाम'** एक ही है। सबके साथ एक **'मैं'** लगी जो कुण्ठित, संकुचित व तुच्छ एक नाम की देह तक सीमित थी। **'मैं'** अमुक (रूप)-अमुक (नाम) हूँ यह मैं का सन्देह है, क्योंकि **'मैं'** एक देह वाली हो ही नहीं सकती। देह **'मैं'** (जीवात्मा) की प्रतिनिधि थी, लेकिन अवचेतना में जीवात्मा (**'मैं'**) जीव बनकर एक नाम की देह और उस पर आधारित समय-समय के विभिन्न रूपों का प्रतिनिधि हो गया। जीव-सृष्टि सदा सर्वदा **'मैं'** की अवचेतना में ही होती है। यहाँ **'देह'** और **'मैं'** तत्त्व दोनों में एक प्रतिक्रिया होती है, कि **'मैं'** अपने विस्तृत स्वरूप एवं ईश्वरीय विभूतियों (सौन्दर्य, ज्ञान, शक्ति, ऐश्वर्य, ख्याति एवं विरक्ति) को उस देह द्वारा, देह में पाना चाहता है। जो कि असम्भव है, क्योंकि 'मैं' स्वयं में अनाम एवं अरूप है, इसलिए देहातीत है। आनन्द भी देह में नहीं है। देह से देहातीत स्थितियों की अनुभूति आनन्द है।

विस्तृत **'मैं'** आनन्दमय मानस है, इसके आच्छादित होने के कारण विकृत **'मैं'** अवचेतना (जीव-सृष्टि) में, देह व जगत के सुखों-दुःखों में भटकने लगा। कुण्ठित **'मैं'** (मानसिकता) द्वारा देह 'निर्देशित' व 'संचालित' होती है। जो देह व जगत, मात्र मेरे लिए और मेरे लिए मात्र था, वही '**प्रतिरोधी**' बनता हुआ मेरे गले पड़ गया। देहें अनेक हैं, उनके नाम अनेक

हैं, लेकिन **'मैं'** एक ही है। जन्म से मृत्यु तक एक देह का एक नाम था। दुर्भाग्यवश एक **'मैं'** उस एक देह में संकुचित व सीमित हो गई। इस प्रकार 'मैं देह हूँ'—यह 'संदेह' है और इस संदेह का ज्ञान होते ही जीव यद्यपि संदेह मुक्त नहीं होता, परन्तु मैं As देह (स देह) हो जाता है। यहाँ आकर मैं और देह में संदेह के निवारण के लिये 'सन्धि' हो जाती है और देह व जगत प्रतिरोधी न रह कर सहयोगी हो जाते हैं। देह 'साधन' बन जाती है, जो पहले साध्य थी। इस देह धारणा पर 'सद्‌गुरु' देह की ही अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं अनाम और अरूप अवस्था तथा निश्चित, परिलक्षित, दर्शित भविष्य **'भस्मी'** की अवधारणा करवाता है। अनेक लोगों के अनेक नाम अनेक रूप हैं, लेकिन उन सबकी **'मैं'** और **'भस्मी'** एक ही है। ध्यान द्वारा साधक स्वयं को उस अवस्था से आत्मसात् करता है। इस स्थिति में पूर्णतः मानसिक प्रविष्टि होने पर देह व जगत इसका '**विनियोग' (परिचय)** होता है।

जब साधक देह के रहते अपनी देह को ध्यान द्वारा अग्नि में प्रज्ज्वलित होते एवं भस्मी बनते हुए देखता है, तो स्वयं में **'मैं'** और **'भस्मी'** की तरह अनाम एवं अरूप हो जाता है। अनेकों नाम एक भस्मी के हैं, चाहे किसी का भी नाम ले दो। वहाँ **'मैं'** (जीवात्मा) को अपने विस्तृत सर्वव्यापी स्वरूप की स्मृति आती है और यह One in all हो जाता है। सबमें **'मैं'** (जीवात्मा) एक ही हूँ। तीसरे सोपान पर यह All in one वाली स्थिति की अनुभूति करता है, कि देह रूप में एक **'मैं'** हूँ तभी All (अनेक) हैं। अतः सब मुझ में हैं। मेरी देह सहित समस्त साकार एवं निराकार युगों-युगान्तरों में विस्तृत जगत मेरे (आत्म-स्वरूप में) उदरस्थ है। सबमें एक ही जीवात्मा है, यह मेरा **आत्म-स्वरूप** है। जब देह की भस्मी से आत्मसात् होते-होते अपने पूर्ण विरक्त परमात्मा स्वरूप को पहचानने लगता है, तो उसकी खोज व अनुभूति करना चाहता है। अन्ततः ब्रह्मानन्द की स्थिति None in all है, कि ''न **'मैं'** 'देह' हूँ, न 'जगत' 'मैं' हूँ।''

समस्त वक्तव्य का सारांश यह है, कि परमात्मा एक है और जीवात्मा उसका आनन्दमय मानस है। **'मैं'** शब्द जीवात्मा का द्योतक है और स्वयं में

शब्द ब्रह्म है। **'मैं'** के शब्द रूप में प्रकट होते ही युगों-युगान्तरों में विस्तृत मायिक सृष्टि का प्रदर्शन प्रारम्भ हो जाता है। पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश, जलचर, थलचर, नभचर तथा समस्त चराचर साकार व निराकार माया परमात्मा की बहुआयामी कलाओं का असंख्यामी प्रदर्शन है। **'मैं'** शब्द किसी न किसी जीवित, जाग्रत, जानवित, जो, जब, जहाँ, जैसी भी मानव-देह है, उसके सान्निध्य में ही प्रकट होता है। 'नाम' का अपना महत्त्व है। मानव-देहों का यदि कोई नाम न हो तो, सभी यह कहेंगे कि **'मैं' 'मानव-देह'** हूँ। चाहे कितनी भी देहें हों सबकी **'मैं'** एक ही होगी। 'मैं मानव-देह हूँ' वक्तव्य यदि दस मानव-देहें दे रही हैं, तो **'मैं'** और **'मानव-देह'** Common Factor होते हुए भी सबकी मानव-देह पृथक्-पृथक् होगी। कोई छोटा है कोई बड़ा है, कोई स्त्री है कोई पुरुष है, कोई काले रंग का है कोई गोरा है, कोई प्रौढ़ है कोई युवा है, कोई रोगी है कोई डॉक्टर है, कोई उच्च पद पर है कोई निम्न पद पर है, कोई मालिक है कोई मज़दूर है। देह बिना नाम की है, तो सुनने में मानव-देह Common Factor हुआ, लेकिन सबके रूप-रंग अलग-अलग होंगे। सबकी चाल-ढाल, स्वभाव, बोल-चाल, प्रतिभाएँ, गुण-अवगुण अलग-अलग होंगे। **'मैं'** एक ही होगी। इसमें जगत-व्यवहार चलना असम्भव था। अलग-अलग लोगों को सम्बोधित करना हो, तो **'नाम'** आवश्यक है। **'मैं'** जीवात्मा देह के रूप के साथ अवचेतना में तद्‌रूपतावश **'नाम-रूप'** की जीव-सृष्टि में फँसा।

'नाम' शब्द को उलट दें—**मना।** 'म ना' करने पर भी व्यवहार के लिए **'नाम'** आवश्यक हो गया। एक ही परिवार की विभिन्न देहों में भी **'नाम'** ज़रूरी हो गया। दुर्भाग्यवश एक **'मैं'** की, नाम में मान्यता के कारण असंख्य देहों में मान्यता हो गई। 'मैं देह हूँ' यह देह धारणा सन्देह है। **यहाँ पर 'मैं' जीवात्मा का प्रतिनिधित्व नहीं करती।** किसी को, किसी का प्रतिनिधित्व करने के लिए उससे पृथक्ता एवं **'द्वैत'** आवश्यक है। देह धारणा में **'मैं'** देह की प्रतिनिधि न होकर 'मैं देह हूँ' नामक Complex या सन्देह की प्रतिनिधि है। 'मैं अमुक रूप, अमुक नाम हूँ' यह उस सन्देह की पुष्टि है।

‘मैं’ की एक **विशेष देह** के साथ नाम-रूप में तद्‌रूपता हो गई। इसके बाद समस्त प्रकाट्‌य इस Complex या सन्देह का हुआ। पहले देह के साथ धारणा हुई थी, कि ‘मैं देह हूँ’। यह सन्देह एक विशेष देह के साथ नाम में निर्धारणा होने पर परिपुष्ट हो गया। व्यवहार के लिए आवश्यक होने पर धारित देह को **‘नाम’** में निर्धारित किया। मानने के लिए नाम आवश्यक हुआ, नाम में धारित, निर्धारित होने पर नाम में मान्यता हो गई। अतः मानव-देह में **‘मैं’** की धारणा हुई और **‘नाम’** में विशेष देह के साथ तद्‌रूपतावश निर्धारणा हो गई। इस निर्धारणा पर स्थान, जाति, कुल, गाँव, शहर, देश, धर्म, कर्म, आर्थिक स्तर, व्यवसाय, विभिन्न सम्बन्ध, गुण, यश, कीर्ति आदि की निर्धारणा-दर-निर्धारणा होती रही।

स्वयं में मानव-देह न केवल **जीवात्मा** की प्रतिनिधि है, बल्कि परमात्मा की असंख्य कलाओं के **दर्शन** और उनके **प्रदर्शन** के साथ स्वयं **परमात्मा** के **दिग्दर्शन** की **प्रतिनिधि** भी है। देह के साथ धारणा और फिर निर्धारणा दर निर्धारणा में **‘देह’** और **‘मैं’** दोनों सन्देह Complex में जकड़े गए। सद्‌गुरु कहता है, कि ‘‘**जिस दिन देह रूप** में तू **‘मैं’ का प्रतिनिधित्व करेगा**, उस **दिन तेरी देह यथार्थ हो जाएगी**। इसके लिए तुझे अपनी विशेष देह के अविशेष (भस्मी) की अवधारणा करनी ही होगी।’’ नाम-रूप में निर्धारणा (मैं अमुक-अमुक हूँ) में **‘मैं’** और **‘देह’** एक ही हैं। मैं देह से पृथक् नहीं है। ‘देह विशेष’ परिपुष्ट सन्देह है। वहाँ मुझ सहित मेरी Totality का Guiding Factor सन्देह है। सन्देह में प्रत्येक पृथक् दिन Continuity लगती है। मैं विशेष देह में नहीं फँसा, बल्कि विशेष देह के विशेष और विशेषों में फँसा, वहाँ सन्देह पुष्ट, पुष्टतर होता रहा।

सद्‌गुरु विशेष देह का अविशेष अवधारणा द्वारा ग्रहण करवाता है। जितनी विशेष देहें हैं, प्रत्येक देह का अविशेष एक ही भस्मी है। यह अविशेष स्वयं में अ विशेष है। देह रूप में कोई कितना भी विशेष हो जाए, उसका अविशेष सबके जैसा ही होगा। भस्मी की अवधारणा कोई कल्पना नहीं है, वह सुनिश्चित है। सद्‌गुरु कहता है, कि ‘‘इस अविशेष की अटल अवधारणा

तेरी तुच्छ देह धारणा को निगल जाएगी। इसके बाद देह विशेष में जिन-जिन के जो-जो **'विशेष'** हैं, वे सब तेरे लिए ही होंगे। अविशेष तेरा होगा और समस्त विशेषों के विशेष तेरे लिए होंगे, क्योंकि **'अविशेष'** सबका एक ही है। तेरा नाम-रूप' भी वही रहेगा, लेकिन तेरा अधिकार क्षेत्र अति विस्तृत हो जाएगा।''

सन्देह का ज्ञान न होने तक देह अवचेतना में अन्यार्थ ही रहती है। सन्देह का ज्ञान होने के बाद से देह के यथार्थ होने तक देह की अवचेतना में चेतना का स्तर क्रमशः बढ़ता है। जब चेतना का प्रादुर्भाव और वृद्धि होती है तो अज्ञात रूप से साथ-साथ आनन्द और सद् का विस्तार भी होता है। चेतना की वृद्धि और अनचाहे अज्ञात रूप से आनन्द की वृद्धि तथा कर्ता भाव का घटना, ईश्वर की भक्ति में तन्मयता आदि क्रमशः देह में **'प्रतिभासित'** होते हैं। उस देह की सान्निध्यता में विशेष आकर्षण एवं संकर्षण होता है। **'भस्मीयोग'** तक आते-आते देह की अवचेतना में चेतना का स्तर अधिकतम हो जाता है। यह अधिकतम स्तर भी सीमित है। जैसे कि सोना 24 कैरट से अधिक शुद्ध नहीं होता। इसके बाद वह महापुरुष पूजनीय से दर्शनीय हो जाता है। कृपया एकाग्र करिए।

ईश्वरीय प्रदर्शन सन्देह में नहीं है, क्योंकि ईश्वरीय सृष्टि की यह प्रदर्शनी, अवचेतना में नहीं, **चेतना में, आनन्दमय सद्** प्रकाट्य है। यथार्थ देह ही यह प्रदर्शनी देखेगी। उस प्रदर्शनी में उसका तथा अन्य देहों का नाम-रूप कुछ भी हो, वह हर प्रदर्शन का रसास्वादन ही करेगी। सद्गुरु कृपा से वह महापुरुष देह के नाम-रूप और विभिन्न मायिक स्वरूपों में भ्रमित नहीं होगा। वह अपने या किसी अन्य के जाति, कुल, नाम, धर्म आदि में भ्रमित हुए बिना, व्यवहार में लीला मात्र करता है। देह के साथ नाम-रूप में स्वयं की पहचान अवचेतना में है। नाम-रूप की अवचेतना में देह के साथ तद्रूपता के सन्देह में जीव को, निःसन्देह हुए लीला करते संतों, महापुरुषों में भी सन्देह हो जाता है। श्रीराम पेड़ों, पत्तों, खगों से सीता का पता पूछते हुए लीला करते हैं। सती को सीता के वियोग की लीला करते श्रीराम में भी

सन्देह हो गया था। समस्त लीला सन्देह में है।

अदृश्य की दृश्यमान में भावानुसार अनुभूतियाँ होने लगती हैं। ईश्वर के प्रति भावों में भी अवस्थाएँ बदलने लगती हैं, तद्नुसार भक्ति की वृद्धि उच्चतर सोपानों में होने लगती है। जब आत्मतत्त्व को आत्मानुभूतियाँ होने लगती हैं, तब वह **'आत्मदर्शन'** के लिए लालायित हो जाता है। जिसके लिए यह यथार्थ देह का अवलम्बन लेता है। सन्देह का ज्ञान होने पर देह का अवलम्बन यथार्थ तक आने के लिए लिया था। अब वह यथार्थ देह भी अविलम्ब इस पर पूर्णतः अवलम्बित हो जाती है और यथार्थ से आत्मामयी होने लगती है। जैसे, पानी को गर्म करते गए तो अधिकतम तापमान 100 डिग्री सै. हुआ इसके बाद और गर्म किया, तो तापमान वही रहा, लेकिन पानी का रूपान्तरण भाप में होने लगा। भाप की शक्ति अथाह होती है, क्योंकि 100 डिग्री के एक ग्राम पानी को एक ग्राम भाप बनने के लिए 536 कैलोरी हीट चाहिए। भाप का तापमान 100 डिग्री होते हुए भी उसमें 536 कैलोरी हीट ज्यादा होती है। पानी की अवस्था तरल से वाष्प में बदल जाती है और धीरे-धीरे पानी समाप्त हो जाता है।

अब आत्मतत्त्व, साधक से अपने स्वरूप में पूर्णतः प्रविष्टि के लिए साधना करवाता है, तो वह अपने अक्षुण्ण पद को पाना चाहता है। वहाँ विशुद्ध भक्ति की जागृति होती है और देह सद्गति के अतिरिक्त अन्य गतियों से मुक्त हो जाती है। यहां से वह देवत्व की ओर अग्रसर होने लगती है। अवचेतना में चेतना का स्तर अधिकतम हो जाने पर स्वयं में आत्मतत्त्व की अथाह चेतना बढ़ने लगती है। चेतना तो कभी अवचेतना थी ही नहीं। अवचेतना में देह अपनी पूर्ण चेतना को पाकर आत्मामयी (मैं मयी) हो जाती है। आत्मीयता शब्द का स्रोत **'आत्मामयता'** है। आत्मामयता से वे महापुरुष पूजनीय से दर्शनीय हो जाते हैं। जब आत्मतत्त्व को आत्मदर्शन हो जाता है, तो पंच प्राण इसके सहचर हो जाते हैं। मानों देह पंच-महाभूतों से पंच-प्राणमयी हो जाती है। जिन प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान प्राणों से क्रमशः अग्नि, वायु, पृथ्वी, जल एवं आकाश पंच-महाभूत प्रकट होते हैं, उन

पंच-प्राणों के आयाम का सुफल **'सहचर प्राण'** हैं। इसलिए योगी प्राणायाम द्वारा पंच-महाभूतों पर नियन्त्रण प्राप्त कर लेता है। विरक्ति से प्रस्फुटित पंच-प्राणों की अदृश्य ज्योति की परस्पर क्रीड़ा का आनन्दमय सुफल यह पंच-महाभूतों की युगों-युगान्तरों में विस्तृत निराकार एवं साकार मायिक सृष्टि है।

'मैं' जो, जब, जहाँ, जैसा हूँ, मेरे होने का अस्तित्व क्या है? मानव होने के नाते मुझे इसका ज्ञान होना परमावश्यक है। यदि अपने अस्तित्व का ज्ञान नहीं हुआ, तो मानव और पशु में कोई भी अन्तर नहीं है। मेरी विशुद्ध **'मैं'** और **हैत्व** (अस्तित्व) का ज्ञान एवं अनुभूति ही ईश्वरीय प्रदर्शन का दर्शन है। 'मैं देह हूँ' (सन्देह) इसमें मुझे कोई सन्देह नहीं है और जीवकोटि में भटक रहा हूँ। मुझे सन्देह हो गया है, कि 'मैं देह नहीं हूँ'। इस सन्देह के उन्मूलन के लिए मैंने देह के साथ संधि की और देह की भस्मी के साथ आत्मसात् हुआ। विशुद्ध जीवात्मा बना और सद्गुरु कृपा से देवत्व को प्राप्त हुआ। प्रत्येक स्थिति में **मेरा होना** है। यह **'हैत्व'** मेरा सद् है, जिसका अस्तित्व तुम हो। ''कोऽहम्—यस्य सम्पूर्णम् अस्तित्वम् त्वं (अस्मि) असि, सोऽहम्।'' यहाँ शब्द **'मैं'** गौण है। **'हूँ'** कहने के लिए **'मैं'** लगानी पड़ती है। **'मैं'** के प्रकाट्य के लिए देह का तनिक सान्निध्य मात्र, आवश्यक है। यह अन्तिम स्थिति है। **भक्त, अभक्त, संसारी, घोर संसारी, ज्ञानी, अज्ञानी जो, जब, जहाँ, जैसा हूँ मेरा होना तुम हो**। मैं तेरा हूँ जैसा भी था, हूँ और हूँगा तेरी (परमात्मा की) वजह से था, हूँ और हूँगा। मैं विकारी, विकृत हूँ लेकिन तेरी वजह से हूँ—इस भाव में समस्त विकार समाप्त हो जाते हैं। मैं संस्कारी व ज्ञानी हूँ, तो तेरी वजह से हूँ—इस भाव में क्षुद्र अहंकार समाप्त हो जाता है । जीवात्मा को अपने स्वरूप की झलक आने लगती है तथा देह स्वयं में यथार्थ हो जाती है। इसका नाम 'अमर' हो जाता है। इस अमरत्व की प्राप्ति ही मानव-जीवन का परम लक्ष्य है।

''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(22, 23 अगस्त एवं 12 दिसम्बर 2010 तथा 10 से 17 जनवरी 2011)

आभास

'सद्गुरु' एक परम्परा और संस्करण है, जो मानव-देह के महत्त्व का आभास कराते हुए मानव को साधारण से असाधारण, असाधारण से पूजनीय और पूजनीय से दर्शनीय बना देता है। सद्गुरु स्वयं में एक दिव्य आभास है, जो जीव की श्रद्धानुसार अपनी उपस्थिति और अनुपस्थिति से सद् को धारण करने की क्षमता प्रदान करता है। उसकी अनुपस्थिति में उसका आभास आपकी श्रद्धा का मापदण्ड है। यह आभास ही ईश्वरत्व, आत्मत्व और देहत्व तीनों का मूल है। भारतीय मनीषियों एवं तत्त्वज्ञों ने सम्पूर्ण तत्त्व को भौतिक जगत के तत्त्व से खोजा और पाया।

वेदान्त में जगत को ईश्वर (चेतन) का चिदाभास कहा गया है और मैंने अपने इष्ट व सद्गुरु की प्रेरणा से इस चिदाभास स्वरूप जगत को ईश्वर की विविध एवं बहुआयामी अदृश्य कलाओं का असंख्यामी **'प्रदर्शन'** कहा है। वह स्रष्टा स्वयं में अदृश्य है और विविध बहुआयामी कलाओं का असंख्यामी प्रदर्शन उसकी सूक्ष्म सी कला है। इसके अतिरिक्त भी वह बहुत कुछ है। उसकी कृपा से उसका दर्शन, उस अदृश्य की अनुभूति है। पारब्रह्म परमेश्वर स्वयं में निर्विकल्प, निःसंकल्प, निर्विकार, निर्गुण व निराकार अदृश्य सत्ता है। मैंने इष्ट प्रेरणा से प्रभु को ब्रह्मात्मा की संज्ञा दी है। स्वयं में विरक्त प्रभु की आसक्ति अथवा इच्छाशक्ति आद्याशक्ति माँ भवानी के प्रबल आसक्तिपूर्ण अनुनय से उस अभावमय सच्चिदानंद मानस में एक भाव उभरा, '**एकोऽहम् बहुस्याम्**'। इस अदृश्य भाव के हर्षित, रोमांचकारी एवं उल्लासपूर्ण उद्वेलन से उस अदृश्य मानस ब्रह्मात्मा की दो विधाएँ हुईं—परमात्मा एवं जीवात्मा। परमात्मा भी ब्रह्मात्मा है और जीवात्मा भी

ब्रह्मात्मा है। यह अदृश्य अद्वैत में द्वैत सा है। मैं स्वयं को एक से अनेक होते हुए देखूँ (एकोऽहम् बहुस्याम्), इस भाव की अभिव्यक्ति (भावाभिव्यक्ति) शिव-शक्ति-क्रीड़ा के फलस्वरूप चराचर सृष्टि के अनेकानेक रूपों-स्वरूपों में हुई। वह सृष्टिकर्ता स्वयं में अकर्ता है, क्योंकि वह एक से अनेक होते हुए देखने वाले दृष्टा (जीवात्मा) का महादृष्टा भी है।

जीव-सृष्टि में ईश्वर का इकलौता मानसपुत्र अथवा आनन्दमय मानस (जीवात्मा) 'मैं देह हूँ' सन्देहवश संकुचित मानवीय मानसिकताओं में उतरता हुआ नाम-रूप की देह में तुच्छ सा जीव बन जाता है। नाम-रूप की देह व जगत सम्बन्धी असंख्य निर्धारणाओं में अति सीमित होकर अपनी असीमता एवं विराटता खो बैठता है। ईश्वरीय सृष्टि का आनन्दमय प्रदर्शन इसके लिए प्रश्न बन जाता है और देह सहित जगत रोग बन जाता है। **मानसिकताएँ** 84 लाख मायिक विधाएँ अथवा चैनल हैं, जो एक **'मन'** की हैं। मानसिकता एक वृत्ति है, जो माया की विशिष्ट योनि या चैनल में बनी-बनाई होती है। इन मायिक योनियों में जीवात्मा जीव कोटि में अपने जगत सहित भ्रमित हुआ भटकता है। जीव जो पदार्थ खोता-पाता है, स्वयं बनता-बनाता है और जो कुछ दृश्यमान होता है, वस्तुतः सब मानसिकता की अवस्थाएँ हैं। साकार देह व जगत सम्बन्धी विभिन्न विधाओं में लाभ-हानि, सुख-दुःख, उन्नति-अवनति, मिलना- बिछड़ना, पाप-पुण्य, मान-अपमान, ऊँचा-नीचा सब जीव की निराधार एवं सतत् परिवर्तनशील मान्यताएँ हैं, जिनका मूल एक मान्यता है, कि मैं देह हूँ और अमुक-अमुक मेरा नाम है। इस आभास में अदृश्य जीवात्मा बिन्दु संयुक्तम् स-देह **'सन्देह'** में अपना विशुद्ध स्वरूप खो बैठता है। इसकी देह का यथार्थ तथा ईश्वर का ईश्वरत्व भी आच्छादित हो जाता है। ईश्वर-विमुखता और अहंपूरित जीव-सृष्टि में देह और जीवात्मा का द्वैत समाप्त हो जाता है और इसकी देह के साथ तद्रूपता सी हो जाती है।

मानव-जीवन के प्रत्येक क्षण (**समय**) एवं **स्थान** का निर्धारण **'स्थिति'** करती है। परन्तु यह स्थिति, तथाकथित स्थिति ही है, क्योंकि प्रत्येक स्थिति

गति से और गति में है। गति **में** और गति **से** कोई **'स्थित'** नहीं हो सकता। जगत व्यवहार और पहचान के लिए देह का **'नाम'** आवश्यक था। अतः सन्देह में एक नाम-रूप की देह को यह अपना स्वरूप मानने लगता है और इसकी देह व जगत का निर्देशक यह सन्देह हो जाता है। देह में देह का प्रतिनिधित्व रूप करता है। रूप का नाम में निर्धारण करके अन्य से पृथक् कर दिया जाता है। एक प्रकार से अन्य (जगत) की **उपेक्षा** की जाती है। फिर उन्हीं अन्यों की **अपेक्षा** उस एक नाम की चाहत होती है, **यही माया है।** इस उपेक्षापेक्षा (उपेक्षा+अपेक्षा) की जीव-सृष्टि में जीव बना जीवात्मा अपनी चमक खो बैठता है और जन्म-दर-जन्म कभी न समाप्त होने वाले मायाजाल की दलदल में फँसा रहता है। जहाँ देह के रूप की नाम से और नाम में निर्धारणा होती है, तो सब कुछ आधार रहित अर्थात् निराधार हो जाता है। इसके बाद **'नाम'** की समस्त गाथा निराधार ही रहती है, क्योंकि जिस रूप का **'नाम'** है, वह नित्य सतत् परिवर्तित होता है; जिसका थोड़ा बहुत **आभास** होते हुए भी 'नाम' की निर्धारणा के कारण नहीं हो पाता। देह बदलने वाली है, 10, 15ए 20ए50 साल पहले का अपना रूप फोटो में देखें, तो रूप स्पष्ट बदला हुआ नज़र आता है, लेकिन **'नाम'** एक ही होने के कारण भ्रम बना रहता है, कि **'मैं'** वही हूँ।

देह के साथ तद्‌रूपतावश 'मैं देह हूँ' के सन्देह में मानव ने अपने **'नाम'** को रोज़ बदलने वाले रूप का आधार दिया। इस प्रकार देह के रूप का नाम में निर्धारण होने के कारण मानव ही ईश्वरीय सृष्टि में सबसे अधिक दुःखी, त्रसित, भयभीत, आधि, व्याधि-उपाधि से ग्रसित प्राणी है। जन्म होने पर शिशु देह का नाम रखा जाता है। वह अपने साथ कोई नाम नहीं लाता। एक समय पर उसे भी अपने नाम का बोध हो जाता है, कि मेरा अमुक नाम है और यह देह मेरी है। देहाधिपत्य और देहाध्यास का मूल यह **'देहाभास'** है, जिसे जीवात्मा जीव कोटि में हर समय साथ लिए ही रहता है। जिस समय इसे देह का इल्म भी नहीं होता, उस समय भी **'देहाभास'** होता है।

'देहाभास', दृश्यमान साकार देह का अदृश्य भाव (मैं देह हूँ) या आभास है। यह आभास नहीं होगा, तो न **'देहाधिपत्य'** होगा न **'देहाध्यास'** होगा। **'देहाभास'** में जैसी देह है अर्थात् देह के प्रति भाव अथवा अदृश्य आभास जैसा है, तदनुसार ही **'देहाधिपत्य एवं देहाध्यास'** होगा। भौतिक जगत में कुछ भी करने, पाने, खोने और होने के पहले और बाद का एक आभास होता है। यह आभास बहुत महत्त्वपूर्ण है। अमुक वस्तु मिल जाए अथवा ऐसा हो जाए तो मज़ा आ जाएगा। वस्तु अभी मिली नहीं है, लेकिन उसकी प्राप्ति का आभास होने के कारण 'येन केन प्रकारेण' उस लब्ध की उपलब्धि में जीव संघर्षरत हो जाता है। अमुक वस्तु मिल तो गई है, कहीं खो न जाए। वस्तु है, लेकिन मोहवश उसके खोने का आभास हो गया, कि वह वस्तु नहीं है। अतः वस्तु होते हुए भी उसके नहीं होने के आभास ने भय एवं चिन्ताओं से ग्रसित कर दिया। सद्गुरु कहता है, कि "तेरी देह एवं जगत से सम्बन्धित विभिन्न विधाओं में जो तेरे पास नहीं है, उसके होने का आभास और जो तेरे पास है, यदि वह नहीं है, तो इसकी सुख-दुःखमयी मानसिकता से तेरे देहाभास का आकलन होगा।"

मानव-देह स्वयं में **'व्यष्टि'** है एवं सम्पूर्ण जगत सहित **'समष्टि'** है। इसकी दृश्यमान और अदृश्य दो विधाएँ हैं। एक दृश्यमान मानव-देह युगों-युगान्तरों में विस्तृत पंच-महाभूतों द्वारा निर्माण, पालन और संहार तीनों आयामों में दृश्यमान सम्पूर्ण कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों (सूर्य, चन्द्र आदि नक्षत्रों सहित आकाश, पृथ्वी के सातों तल, सम्पूर्ण वायुमण्डल एवं जल मण्डल के जलचरों, थलचरों, नभचरों सहित) एवं समस्त जड़ चेतन प्राणी जगत की प्रतिनिधि है। इस समस्त दृश्यमान प्रदर्शन में अदृश्यता की द्योतक शिव की **विरक्ति** शक्ति है। यह विरक्ति ही युगों-युगान्तरों से पंच-महाभूतों में निर्माण, पालन और संहार के प्रकाट्य में अदृश्य रूप से सतत् चलती दशानन (अविरल, अकाट्य, अबाध, निरन्तर, चिरन्तन, विशिष्ट, सारगर्भित, उद्देश्यात्मक, गुणात्मक एवं संक्षिप्त) गतियों के लिए उत्तरदायी है। जिन दशानन नियमों और विशेषताओं के अनुसार अदृश्य

रूप से पंच-महाभूतों के सम्पूर्ण प्रदर्शन में निर्माण, पालन और संहार होता है, वही एक मानव-देह का होता है।

कोई भी गति बिना शक्ति के नहीं हो सकती। ये सहज जड़ पंच-महाभूत स्वयं में बहुत सशक्त हैं, लेकिन इन्हें स्वयं अपना, अपनी शक्तियों का, ईश्वर का और उसकी विरक्ति शक्ति द्वारा प्रेरित, संचालित, सम्पादित दशानन गतियों का कोई ज्ञान नहीं है। उनके इस ज्ञान को ध्यान में रखे बिना और उनकी सहज जड़ता को ध्यान में रखते हुए शिव की विरक्ति शक्ति इनका क्रियान्वयन इनकी शक्तियों द्वारा करती है, जिसके तहत सम्पूर्ण महाब्रह्माण्ड का दशानन निर्माण, पालन और संहार होता रहता है। इस अदृश्य विरक्ति शक्ति का प्रकाट्य दृश्यमान भस्मी के रूप में तब होता है, जब एक मानव-देह निर्माण, पालन और संहार तीनों विधाओं से मुक्त होकर स्वयं में अदृश्य हो जाती है। देह का अन्त **'मृत्यु'** है, जिसे देहान्त कहते हैं। देहान्त का अन्त, देह का अन्तान्त अथवा देहान्तान्त है। देह के संहार (मृत्यु) के बाद पंच-महाभूतों में पूर्णतः विलय होने पर अर्थात् निर्माण, पालन और संहार तीनों विधाओं का उल्लंघन करने पर **'भसम'** रूप एक पदार्थ पूर्णतः प्रकट होता हुआ दृश्यमान होता है। यह दृश्यमान भस्मी संहारान्त है। दृश्यमान देह के दौरान यह पदार्थ 'विरक्ति' रूप में अदृश्य रहता है।

सिनेमाहाल में फिल्म के अन्त का द्योतक **'समाप्त'** (The End) होता है और उसके बाद समाप्त भी समाप्त हो जाता है तथा सफेद पर्दा एवं बिजली की रोशनी से भरा हॉल रह जाता है। उस सफेद स्क्रीन को देखकर यह ज्ञान नहीं होता, कि फिल्म प्रारम्भ होने वाली है अथवा समाप्त हुई है। इसी प्रकार **'भस्मी'** का प्रकाट्य दृश्यमान सृष्टि में अन्तान्त का अन्त (अन्तान्तान्त) भी है और प्रारम्भारम्भ का आरम्भ (प्रारम्भारम्भारम्भ) भी है। दृश्यमान **'भस्मी'** अदृश्य देह के प्रारम्भारम्भ का आरम्भ है अथवा अन्तान्त का अन्त है; यह चिन्तन व मनन का विषय है। **'भस्मी'** स्वयं में 'कुछ नहीं' है और सब कुछ है, क्योंकि उसका देह व सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड से कुछ न कुछ सम्बन्ध अवश्य है। यह पदार्थ एक मानव-देह सहित सम्पूर्ण महाब्रह्माण्ड का

एक ही है और एक ही जैसा है। भसम किसी एक व्यक्ति की नहीं है, युगों-युगान्तरों की समस्त समष्टि की एक ही है। दृश्यमान देह के दौरान यह पदार्थ (भस्मी) अदृश्य रहता है और जब दृश्यमान होता है, तो देह अदृश्य हो जाती है। अतः भस्मी रूप यह पदार्थ देह से प्रकट हुआ है, देह सहित जगत इससे प्रकट होगा अथवा देह और जगत का अस्तित्व इससे था, यह अनुमान लगाना उसी प्रकार कठिन है जिस प्रकार सिनेमा हॉल की खाली स्क्रीन को देखकर फिल्म समाप्त हुई है अथवा शुरू होगी, इसका निर्णय नहीं हो पाता। दोनों अनुमान सही हैं और सही नहीं भी है। क्योंकि सृष्टि उस सृष्टिकर्ता का खेल है, जिसे दिखाने और देखने के लिए वह बाध्य नहीं है।

मेरा होना सृष्टि के होने के लिए आवश्यक है और मेरा होना ही सृष्टि का होना (अस्तित्व) है। अर्थात् 'मैं' हूँ तो ही सृष्टि है और **'मैं'** नहीं हूँ तो सृष्टि भी मेरे लिए नहीं है। प्रश्न यह उठता है, कि मैं क्या हूँ? जब 'मैं हूँ' शब्दों का उच्चारण होगा, तो मानव देह का होना आवश्यक है। मात्र देह होना ही नहीं उसके होने का ज्ञात-अज्ञात, प्रकट-अप्रकट रूप में प्राकट्य होना भी आवश्यक है। अकेला **'मैं'** (जीवात्मा) तत्त्व यह नहीं कह सकता, कि **'मैं हूँ'।** देह के सान्निध्य में दिए गए दो वक्तव्यों **'मैं देह हूँ'** अथवा **'मैं देह रूप में हूँ'** दोनों बिल्कुल विपरीत वक्तव्य हैं। **'मैं देह हूँ'** सन्देह में मेरी अवचेतना है, जो मेरी देह सहित जगत में आभासित होती हुई प्रकट होती है। **'मैं देह रूप में हूँ'** में मेरी देह सहित जगत में अवचेतना में चेतना का स्तर बढ़ता हुआ प्रतिभासित होता है।

एक देह है तो जगत है। जगत है तो देह होगी ही। एक देह का होना जगत का होना है। जगत वैसा ही होगा, जैसा देह का होना होगा। फिल्म वैसी ही होगी जैसी कि निराकार रील में Recorded है। एक देह की, एक समय में असंख्य सन्दर्भों से असंख्य अवस्थाएँ होती हैं। हम किसी तथाकथित साधारण व सामान्य स्थिति में अपनी अवस्थाओं से अनभिज्ञ होते हैं। जहाँ भी हम होते हैं, वह अवस्था हमारी मानसिकता को प्रभावित कर रही होती

है। इसलिए हम वहाँ होते हैं। जो अवस्था प्रभावित नहीं करती, वह हमारे लिए नगण्य व गौण होती है और उसके होते हुए भी हम वहाँ नहीं होते। इसलिए जो अवस्था हमारी मानसिकता को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्रभावित करती है, वास्तव में वही हमारी अवस्था होती है।

मानसिकता द्वारा अवस्था को प्रभावित करके अवस्था बदली जा सकती है। किसी भी अवस्था में कोई अपने जगत सहित विचरता है और अवस्था बदलने पर उसके सहित उसका जगत बदल जाता है। अवस्था मानसिक है और मानसिक अवस्था जिस मन की है, वह स्वयं में अवस्थातीत है। जिसमें कोई जिस समय स्थिर हुआ है, वही उस समय उसकी अवस्था होती है। यह स्थिरता क्षणिक होती है। **'अवस्था'** शब्द का स्रोत अव+स्थ (स्थिर) है। अव स्थिर के लिए अवस्था शब्द है। अव स्थिर अथवा अव चेतन का अर्थ स्थिरता अथवा चेतना से नीचे की स्थिति है। जो अव स्थिर अथवा किसी अवस्था विशेष में है, उसे तात्कालिक अस्थाई रूप से किसी भी स्थिति में स्थिर किया जा सकता है। क्योंकि प्रत्येक अवस्था सतत् परिवर्तनीय है। कृपया एकाग्र करिए।

कभी किसी जन्म में विशिष्टतम् सद्गुरु कृपा से जीव को सन्देह (मैं देह हूँ) में सन्देह का ज्ञान हो जाता है, कि ''मैं देह नहीं हूँ। देह है, **'मैं'** हूँ लेकिन मैं देह नहीं हूँ, तो मैं कौन हूँ और क्यों हूँ, मैं देह रूप में हूँ लेकिन न मैं देह हूँ और न देह मेरी है, बल्कि मेरे लिए है। यह देह किसलिए है, देह मेरी क्या है तथा मैं इसका क्या हूँ?'' देह भाव के विभिन्न आभासों में ये आभास आते ही **'देह'** और **'मैं'** दोनों में दरार पड़ जाती है तथा दोनों अपने-अपने यथार्थ की ओर अग्रसर होते हैं। दोनों को ज्ञान हो जाता है, कि हम एक नहीं दो हैं, लेकिन इस सन्देह (मैं देह हूँ) के ऐक्य से पीछा कैसे छुड़ाएँ? इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए दोनों कटिबद्ध होते हुए **'सन्धि'** कर लेते हैं। **'सन्धि'** में सहितता दो प्रकार की होती है। किसी के साथ मजबूरीवश चलना पड़ रहा हो तो उस सन्धि में उल्लास, आत्मीयता और स्वाभाविकता नहीं होती। किसी विशिष्ट लक्ष्य को निर्धारित करते हुए की गई सन्धि '**सहज**' होती है।

मैं देह नहीं हूँ, देह मेरे लिए है और देह मुझसे कभी भी छीन ली जाएगी। इसका मुझे विषाद और अवसाद हो जाता है। यह विषाद मुझे यह जानने के लिए उन्मादित करता है, कि मैं कौन हूँ? देह मेरी नहीं है, मेरे लिए है और कभी भी देह मुझे छोड़ सकती है। मुझे अपने स्वरूप की अनुभूति के उन्माद में अत्यधिक अवसाद हो जाता है। यह अवसाद और उन्माद मेरी देह व जगत में समय-समय पर विभिन्न स्वरूपों में प्रतिभासित होता हुआ प्रकट होता है। मैं अपने जुनून या उन्माद को अपने विषाद के उन्मूलन में सदुपयोग करता हूँ। विषाद का तुरन्त शीघ्रातिशीघ्र किसी भी कीमत पर मैं उन्मूलन चाहता हूँ। इसमें देह व जगत का **'सहयोग'** मिलता है और मेरी अवचेतना में चेतना का स्तर निरन्तर उत्तरोतर बढ़ने लगता है।

कृपया एकाग्र करिए, 'मैं **देह नहीं हूँ' यह अवसाद है** क्योंकि आज तक देह के लिए की गई भाग-दौड़ निरर्थ, व्यर्थ और अनर्थ थी। 'मैं कौन हूँ', 'देह क्या है', मेरा इससे और इसका मुझसे सम्बन्ध क्या है? यह उन्माद, जुनून, वहशियत और दीवानगी है। 'मैं देह नहीं हूँ, देह रूप में हूँ' इस अवसाद में उन्माद का होना बहुत आवश्यक है अन्यथा अवसाद अवसरवादिता का रूप ले लेगा। यदि स्वयं को जानने का जुनून या उन्माद हावी न हो, तो विषादी और अवसादी, अवसरवादी हो जाता है। देह कब तक मेरे साथ है, आज भी जा सकती है। यह जुनून दीवानगी या वहशियत बनकर समस्त अवसाद को उन्माद बना देती है। इसके बाद समस्त साधना सम्यक् ही होती है। मेरा सद्गुरु भी सम्यक् होगा। अन्यथा अवसरवादिता में भटकन ही भटकन है।

सन्देह में निःसन्देह सन्देह का ज्ञान सन्देह के उन्मूलन में उन्माद बन कर प्रकट होगा और उस समय **'देह' व 'मैं'** दोनों की संधि सहज होगी। अपने स्वरूप को जानने के उन्मादपरक अवसाद में मैं देह को उपेक्षित नहीं करूँगा। मैं जो हूँ, जैसा हूँ तभी जगत है। अतः मैं जगत में उसी प्रकार हूँ जैसे देह में मुख (चेहरा) होता है। देह में, देह का प्रतिनिधित्व सिर, चेहरा या रूप करता है—सिर है तो देह है। हाथ-पैर के अभाव में भी अपंग देह हो

सकती है, लेकिन सिर या मुख के अभाव में देह नहीं हो सकती। मैं देह रूप में हूँ, तो मैं स्वयं में कौन हूँ? जब तक सन्देह का पूर्णतः उन्मूलन नहीं हो जाता, तब तक सन्धि में देह **'सहयोग'** देती है और जगत का प्रतिनिधित्व तो करती है, लेकिन मेरा (जीवात्मा का) पूर्णतः प्रतिनिधित्व नहीं करती। यद्यपि उसमें देह व जगत पहले जैसा नहीं रहता है। इस जगत में तत्त्वज्ञ, मनीषी, संत, फकीर एवं जिज्ञासु आदि ही मेरे साथ होते हैं अन्यथा सब स्वतः छिटक जाते हैं। उसका आहार और व्यवहार अति सीमित हो जाता है। यह देह अर्थ की ओर अग्रसर है लेकिन यथार्थ नहीं है। **'यथार्थ देह'** एक ओर जगत का प्रतिनिधित्व करती है तथा दूसरी ओर मुझ (जीवात्मा) का भी पूर्णतः प्रतिनिधित्व करती है। वहाँ देह **'मैं मयी'** होगी तथा वह देह और जगत मेरा **'विनियोग'** होता है।

'मैं देह रूप में हूँ' के दो आयाम हैं। पहले में सन्देह का ज्ञान हो जाता है, कि 'मैं देह नहीं हूँ, देह रूप में हूँ' दूसरे आयाम में सन्देह का उन्मूलन हो जाता है, कि 'मैं यथार्थ देह रूप में हूँ'। यदि मैं देह हूँ, तो समय-समय पर प्रकट जगत भी मैं ही हूँ और स्वयं में मैं न देह हूँ, न जगत हूँ। मैं **कुछ नहीं हूँ, कुछ नहीं ही हूँ** और **कुछ नहीं** के अतिरिक्त अन्यथा **'कुछ नहीं'** हूँ। मैं **'सब कुछ'** का दृष्टा (जीवात्मा) हूँ। मात्र मैं ही दृष्टा हूँ, लेकिन मैं मात्र दृष्टा ही नहीं हूँ। दृष्टा के अतिरिक्त भी हूँ। अर्थात् दृष्टा रूप में मैं दृष्टा भी हूँ और कोई दृष्टा है तो मैं **ही** हूँ तथा मुझ दृष्टा का दृष्टा परम पिता परमात्मा है। यह समस्त शास्त्र का **सार** है। सन्देह का मात्र ज्ञान होना सन्देह से मुक्ति नहीं है, लेकिन ज्ञान मात्र होने से आत्म तत्त्व 'मैं' की देह के साथ नाम-रूप में तद्रूपता सी के **'भ्रम'** का निवारण इस संधि में होने लगता है। बिन्दु संयुक्तम् स धि=संधि में चेतन तत्त्व जाग्रत होने लगता है। **'मैं'** और **'देह'** दोनों का चेतन तत्त्व एक ही है। कृपया एकाग्र करिए, मैं पुनः वर्णन करूँगा।

जन्मों-जन्मान्तरों में देहधारणा (मैं देह हूँ) के सन्देहवश जीव-सृष्टि में जीव का **आभास विकृत** हो गया। यह अदृश्य विकृत आभास दृश्यमान देह व जगत में इसका प्रतिरोधी बनकर प्रकट हुआ। **'मैं'** अदृश्य है, देह

दृश्यमान है। अदृश्य और दृश्यमान (**'मैं देह हूँ'**) के ऐक्य एवं सन्देह में देह सहित जगत में **सन्देह ही दृश्यमान** होता है। जीवात्मा, जीव बनकर अपनी अदृश्य सत्ता को भूल जाता है और स्वयं को देह मान लेता है। यह **'देहधारणा'** जन्मों-जन्मान्तरों से चली आ रही है। इस सन्देह में दृश्यमान देह का वर्चस्व बना रहता है। विकृत अदृश्य (मैं देह) के रूप में **'मैं'** जीव बनकर जीव-सृष्टि में भटकता है और समस्त दृश्यमान देह सहित जगत इसका प्रतिरोधी ही होता है।

देह से सन्धि में देह **'मैं'** को अपनी उन स्थितियों और अवस्थाओं का दिग्दर्शन कराती है, जिनमें यह स्वयं देह के नाम-रूप और उस पर आधारित निराधार निर्धारणाओं के आभास से मुक्त होती है। सुषुप्ति, मूर्च्छा, विस्मृति, मृत्यु अवस्थाओं में देह को नाम-रूप में पहचाना जा सकता है। देह की भस्मावस्था ही एकमात्र ऐसी अवस्था है, जो अनाम व अरूप है। देह का यह अविशेष न देह विशेष का है, न विशेष देह का है। **'मैं' (जीवात्मा) देह के साथ संधि में इस अविशेष (भस्मी) से आत्मसात् होने के लिए देह का अवलम्बन लेता है और देह आत्मविभोर एवं सहायक होती हुई अविलम्ब इस पर अवलम्बित हो जाती है।** यहाँ जीव बना जीवात्मा **'मैं'** (आत्म तत्त्व) को मूल बनाकर देह का मात्र अवलम्बन लेता है। दृश्यमान देह के निर्माण, पालन व संहार के समय **'भस्मी'** अदृश्य रहती है। देह के पंच-महाभूतों में पूर्णतया विलय होकर अदृश्य होने के बाद भस्मी रूप में यह पदार्थ (अविशेष) प्रकट होता हुआ दृश्यमान हो जाता है। यह पदार्थ जीवात्मा को उसके स्वरूप की स्मृति दिलाता है, क्योंकि यह उसके जैसा ही देशातीत, कालातीत, लिंगातीत, सम्बन्धातीत, कर्मातीत, धर्मातीत, कर्तव्यातीत एवं माया के सत, रज, तम तीनों गुणों से अतीत है। जीते जी दृश्यमान देह के रहते हुए इस देहातीत पदार्थ से आत्मसात् होने में जीव को अनिर्वचनीय विश्राम एवं संतृप्ति मिलती है।

'मैं' स्वयं में चेतन जीवात्मा तत्त्व का प्रतिनिधि 'शब्द ब्रह्म' है। 'मैं देह हूँ' यह धारणा स्वयं में निर्मूल थी। अब **'मैं'** को मूल रूप में लेकर देह का

अवलम्बन देह की उस अवस्था से आत्मसात् होने के लिए लेता है, जो दृश्यमान देह की समस्त अवस्थाओं से परे देहातीत है। उस अवस्था (भस्मावस्था) की अवधारणा करता है, कि 'मैं भस्मी हूँ'। देह एक दिन थी नहीं और एक दिन रहेगी नहीं। अब जो है, वह मुझे मेरे उस विशुद्ध स्वरूप की अनुभूति कराने के लिए है, जो देहातीत है। इसलिए 'मैं देह हूँ' की निराधार धारणा पर हुई समस्त निर्धारणाओं का उल्लंघन करके देह के अन्तान्त की अवधारणा से इसके पद की स्मृति जाग्रत हो जाती है। **'भस्मी'** का कोई भविष्य, कोई अतीत और कोई वर्तमान नहीं है। अतः भस्मी कालातीत है। जीते जी देहधारणा पर देह के इस पदार्थ के साथ आत्मसात् होने की प्रक्रिया का नाम है–**अवधारणा।**

सद्गुरु कहता है, कि ''तेरे सम्मुख देह सहित जगत में जो-जो, जब-जब, जहाँ-जहाँ, जैसा-जैसा प्रकट हुआ था, है और होगा वह तेरा वर्तमान था, वर्तमान है और वर्तमान होगा। तेरे अतीत का out come तेरा इस समय का वर्तमान है, यह वर्तमान पुनः अतीत बन जाएगा। यह भूत, वर्तमान और भविष्य कालचक्र है, जो जगत सहित तेरी देह की विभिन्न अवस्थाओं और तेरी मानसिकताओं का प्रतिफल है। **'भस्मी'** जो, जब, जहाँ, जैसी देह है, उसकी देहातीत अवस्था है; जो स्वयं में देह की अवस्था होते हुए भी अवस्था देह की नहीं है। यह अवस्था सबकी एक ही है और एक ही जैसी है। 'मैं भस्मी हूँ' इसकी अवधारणा करने के लिए **'मैं'** को मूल बनाकर तू जो, जब, जहाँ, जैसी देह का अवलम्बन लेगा, तो वह देह अविलम्ब तुझ पर अवलम्बित हो जाएगी। भस्मावस्था में देह अदृश्य हो जाती है। वही तेरी स्थिर स्थित्यातीत स्थिति व अवस्थातीत अवस्था है।''

देह में देह की असंख्य स्थितियाँ हैं, जो गति में हैं और गति से हैं, उसमें स्थित होना असम्भव है। देह की एक ही स्थिति और अवस्था ऐसी है, जो गत्यातीत, स्थित्यातीत एवं अवस्थातीत है। इसमें प्रविष्टि एवं स्थिति से समस्त मानसिकताएँ समाप्त हो जाती हैं और आनन्दमय व अभावमय मानस दैदीप्यमान हो जाता है। यह ईश्वर से प्रार्थना एवं आर्तनाद करता है,

कि ''मुझे मेरी भस्मी से आत्मसात् कर दो। देह में हर भविष्य को मैंने अनिश्चित होते हुए भी ढोया है और मैं त्रसित, भयभीत और पीड़ित रहा हूँ। उस भविष्य (भस्मी) को जो निश्चित, दर्शित और परिलक्षित है, उसको मुझे अवधारित करा दो।'' इस अवधारणा में देहाधिपत्य और देहाध्यास क्रमशः भस्माधिपत्य और भस्माध्यास में रूपान्तरित हो जाता है। इसके बाद जो देहाभास होता है वह हर्ष, उल्लासपूर्ण, परम आनन्दमय और आत्म-विभोर कर देने वाला होता है। वह 'मैं मयी' देह स्वयं में भस्मीभूत होती है।

पंच-महाभूतों में निर्मित देह मानस प्रकरण में जब अपनी देह की भस्मी से आत्मसात् होने में मानसिक रूप से विलय हो चुकी होती है, तो यहाँ पर पंच-महाभूतों के स्थान पर **'भस्मी'** का वर्चस्व हो जाता है। इस साधना के सुफल में पंच-महाभूतों पर साधक का नियन्त्रण हो जाता है और पंच-महाभूत उसके अनुकूल होने लगते हैं। कुछ साधक इसी सिद्धि तक रह जाते हैं और अपने साध्य से भटकने लगते हैं। आत्म स्वरूप में पूर्ण स्थिति तक देहाभास रहता है। वहाँ पर **'भस्मी'** ही निर्देशित करते हुए अन्तिम लक्ष्य से च्युत नहीं होने देती। अतः सद्गुरु कहता है, कि ''मानस प्रकरण में अपनी देह की भस्मी से आत्मसात् होते ही तू उस अग्नि व भस्मी को शिव-शक्ति को समर्पित कर दे। क्योंकि भस्मी समस्त सिद्धियों की जननी है। तुझे रिद्धि-सिद्धियों के मायिक जाल में भटका सकती है। जब तू उसे शिव-शक्ति को समर्पित करेगा, तो तुझमें प्रभु का प्रेम जाग्रत होगा। तेरा देह का मोह हमेशा के लिए समाप्त हो जाएगा और तू विशुद्ध हो जाएगा। तेरी दृष्टि, दृष्टिकोण सम्यक् होगा तथा तू निर्लिप्त भाव से माया की सभी विधाओं का रसास्वादन करेगा।''

जीवात्मा एक मानव-देह द्वारा कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों की सम्पूर्ण निराकार व साकार दृश्यमान सृष्टि के रसास्वादन का ही नहीं, बल्कि स्वयं में अदृश्य उस कलातीत एवं कालातीत स्रष्टा और उसकी बहुआयामी अदृश्य कलाओं के दर्शन का अधिकारी भी है। सदगुरु के सद्निर्देशन में किए गए मानस प्रकरण में पंच-महाभूतों में विलय होती देह से साधक उसके

'नाम' को माँगता है और देहाभास में उस नाम को धारण करता है। यहाँ उसे अध्यास एवं अधिपत्य भस्मी का होता है। वहाँ पर मानस में स्थिर अग्नि और स्थिर भस्मी की आकांक्षा होती है और उसे उस तत्त्वातीत तत्त्व के खोने का भय होता है। उस अग्नियुक्त भस्मी के आभास में वह अपनी भस्मी और अग्नि को अपने माता-पिता शिव-शक्ति के चरणों में समर्पित कर देता है। ''मैं भस्मी हूँ, भस्मी मेरी है। प्रभु ! भस्मी आपका अंग राग है। आज आप मेरी भस्मी ओढ़िए, मुझे प्रसाद-स्वरूप एक चुटकी भस्मी दे दीजिए, जो अविरल व अखण्ड हो। हे, माँ जगदम्बा ! आप मेरी जलती हुई चिता की सारी अग्नि अपने में समाहित कर लीजिए। मुझे एक छोटी सी टिमटिमाती हुई ऐसी लौ दीजिए, जिसे वायु बुझा न सके, जल बहा के ले जा न सके।'' पंच-महाभूतों के किसी भी प्रभाव से परे चुटकी भर भस्मी के ऊपर टिमटिमाती हुई पंच प्राणों की लौ जीवात्मा का अपना स्वरूप है। जीवात्मा का स्वरूप अग्निमुक्त भस्मी नहीं, अग्नियुक्त भस्मी का प्रसाद है–चुटकी भर भस्मी पर टिमटिमाती हुई अखण्ड व अविरल अदृश्य जोत। दोनों निराकार हैं। यही आत्मा का स्वरूप है। यह स्वयं में अदृश्य अनुभूति है। भस्मी से आत्मसात् होने के बाद जो भस्मीमय देह है, उसका आभास आर्तनाद कराएगा, कि ''हे प्रभु ! मुझे दिव्य देह दो।'' जब शिव-शक्ति की कृपा से अखण्ड भस्मी और अखण्ड ज्योति का योग प्राप्त हो जाता है, तो यह हर्ष, उल्लास, अभय, आरोग्य, सर्वसम्पन्न, कर्म-बन्धन से मुक्त, प्रकट अथवा अप्रकट रूप से अविरल नाम-जाप, प्रभु के मोहाश्रुओं एवं आनन्दातिरेक से ओत-प्रोत विरक्त देह (मैं मयी) होती है। अब वह पंच प्राण सहचरी आत्मामयी देह कहती है–मैं आत्मा हूँ। जीवन काल में वह विदेह देह अथवा दिव्य यथार्थ देह कभी अन्यार्थ नहीं होती। वह पूजनीय होती है और इसमें चेतना का स्तर परिपूर्ण होता है। भस्मी के आभास के वर्चस्व के कारण वह महापुरुष दर्शनीय होता है।

''बोलिए सियावर रामचन्द्र की जय''

(29 नवम्बर, 21 से 30 दिसम्बर 2010 एवं 22 जनवरी 2011)

सन्देह एवं विदेह

आज मैं परम सद्गुरु-कृपा से एक गोपनीय एवं मात्र श्रुतिगम्य विषय आप समस्त आशीष्य अति जिज्ञासुओं के मध्य अनावृत करने जा रहा हूँ। विषय है–''**सन्देह एवं विदेह'।** इस विषय का श्रद्धापूर्वक एवं एकाग्रता से श्रवण मात्र आपको समस्त सन्देहों से मुक्त कर, निःसन्देह कर देगा। हम सब बेशक अति शक्की, भयभीत, अनेक संशयों एवं सन्देहों से भरे हुए भ्रमित जीवन ढो रहे हैं। सन्देह व भ्रम दूर होने से हम निःसन्देह हो जाएँगे। तभी जो जीवन स्वतः आनन्दमय है, उसके पल-पल का रसास्वादन कर पाएँगे।

सन्देह और **विदेह** में 'मानव-देह' एक Common Factor है, उसे उपेक्षित नहीं किया जा सकता। **'मैं देह हूँ'** इस **सन्देह** में भी देह है और **'मैं विशुद्ध जीवात्मा हूँ',** इस **विदेह** भाव में भी देह होती है। दोनों में अन्तर मानवीय सुख-दुःखमयी मानसिकता और ईश्वरीय आनन्दमय मानस का है। जीवात्मा के लिए यथार्थ देह एक ही है, वही थी और वही होगी। प्रश्न यह है, कि देह का निर्देशक आनन्दमय मानस है अथवा मानसिकता ? देह जिस मानस अथवा मानसिकता द्वारा संचालित होती है, वैसा व्यवहार करती है और वैसा ही उसका जगत होता है। शराब, अफीम आदि मादक द्रव्यों के सेवन से एक ही देह पृथक् व्यवहार करने लगती है। ईश्वर का भजन करके वही देह अलग हो जाती है। किसी दुष्ट के पास बैठ कर देह अलग हो जाती है। किसी सन्त, महापुरुष की समीपता में वही देह अलग हो जाती है। परिवार के विभिन्न सम्बन्धों में वही देह अलग-अलग रूप धारण करती है। मित्रों के सामने अलग, शत्रु के सामने अलग होती है। लेकिन देह कैसी स्थिति अथवा स्थित्यातीत स्थिति में है और तद्नुसार उसका जगत कैसा

होगा, यह पूर्णतः इस सद् पर निर्भर करता है, कि देह का निर्देशक साकार जगत की सुख-दुःखमयी मानसिकता है अथवा आनन्दमय मानस।

'मैं देह हूँ' **'सन्देह'** में प्रकट देह की निर्देशक वो मानसिकता है, जो संशय, भ्रम, विक्षेप व अनेकानेक प्रश्नों से युक्त अशक्त मानवीय मन की है। कोई गाड़ी वहीं जाएगी, जहाँ उसका चालक उसे ले जाएगा। चालक की बुद्धि भ्रष्ट हो जाए अथवा अन्यथा चालक गाड़ी को गड्ढे मे डाल दे, तो गाड़ी ने टूट-फूट कर भी स्वयं नहीं चिल्लाना। यदि जीवित होगा, तो वह चालक ही शोर मचाएगा, कि मुझे बाहर निकालो। अन्यथा गाड़ी ऐसे चालक से मुक्त हो जाएगी। अपने जीवन-काल में देह के रहते मुझे जानना होगा, कि मेरी देह को निर्देशित करने वाला संशय, सन्देह, भ्रम, विक्षेप, डर, तनाव, ईर्ष्या, द्वेष आदि मानसिकताओं एवं काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि विकृतियों से युक्त आसक्त व अशक्त मानवीय मन है अथवा परम विरक्त आनन्दमय एवं अभावमय ईश्वरीय मानस है। मेरी देह क्या है? मेरे लिए है या नहीं? जो मानव देहधारी अपनी देह व देह चलाने वाले को मानते हैं और मानकर उस अदृश्य सत्ता के प्रति पूर्णतः समर्पित हो जाते हैं, वही **मानव तथा मान्यवर** हैं। अन्यथा 84 लाख योनियों में भटकने वाले मानव-देहधारी तेज़ बुद्धि के **'जानव'** हैं। वे बहुत कुछ जानते एवं मानते हैं, लेकिन स्वयं को और ईश्वर को न जानते हैं और न जानना चाहते हैं। वे **'सन्देहपरक'** जीव-सृष्टि में पुनः पुनः जन्मते-मरते रहते हैं।

'सन्देह' स्वयं में शास्त्रीय शब्द है। इसका किसी अन्य भाषा में कोई अनुवाद नहीं है। जीवात्मा की चेतना में देहभाव युगों-युगान्तरों से है। 'मैं स देह हूँ' में देह और मैं पृथक्-पृथक् हैं, एक नहीं हैं। उदाहरणतः कोई व्यक्ति अपनी पत्नी के साथ हो, तो उसे सपत्नीक कहा जाता है। यहाँ पति-पत्नी दोनों पृथक्-पृथक् हैं। 'संपत्नीक' शब्द नहीं है। **'स देह'** में बिन्दु लग गया। बिन्दु शिव का स्वरूप है। बिन्दु संयुक्तम् सदेह=संदेह। 'बिन्दु' महत्त्वपूर्ण है, अतः सन्देह स्वयं में 'सदेह' नहीं है। 'मैं सदेह हूँ' यह देहधारणा सन्देह नहीं है, क्योंकि सदेह में आत्म तत्त्व (मैं) एवं देह की पृथक्ता का आभास होता

है। 'मैं देह हूँ' यह **'सन्देह'** है। यहाँ देहधारणा पर निर्धारणा हो गई, कि मैं अमुक-अमुक नाम-रूप की देह हूँ।

जीवात्मा के लिए यथार्थ **'गर्वित'** (स्वाभिमानयुक्त) देह प्रकट होती है। वह **'गर्भित'** अर्थात् जन्म-मृत्यु के सन्देह पर निर्धारित Conceptual देह नहीं होती। 'मैं देह हूँ' भाव में जब देह का निर्धारण हुआ, तो जीवकोटि में जीवात्मा की **गर्वित** देह जन्म लेने वाली **'गर्भित'** देह हो गई। यह निर्धारणा स्वयं में निराधार थी, क्योंकि आज तक किसी ने स्वयं को पैदा होते नहीं देखा। इस निर्धारण पर निर्धारित देह यथार्थ नहीं थी। देह धारणा पर देह निर्धारणा और फिर इस निर्धारणा पर **'निर्धारणा दर निर्धारणा'** (देश, काल, धर्म, कर्म, कर्तव्य, लिंग, पद-प्रतिष्ठा, मर्यादाएँ, संस्कार, पद्धतियाँ, रीतियाँ, नीतियाँ, जाति, कुल, प्रारब्ध, अच्छा, बुरा, पाप, पुण्य, सुख, दुःख, सुन्दर, कुरूप, मान, अपमान, लाभ, हानि, उन्नति, अवनति, ज्ञान, अज्ञान, जनबल, छलबल और माया के सत, रज, तम तीनों गुण आदि) होती रही। इसके फलस्वरूप **'मैं'** (जीवात्मा) **'सन्देह'** में अति संकुचित व तुच्छ जीव बनकर जन्मों-जन्मान्तरों के मिथ्या एवं कल्पित कालचक्र में भटकने पर विवश हो गया।

'नाम' के बिना सृष्टि में जगत-व्यवहार चलना सम्भव नहीं था। **'नाम'** मानव का, मानव द्वारा रखा गया। देह का पल-पल बदलता रूप इतना मायामय है, कि मुझे इसका आभास नहीं होता। महादुर्भाग्यवश, जड़तावश मुझे कोई सन्देह ही नहीं है, कि देह तो मैं हूँ ही। यह सन्देह में सन्देह का निम्नतम स्तर है। यहाँ सद्गुरु की आवश्यकता नहीं है। क्योंकि सर्व समर्थ सद्गुरु भी यहाँ कुछ नहीं कर सकता। इस सन्देह में जीव जो कुछ सोचता व सुचवाता है, वह in doubt होता है तथा जो करता-करवाता, बनता-बनाता है, वह Doubtful और अनेक प्रश्नों से घिरा हुआ होता है एवं जो खोता या पाता है वह full of doubts ही होता है। युगों-युगान्तरों में विस्तृत ईश्वरीय **'प्रदर्शन'** यहाँ कभी न सुलझने वाला **'प्रश्न'** बनकर रह जाता है। कृपया एकाग्र करिए।

कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों की यह संसार महानाट्यशाला उस एक कलाकार परम पिता परमात्मा (जिसे मैंने ब्रह्मात्मा की संज्ञा दी है) की अनेकानेक बहुआयामी गणनातीत कलाओं का असंख्यामी प्रदर्शन है। यह प्रदर्शन नित नूतन है। नदियाँ, प्रपात, झरने, गरजते-लरजते सागर, उमड़ते-घुमड़ते मेघ, सतरंगी इन्द्रधनुष, चाँद, सूरज आदि नक्षत्रों से सुसज्जित आकाश, असंख्य पक्षियों के मन मोहक कलरव, तरु, पल्लव, भाँति-भाँति के मौसम, त्रिविध समीर, मलयानिल, असंख्य पृथक्-पृथक् मानव चेहरे, जलचर, थलचर, नभचर आदि-आदि समस्त चराचर जगत उस एक अदृश्य कलाकार (मेरे प्रभु) की स्वयं में अदृश्य कलाओं का प्रदर्शन है। पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि एवं आकाश स्वयं में सहज जड़ होते हुए भी दशानन स्वरूपों में अदृश्य रूप से सतत् गतिमान हैं। प्रदर्शन में सतत् परिवर्तन अनिवार्य और अत्यावश्यक है। कोई कलाकार जब तक अपनी कला का प्रदर्शन न करे, तब तक उसकी कला अदृश्य रहती है। इसलिए कला स्वयं में अदृश्य है, उसके प्रदर्शन से ही उसकी कलाओं का दिग्दर्शन होता है।

एक मानव-देह स्वयं में समस्त दृश्यमान प्रदर्शन, उस स्रष्टा कलाकार (ईश्वर) की समस्त कलाओं के दर्शन एवं स्वयं उस कलाकार के दिग्दर्शन की एकमात्र प्रतिनिधि एवं संघनित स्वरूप है, जिसका क्रियान्वयन जीवात्मा के द्योतक **'मैं'** शब्द द्वारा होता है। इस देह को नाम-रूप में संकुचित करने से **'मैं'** जीवकोटि में भटक गया क्योंकि परमात्मा का **'दर'** छूट गया। न केवल **'दर'** छूट गया, बल्कि **'दर'** की जगह **'डर'** ने ले ली। मानव की चेतना में **'डर', 'घर'** कर गया और यह प्रदर्शन **'दर'** की विमुखता में **प्रश्न** बन कर रह गया। प्रदर्शन की प्रत्येक विधा अलौकिक एवं आलोकित है, क्योंकि कलाकार स्वयं सच्चिदानंद प्रभु हैं। प्रभु और उनकी कलाएँ अलौकिक व आलोकित तो हैं, परन्तु अवलोकित नहीं हैं। सन्देह ('मैं देह हूँ') के कारण प्रदर्शन में ईश्वर की कलाओं का दर्शन भी नहीं हो पाता और हर प्रदर्शन **'दर'** की विमुखता सी में **'प्रश्न'** बना रहता है। अन्तहीन प्रश्नों में ईश्वरीय प्रदर्शन, उसकी कलाओं का दर्शन और कलाकार का दिग्दर्शन

सब समाप्त हो गए, क्योंकि **'मैं'** शब्द जीवात्मा का प्रतिनिधि न रहकर (मैं अमुक-अमुक देह हूँ) संदेह में भटक गया।

'मैं' सबकी एक है और एक ही **'मैं'** सब देहें लगा रही हैं। यदि 'मैं देह हूँ' तो कौन सी देह हूँ? **सन्देह में सन्देह का ज्ञान ही आत्मज्ञान का शुभारम्भ है**। यहाँ दैवीय अधिनियमानुसार सद्गुरु प्रकट हो जाता है। अतः सन्देह में सन्देह का ज्ञान होना, ज्ञान का प्रथम सोपान है। उच्चतम् सोपान है, कि निःसंदेह सन्देह का ज्ञान हो जाए, कि "हे प्रभु! मैं देह नहीं हूँ, मुझे इस सन्देह से बाहर निकालो। देह का नाम नहीं रखता हूँ, तो व्यवहार चलना असम्भव हो जाता है। नाम-रूप में तद्रूपता का सन्देह असंख्य निर्धारणाओं में मुझे घेर लेता है। नाम-रूपों में असंख्य देहें हैं, लेकिन **'मैं'** एक ही और एक ही जैसी है। मैं क्या करूँ, मैं फँस गया हूँ। विवश हूँ, मैं इससे बाहर नहीं आ सकता। देह की सुषुप्ति में मेरा **'मैं'** शब्द में प्राकट्य नहीं होता। निद्रा से उठते ही मेरी **'मैं'** सन्देह में घिर जाती है, कि मैं अमुक-अमुक नाम-रूप की देह हूँ। **'मैं'** सो रहा था, मैं पैदा हुआ था, मैंने उसी सन्देह में कहा। जो मेरी **यथार्थ** एवं **'गर्वित'** देह प्रकट हुई है, उसे मैंने सन्देहवश Conceptual (**'गर्भित'**) देह बना लिया। इस गर्भित देह के साथ मुझे सन्देह में अपना जन्म-मृत्यु, जरा, रोग, आधि, व्याधि, उपाधि, काल-बन्धन, कर्म-बन्धन, सम्बन्ध, मर्यादाओं, धारणाओं, रीति-रिवाजों, असंख्य निराधार मलिनताओं एवं विकृतियों ने घेर लिया। देह नित नूतन है, हर **दिन** नित नूतन है और प्रत्येक दिन की **निधियाँ** भी अपने में नित नूतन प्रकट होती हैं, लेकिन **मैं** प्रारब्धवश, अज्ञानवश, सन्देहवश 84 लाख मायिक विधाओं में धारावाहिक सज़ाएँ भुगत रहा हूँ। मुझे कृपा करके अपनी शरण में ले लो।" वहाँ सद्गुरु जीव को घोर सन्देह और अधमाधम गति में होते हुए भी शरण में ले लेता है। सद्गुरु कृपालु होता है और उसका सब कुछ हितकारी होते हुए जीव को **'सन्देह'** से बाहर लाने के लिए ही होता है।

सद्गुरु-निर्देशन में जितना कृत्य, अकृत्य, पुरुषार्थ और जो कुछ भी

है, था और होगा, वह हमें देह की विभिन्न विकृत मानसिकताओं से परे ले जा कर हमारे देहातीत, आनन्दमय एवं अभावमय मानस को उभारने के लिए होता है। जिससे वह ईश्वरीय मानस हमारी देह को चलाए। जो देह ईश्वरीय आनन्दमय मानस से संचालित होती है, वह देहातीत व आत्मामयी विदेह देह होती है। विदेह देह स्वयं कुछ करती नहीं है, उसके द्वारा कृत्य होते हैं और जो कुछ करना, पाना-खोना होता है, वह आनन्द में तथा आनन्दमय होता है। क्योंकि संचालक एवं प्रेरक स्वयं आनन्द है, जो जीवात्मा का अपना स्वरूप है। **विदेह देह जन्म-मृत्यु के छोरों में बँधी देह से परे वह यथार्थ देह है, जिससे जीवात्मा को परम पिता परमात्मा ने नवाज़ा है।**

हम सब मानव-देहधारी हैं। मानव होने के नाते यह जान सकते हैं और जानकर व मानकर पूर्णतः आश्वस्त हो सकते हैं, कि देह में आजीवन श्वास चलता रहता है और हृदय धड़कता है। यह किसी मानव का कृत्य नहीं है। जब हृदय धड़कना और श्वास चलना बन्द हो जाता है, तो देह निष्प्राण हो जाती है। दिन रात किसी भी अवस्था में श्वास नहीं रुकता। जब रुकता है, तो देहान्त हो जाता है। देह की भीतरी कार्य-प्रणालियाँ सदा कार्यरत रहती हैं और इनका सुचारु एवं सुसम्बद्ध क्रियान्वयन किसी के हाथ में नहीं है। इन भीतरी क्रियाओं के सुनियोजित क्रियान्वयन पर ही हमारी छोटी से छोटी बाह्य क्रिया निर्भर करती है। यदि हृदय ज़ोर-ज़ोर से तेजी से धड़कने लगे, तो उसके लिए कोई नहीं कहता, कि हृदय पापी या पुण्यी हो गया है। देह का समस्त भीतरी संचालन सम्पूर्णतः देह के निर्माणकर्ता, पालनकर्ता एवं संहारकर्ता ईश्वर के हाथों में है। अतः देह के भीतर चलती इन समस्त अदृश्य क्रियाओं के कारण जो बाहरी जगत में कार्य होते हैं, वह भी परमात्मा ही करता और करवाता है।

विदेह देह में और उस देह द्वारा सब कुछ आनन्द में, आनन्दमय और आनन्द द्वारा चेतनामय सद् प्रकाट्य होता है। ऐसे महापुरुषों के अपने कोई कार्यक्रम नहीं होते। वे स्वयं को स्वयं ही जनवाते हैं। विदेह देह,

जीवात्मावतरण (जीवात्मा+अवतरण) का प्रतिनिधित्व करती है। उस देह में, उस देह द्वारा पंच-महाभूतों की तरह ईश्वर स्वयं सब कुछ करते हैं। पंच-महाभूतों (पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि एवं आकाश) को अपना कुछ ज्ञान नहीं है। अपनी शक्तियों का और प्रभु का भी कुछ ज्ञान नहीं है। ये पाँचों स्वयं में परम सशक्त होते हुए भी सहज जड़ हैं। इनसे सृष्टि में प्रभु ही सब कुछ करवाते हैं। इनके द्वारा सृष्टि में निर्माण, पालन, संहार, पुनर्निर्माण एवं संशोधन अदृश्य रूप से होता रहा है और होता रहेगा।

अलौकिक व आलोकित ब्रह्मात्मा में उसकी इच्छाशक्ति भगवती द्वारा समभाव (एकोऽहम् बहुस्याम्) उत्पन्न हुआ, तो ब्रह्मात्मा की अदृश्य में परमात्मा और जीवात्मा दो विधाएँ हो गईं। परमात्मा ने सृष्टि के स्रष्टा, पालनकर्ता एवं संहारकर्ता के आनन्द का कार्यभार लिया और जीवात्मा अदृश्य रूप से इन तीनों विधाओं का आनन्दमय दृष्टा हुआ। परमात्मा स्वयं में स्रष्टा ही नहीं, दृष्टा जीवात्मा का महादृष्टा भी है। जीवात्मा भी स्वयं में अपने पिता परमात्मा और माँ भगवती के समान अलौकिक, आलोकित एवं अदृश्य है। ॐकार नाद से प्रकट समस्त कोटि-कोटि महाब्रह्माण्ड अलौकिक और आलोकित होने के साथ अवलोकित भी हैं। आज आपकी विशिष्ट जिज्ञासावश मैं आत्मानुभूति एवं ब्रह्मानुभूति का संगम भगवान शंकर के महाप्रसाद रूप में आध्यात्मिक इतिहास में प्रथम बार अति सरल व बोधगम्य शैली में आपके सम्मुख रख रहा हूँ। आपकी अति श्रद्धा व एकाग्रता वांछनीय है।

'मैं' शब्द रूप में जीवात्मा का प्रतिनिधि है, जिसका प्रकाट्य मानव-देह की चेतना का तनिक अवलम्बन लिए बिना नहीं हो सकता। साथ ही **'मैं'** शब्द के प्रकट हुए बिना कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों के प्रदर्शन की प्रामाणिकता, सत्यापन एवं पुष्टि नहीं हो सकती। यहाँ एक बहुत बड़ी दुर्घटना हो गई, कि मानव-देह के साथ तद्‌रूपता सी में एक विशिष्ट 'जटिल्य' (Complex) अथवा गांठ (ग्रन्थि) सी पड़ गई। इसका नाम है–**'सन्देह'**। **'सन्देह'** का बिन्दु **'मैं'** का द्योतक है, कि मैं सदेह ही हूँ। दृष्टा

जीवात्मा अदृश्य है अतः निःसन्देह है, **'न सदेह'= निरस्सन्देह**। सदेह जीव होकर जीवात्मा स्वयं में सन्देह युक्त एवं लौकिक हो गया और अपना आलोक खो बैठा तथा सृष्टि का अवलोकन भी तदनुसार हो गया।

ईश्वरीय मानस सद्-चेतन-आनन्द का अविरल, अकाट्य संगम है, क्योंकि अभावमय है। उस अखण्ड व परम स्थिर मन में इस अभावमयता का स्वयं में इतना भाव है, कि इसके सम्मुख किसी का कोई भाव नहीं है। उसमें न कोई अतीत (भूत) है, न कोई भविष्य है। इसलिए उसमें समय के तीनों (भूत, भविष्य, वर्तमान) रूपों और काल की तीनों विधाओं (समय, स्थान, स्थिति) का कोई भाव नहीं है। अतः उस मानस में परम सन्तुष्टि, आनन्द एवं स्थिरता है। उस मन का स्वरूप आनन्द है और ईश्वरीय बुद्धि जो करोड़ों ब्रह्माण्डों का सतत् निर्माण, पालन एवं संहार करती रहती है, महाचेतना है। सम्पूर्ण दृश्यमान ब्रह्माण्डों में महाजड़ता से महाचेतना के सभी स्तर उसी के हैं। एक ही महाचेतना विभिन्न चेतनाओं में क्रीड़ा करती है। ऐसे महा आनन्द एवं महाचेतन दोनों में परस्पर **'समन्वय'** ही होता है। **'सम्' 'अन्' 'य'** अर्थात् एकोऽहम् बहुस्याम् में प्रकट चराचर सृष्टि में अन्य सब समान हैं। अखण्ड आनन्द व चेतन का समन्वित स्वरूप **'सद्'** है। सद्गुरु के श्रीचरणों में श्रद्धापूर्वक प्रणाम करते हुए अपनी बुद्धि से अपनी भटकी हुई बुद्धि का समर्पण कर देना है। उसकी कृपा से बुद्धि की चेतनता एवं मन का आनन्द अनाच्छादित हो जाएगा। दोनों का समन्वय ही स्थिरता है। आनन्दमय मानस एवं चेतनामयी बुद्धि के अदृश्य समन्वय से सद् का प्रकाट्य होगा। ईश्वर की इच्छाशक्ति **'भगवती'** साकार की स्वामिनी है और साकार जगत चौरासी लाख विधाओं अथवा योनियों में है।

उस भगवत्ता की सद् इच्छाशक्ति माँ भगवती है। ब्रह्मात्मा के आनन्दमय व अभावमय मानस में इच्छाशक्ति से एक इच्छा या विचार उत्पन्न हुआ, कि प्रभु एक से अनेक हो जाएँ। आद्याशक्ति भगवती की इच्छा या विचार भगवद् अभावमय मानस में भाव बनकर उभरा। इस भाव का नाम **'समभाव'** था। हमारे मन में पहले कोई भाव उठता है, जो विचार बनकर

मानस में ही शब्द लेता है। फिर तदनुसार हम निर्णय लेते हैं, कि वह प्रकट हो या न हो। बहुत से भाव संकल्प-विकल्प एवं विचार होने के बाद प्रकट नहीं होते। हमारे भाव अक्सर नहीं हमेशा ही अतीत की भावनाओं एवं भविष्य की असंख्य सम्भावनाओं से घिरे रहते हैं। इसके विपरीत इस ईश्वरीय **'समभाव'** का चमत्कारिक सौन्दर्य यह था, कि इसमें न कोई अतीत की भावना थी और न भविष्य की सम्भावना थी। समभाव भूमिका है और **'ॐकार'** नाद रूप में सृष्टि का बीज है। इस नाद से समस्त कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों का निर्माण, पालन एवं संहार होते हुए अन्ततः इसी ॐकार नाद में सम्पूर्ण महाब्रह्माण्ड समाहित हो जाते हैं। ॐकार का शीर्ष बिन्दु ब्रह्मात्मा के ब्रह्मानंद की अतिशक्ति विरक्ति का द्योतक है।

निर्माण, पालन एवं संहार तीनों विधाएँ प्रकाट्य हैं। प्रकाट्य में **'संहार'** शब्द उचित नहीं है; क्योंकि जिस प्रकार निद्रा में स्वप्न सृष्टि प्रकट होती है और कुछ देर चलकर निद्रा में ही विलीन हो जाती है। उसमें किसी का संहार नहीं होता, मात्र प्रकाट्य एवं विलय होता है। उसी प्रकार पंच-महाभूतों में सृष्टि '**कुछ नहीं'** (विरक्ति) से प्रकट होकर, चलती हुई, '**कुछ नहीं**' अर्थात् विरक्ति के महा आनन्द में विलय होती रहती है। कृपया एकाग्र करिए। एक व्यक्ति सोया हुआ है, वह निद्रा से उठता है। यह उठना क्या है? व्यक्ति उठता है और उठा हुआ होता है; दोनों स्थितियों में सूक्ष्म, लेकिन महत्त्वपूर्ण अन्तर है। जब वह उठता है, तो उसकी **'मैं'** प्रकट हो जाती है। सोते समय उसे मालूम नहीं था, कि वह सोया हुआ है, लेकिन उठते ही उसे मालूम हो गया, कि वह सोया हुआ था। सद्‌गुरु प्रश्न करता है, कि ''तुझे कैसे मालूम कि तू सोया हुआ था, क्या तूने अपना सोना देखा था ?'' कि '''नहीं, अब मैं उठा हूँ, तो मुझे मालूम हुआ, कि मैं सोया हुआ था।'' सद्‌गुरु कहता है, कि ''तेरी **'मैं'** प्रकट हो गई, तो तुझे ज्ञान हो गया, कि तू सोया हुआ था। सोते हुए भी तू जीवित था, तेरी देह का संचालन पूरी तरह सुचारु रूप से हो रहा था। सुषुप्ति काल में जीवित होते हुए और समस्त दैहिक, बौद्धिक, मानसिक शक्तियों से युक्त होते हुए भी तू अर्थहीन,

निष्क्रिय और जड़ था। यह तेरी मानसिकता थी। इसमें प्रकट सुषुप्त देह तेरी **'मैं'** को प्रकट नहीं कर रही थी। इसलिए तुझे देह व जगत का और अपना स्वयं का भी कोई ज्ञान नहीं था। तेरे कान सुनने योग्य होते हुए भी कुछ सुन नहीं पा रहे थे, नाक सूँघने योग्य होते हुए भी सूँघ नहीं पा रही थी। जीभ चखने और त्वचा स्पर्श करने योग्य होते हुए भी चख और स्पर्श नहीं कर पा रही थी। साथ ही क्या व कैसा सुना, सूँघा, चखा और स्पर्श किया, इसका वर्णन करने योग्य भी तू नहीं था।

एक **'मैं'** के प्रकट होते ही एक तो तुझे ज्ञान हो गया, कि तू सोया हुआ था दूसरे, तू उठकर न केवल देखने, सुनने, चखने, स्पर्श करने और सूँघने योग्य हुआ, बल्कि क्या व कैसा लगा, यह वर्णन करने योग्य भी हो गया। अब तू उठते ही ईश्वरीय प्रदर्शन का रसास्वादन करने के लिए पहले उसका **'दर'** पकड़ ले। अन्यथा उठते ही पशुवत् उठा हुआ होकर तू जीवकोटि में सन्देह युक्त हो व्यर्थ, निरर्थ और अनर्थ प्रश्नों में फँस जाएगा। तुझे 'मैं देह हूँ' सन्देह होना स्वाभाविक है। इससे मुक्त होने के लिए तू सद्गुरु के **'दर'** पर ध्यान में बैठ और उस सुषुप्ति की मानसिकता को देख, जिसमें तू न देह था, न तेरे लिए उस समय तेरा कोई जगत था। तू पहले जान ले और मान ले, कि तू देह नहीं है। अपना सन्देह दूर कर, कि तू कुछ भी तब है जब तेरी **'मैं'** प्रकट रूप में तेरे साथ है। **'मैं'** के बिना तेरी डिग्रियाँ, प्रतिभाएँ, कलाएँ, पद-प्रतिष्ठा, मान-सम्मान, परिवार, सम्बन्ध, जाति, धर्म आदि तेरे लिए कुछ नहीं होते।''

'मैं' स्वयं चेतना है, जो कभी नहीं सोती। **'मैं'** लगी-लगाई है। उठने में और सुषुप्ति में भी **'मैं'** लगी-लगाई होती है। निद्रा से उठने में कहीं बाहर से आकर प्रकट नहीं होती। एक देह सुषुप्त है, उसकी **'मैं'** भी सुषुप्त है। क्योंकि देह के साथ तद्रूपता सी के भ्रम में उसने भी स्वयं को सोया हुआ मान लिया, इसलिए सुषुप्ति की उस जड़ स्थिति में आत्मतत्त्व, **'मैं'** शब्द में प्रकट नहीं होता। सुषुप्ति जीव की वह मानसिकता है, जिसमें उसकी चेतना का आच्छादन इतना सघन हो जाता है, कि उसकी मान्यता हो जाती है, कि

मैं भी सुषुप्त हूँ। उसने इस स्थिति का दर्शन और अनुभूति नहीं की। एक देह के उठने में जीव ने स्वयं को भी उठा हुआ मान लिया और उठने पर जाना कि पहले वह सोया हुआ था। सद्गुरु कहता है, कि ''**'मैं'** न कभी सोती है, न उठती है, न जन्म लेती है न मरती है। **'मैं'** न पुण्यी है न पापी है। न सुखी है न दुःखी है। **'मैं'** जीवात्मा का द्योतक शब्द है, जीवात्मा नहीं है। **'मैं'** को देह के साथ तद्रूपता हो गई, कि 'मैं देह हूँ' यह तेरा सन्देह है। इसमें तेरी **'मैं'** और **'देह'** दोनों का आच्छादन हो गया। देह अपना यथार्थ (यथा+अर्थ) खोकर जगत सहित देह की विभिन्न विधाओं में भिन्न-भिन्न पदार्थों के लिए लालायित होती हुई निरर्थ, व्यर्थ और अनर्थ में भटकने लगी। **'मैं'** का आत्म तत्त्व और ईश्वर का ईश्वरत्व भी आवृत हो गया। गर्वित यथार्थ देह ही गर्भित जन्म-मृत्यु में बँधी निरर्थ, व्यर्थ व अनर्थ देह हो गई।''

'मैं' जीवात्मा का शब्द रूप में प्राकट्य **'नाद'** है। अतः **'मैं'** स्वयं में **'शब्दब्रह्म'** है, जिसे देखा, सूँघा, चखा और छुआ नहीं जा सकता। 'मैं देह हूँ' यह एक अदृश्य एवं निराकार भाव है। देहधारणावश प्रस्फुटित इस भाव में किसी विशेष देह अथवा देह विशेष का निर्धारण नहीं होता। इसलिए निःसन्देह 'मैं देह हूँ' यह संदेहयुक्त भाव है। एक जीवात्मा (**मैं**) का यह भाव, कि 'मैं देह हूँ' जब प्रकट हुआ तो एक, एकानेक और अनेकानेक देहों के असंख्य नामों-रूपों एवं स्वरूपों में दृश्यमान हुआ। अर्थात् प्राकट्य में **एक** जीवात्मा के लिए **एक** देह, जगत सहित देह अथवा देह सहित जगत के रूप में दृश्यमान हुई। यहाँ जीवात्मा (**'मैं'**) जीवकोटि में देह निर्धारण में उलझ गया। देह धारणा के कारण **'मैं'** देह के साथ तद्रूपता सी में देह से युक्त अथवा देह के साथ लगा हुआ ही हूँ। निःसन्देह ही **'मैं'** निःसन्देह हूँ, कि देह तो मैं हूँ ही और मैं देह ही हूँ। 'मैं देह हूँ' यह अदृश्य एवं निराकार भाव है, जिसमें एक साकार देह का प्राकट्य नहीं होता। देह के साथ जगत होता ही है। यह निर्धारणा मैं अमुक (रूप) अमुक (नाम) की देह हूँ बेबुनियाद रेत की दीवार की तरह निराधार है। जो जगत सहित देह प्रकट हुई उसका आधार

देह भाव था, कि 'मैं देह हूँ'। लेकिन जब निर्धारण हुआ कि 'मैं अमुक-अमुक हूँ', इसका कोई आधार नहीं था। कृपया एकाग्र करें।

निद्रा से उठकर सुषुप्तावस्था में देखे स्वप्न के पूरे एपीसोड पर विचार करें, कि उसमें जो मेरी देह होती है और बहुत सी देहें होती हैं, वे सब किसी माँ के गर्भ से पैदा हुई नहीं होतीं। स्वप्न-सृष्टि के पंच-महाभूत व असंख्य पदार्थ उसी समय प्रकट हुए और उनका विलय हो गया। लेकिन स्वप्न में मुझे वह सब प्रकाट्य नहीं लगा। निद्रा से उठकर जिस देह व जगत में मेरा विचरण है, उसका उस स्वप्न के सम्पूर्ण एपीसोड से कोई सम्बन्ध नहीं है; लेकिन उसके भावों से **'मैं'** प्रभावित हूँ। स्वप्न का **'सद्'** यह है, कि वह मात्र स्वप्न था लेकिन स्वप्न के चलते मुझे यह मालूम नहीं **था**, कि यह स्वप्न **है**। निद्रा से उठकर उसका सद् मालूम चला, कि वह स्वप्न **था**। स्वप्न अतीत में था और स्वप्न भविष्य में होगा। जिसमें **'मैं'** स्वप्न का वर्णन कर रहा हूँ वह **'वर्तमान' में सपना है।** अतीत के सपनों की भावनाओं और भविष्य के सपनों की सम्भावनाओं का मिला-जुला रूपान्तरण यह वर्तमान का सपना है। आगे स्वपनों के आने की सम्भावना है, लेकिन स्वपनों में इच्छानुसार वैसा होने की सम्भावना रखना मूर्खता ही है। क्योंकि जिस प्रकार पिछली रात जो सपना आया था, उसमें वैसा सब कुछ होने की सम्भावना नहीं थी, इसी प्रकार आगे क्या सपना आएगा, उसकी सम्भावना व्यर्थ है।

स्वप्न में जो कुछ भी मैंने किया, वह मुझसे करवाया गया। वैसा ही होना था और आगे भी जो, जब, जैसा मुझसे और अनेक से करवाया जाएगा, होगा। वर्तमान में तथाकथित जाग्रत होकर मैं पिछले स्वप्न की व्यर्थ बात करता हूँ और आगे आने वाले स्वप्न में कुछ होने अथवा बनने की सम्भावना का भी कोई अर्थ नहीं है। बीते हुए स्वप्न की भावना व्यर्थ है और आगे आने वाला स्वप्न यदि आएगा, तो फिर कुछ भावना छोड़ जाएगा। यह नींद से उठकर तथाकथित जागा हुआ जो मैं देख रहा हूँ, वह सपना भी न लगे, लेकिन अतीत में रात्रि की निद्रा में स्वप्न देखा जिसमें जो मेरी एक देह थी वह देह, यह देह नहीं है। साथ ही उस स्वप्न का कुछ शेष या अवशेष भी

नहीं है। इस सद् से मैं तथाकथित जागा हुआ पूर्णतः आश्वस्त हो जाता हूँ। अतः उस देह व जगत का इस वर्तमान देह व जगत से कोई सम्बन्ध ही नहीं है। केवल मेरे मन में उसकी भावनाएँ हैं, लेकिन उनके आधार पर अगले स्वप्न की सम्भावनाएँ मुझे नहीं हैं। बीते हुए सपने का सम्पूर्ण एपीसोड मात्र मेरे लिए और मेरे लिए मात्र है। जो सपना बीत गया उसमें मुझे मालूम नहीं चला, कि यह सपना है और जो सपना आएगा उसमें भी मुझे मालूम नहीं चलेगा, कि यह सपना है।

सद्‌गुरु आश्वस्त करता है, कि "तू यह जो देख रहा है और जिसमें स्वप्न को स्वप्न मान कर वर्णन कर रहा है, यह भी सपना **है**। जिस प्रकार सोते हुए भी स्वप्न में तू उठकर ही भाग-दौड़, लेना-देना आदि कर रहा था, उसी प्रकार उठा हुआ तू अब भी कर रहा है। तू मान ले इस वर्तमान देह सहित जगत में जो तू विचर रहा है, यह भी सपना है। जगत सब सपना है, इसकी Realisation तुझे निद्रा से उठकर करनी होगी, क्योंकि यह तेरे लिए सपना नहीं है। वह सपना **था,** जिसका तू वर्णन कर रहा है, आगे और भी सपने आएँगे, लेकिन सपन की स्वप्न रूप में अनुभूति के लिए इस वर्तमान देह सहित जगत को तुझे सपना मानना होगा। यह सपना है और उस स्वप्न की ही भाँति तेरे हाथ में कुछ नहीं है। यह तेरी सन्देह (मैं देह हूँ) की मोह निद्रा (कुछ नहीं) से प्रकट हुआ, **'कुछ नहीं'** (विरक्ति) में चल रहा है और 'कुछ नहीं' में ही समाहित हो जाएगा। जैसेकि रात्रि का स्वप्न निद्रा से प्रकट होकर, निद्रा में चला और निद्रा में ही समाहित हो गया। तू मान ले, कि यह सब कुछ तेरे एक के कारण **है**, लेकिन इसका कारण तू नहीं है। लेना-देना, सम्बन्धी, लाभ-हानि, पाप-पुण्य सब स्वप्न के **हैं**। जिसका आधार तेरी एक देह के साथ नाम-रूप की अवचेतना में तद्‌रूपता है। तुझे इस वर्तमान देह सहित जगत को स्वप्न मानना होगा अन्यथा तू देह के सद् से अनभिज्ञ रहेगा।"

'मैं' सोने से पूर्व उठा हुआ था और जब सोकर उठा, तो उठा हुआ था। दो उठनों के मध्य सोना है। उठी हुई **'मैं'** पहले सोई हुई थी और सोने

से पहले उठी हुई थी। क्योंकि उस **'सोने'** में **'मैं'** नहीं लगी, इसलिए यह उठी हुई **'मैं'** सन्देह में है। इसके पास **'सोने'** का और सोए हुए की कोई स्मृति नहीं है। इसलिए **'मैं'** ने सन्देह (मैं देह हूँ) में सोने जा रहे और निद्रा से उठने वाले स्वयं को एक मान लिया। नाम वही है, लेकिन व्यक्ति वह नहीं है। स्वप्न **था** यह **सद्** है आगे फिर जब मैं सो जाऊँगा, तो स्वप्न **आएगा** यह भी सद् है, यहाँ महत्त्वपूर्ण यह जानना और मानना है, कि यह स्वप्न **है**।

सद्गुरु कहता है, कि ''स्वप्न के अतिरिक्त भी आजतक जो कुछ तूने देखा और उसके प्रति तेरे भाव जो भी, जैसे भी हैं, वे सब सन्देह में हैं। क्योंकि वह सब भी स्वप्न ही था। आगे जो तू देखेगा, वह भी स्वप्न ही होगा, तो उनकी सम्भावना क्यों बना रहा है? अभी-अभी रात्रि में जो तूने स्वप्न में देखा, कि तू उठा हुआ था, भाग-दौड़ कर रहा था, लेना-देना, मिलना-बरतना वैसे ही कर रहा था जैसे स्वप्न के अतिरिक्त आजतक जो, जब, जहाँ, जैसा तूने देखा, उसमें कर रहा था। अपनी सोई हुई निष्क्रिय देह का तुझे ज्ञान ही नहीं है। तुझे तो मालूम ही नहीं था, कि यह स्वप्न है। स्वप्न सुनाते समय तू अपनी सुषुप्ति का तो जिक्र ही नहीं कर रहा। उस स्वप्न में तेरा हँसना-रोना होते हुए भी वास्तव में कुछ नहीं था। यदि तेरी नाम-रूप की देह में तद्रूपता न होती, तो तू स्वप्न का जिक्र भी नहीं करता। स्वप्न में तू सोया हुआ भी उठा हुआ था, लेकिन जाग्रत नहीं था। अब भी तू वैसे ही उठा हुआ है, अब तू जाग।''

स्वप्न सन्देह में है, लेकिन स्वप्न में यह नहीं लगता, कि यह सब कुछ सन्देह में है। इसलिए देखते समय उसकी स्वप्नवत् प्रतीति नहीं होती। समस्त यादें सन्देह में होती हैं। महापुरुषों की स्मृतियाँ होती हैं जो आनन्दमय होती हैं। यथार्थ देह की स्मृतियाँ होती हैं। **'मैं'** शब्द का प्रकाट्य चेतना और जड़ता में नहीं होता। एक व्यक्ति सोकर उठा और एक योगी समाधि से उठा। सोकर उठने वाला जड़ता से अवचेतना में सन्देहयुक्त उठा। उसकी **'मैं'** देह के साथ नाम-रूप में तद्रूप हुई, हुई है। वह सन्देह

वाली **'मैं'** है। मैं सोया था, अब उठ गया हूँ। **'मैं'** कभी नहीं सोता **'सन्देह'** (मैं देह हूँ) सोता है और सन्देह उठता है। सन्देह में देह धारणा हुई और नाम-रूप में देह का निर्धारण होने से सन्देह पुष्टतर हो गया। अतीत और सम्भावित भविष्य **सन्देह में** हैं क्योंकि वर्तमान में यह उठना सन्देह में है, कि मैं अमुक-अमुक उठ गया हूँ। **'मैं अमुक-अमुक''** स्वयं में **'सन्देह'** है। देह धारणा नाम-रूप की देह की निर्धारणा में पुष्ट हो गई। इस एक निर्धारणा में देश, काल, सम्बन्ध, धर्म, कर्म, कर्तव्य, पद-प्रतिष्ठा, लिंग, लेना, देना, सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण, लाभ, हानि, जन्म, मृत्यु, सुख, दुःख, ईर्ष्या, द्वेष, वैर, भय, त्रास, आधि, व्याधि, उपाधि आदि असंख्य निर्धारणाएँ हो गईं।

निद्रा से उठकर सन्देह में थक कर सोने की इच्छुक नाम-रूप की देह की याद है, लेकिन सोए हुए की याद नहीं है। सोने में उसे देह की अवचेतना व नाम-रूप सम्बन्धी विविध विधाओं से निजात मिलती है, लेकिन इस स्थिति को उसने देखा नहीं। देह की Non-Conscious-ness थी, लेकिन Non-Consciousness की Consciousness नहीं थी। Non-Consciousness की Consciousness, Awareness है। इसलिए उठकर ताज़गी की अनुभूति, थकावट व सोना तीनों सन्देह में हैं। सन्देह में उठकर स्वयं को रात को थके हुए सोने जा रहे व्यक्ति की Continuity मान लिया।

अवचेतना की अपनी शक्ति है। सद्‌गुरु-कृपा से जिज्ञासु सर्वप्रथम निद्रा से उठकर अवचेतना में अपनी Oneness (एकत्व) की अनमोलता और महत्त्व को पहचानने का प्रयास करता है। सद्‌गुरु कहता है, कि ''देह रूप में इस समय, इस स्थान एवं इस स्थिति में तू एक है, तो ही अनेक है। आज तक के इतिहास व अतीत के कुल ख्याल, देह रूप में तेरे विविध संस्मरण (**बिन्दु संयुक्तं स मरण**) और सुख-दुःख की विभिन्न यादों का आधार एक नाम-रूप की अवचेतना में तेरा एक भाव है, कि 'मैं देह हूँ'। निद्रा से उठकर तू देख, कि उस दिन का कोई भी अतीत (अनेकों सहित) तेरे इस समय के एक भाव पर आधारित है, कि मैं अमुक-अमुक हूँ। तू बच्चा था, युवा था, किसी भी समय, किसी भी स्थान और किसी भी स्थिति, अवस्था, परिस्थिति

में तू तब था, जब तू इस समय, इस स्थिति और इस स्थान पर देह रूप में एक है। तेरी समस्त था, थे, थी और गा, गे, गी इसलिए हैं क्योंकि तू है और तू देह नहीं है। देह अवचेतना में है। तू देह है, यह तेरा सन्देह है। इसमें तेरा अतीत अवचेतना में था और भविष्य भी अवचेतना में होगा, क्योंकि इस समय तू सन्देह में है। तू इस समय अमुक-अमुक है इसलिए रात्रि में थककर सोने जा रहा था, सोया था और अब उठा हुआ है। यह दूसरी बात है, कि तूने सोया हुआ स्वयं को नहीं देखा। तू उठा हुआ स्वयं को देख सकता है तो सोया हुआ क्यों नहीं देख सकता? तेरी **'मैं'** तो कभी नहीं सोती। **तेरी 'मैं'** वास्तव में देह के साथ तद्‌रूपता में **'सन्देह युक्त'** है। वही सोने जा रही थी और वही अब उठी है। सन्देह वाली **'मैं'** सन्देह में सोई और सन्देह में उठी है। इसलिए अब भी तू सन्देह में है। तू सोए हुए को उठा हुआ मान रहा है। सन्देह में यह उठा हुआ फिर सन्देह में सोएगा और अगर उठेगा तो सन्देह में ही उठेगा। ऐसे ही सन्देह में एक दिन तू चिर निद्रा (मृत्यु) में सो जाएगा।''

सन्देह में **'स्मृति'** भगवती जाग्रत नहीं होती। जो होती है वह भ्रमवती होती है। स्मृति शास्त्रीय शब्द है और स्वयं में भगवती है। आत्मतत्त्व की जागृति के बाद **'स्मृति'** जाग्रत होती है, अन्यथा देह के साथ तद्‌रूपता में **'संस्मरण'** होते हैं, उन्हें स्मृतियाँ नहीं कहा जा सकता। 'मैं देह हूँ' सन्देह में 'मैं देह' और 'मैं अमुक-अमुक' का युग्म हो गया। **'मैं'** शब्द **'मयता'** की ध्वनि लिए है। **'ईश्वरमय'** हो जाना, **'आत्मामय'** हो जाना, **'तन्मय'** हो जाना। **'मय'** अर्थात् **'मैं'**। 'मैं देह हूँ' यह देहमयता सन्देह है। **स स्मरण** में बिन्दु लगने से **'संस्मरण'** शब्द का अर्थ देह रूप में किसी व्यक्ति की निजी यादें होती हैं। संस्मरणों का दृष्टा अपरिवर्तनीय होना चाहिए, लेकिन विभिन्न संस्मरण परिवर्तित स्थितियों के हैं। **'संस्मरणों'** में दृष्टा (मैं अमुक-अमुक देह हूँ) सन्देह युक्त होता है। यहाँ **'मैं'** शब्द, देह के नाम-रूप का प्रतीक है और एक देह विशेष जो निर्धारित है, उस तक सीमित है।

कोई भी प्रमाण-पत्र **'नाम'** का होता है। अतीत के समस्त संस्मरण या यादें **'नाम-रूप'** की साकार देह पर आधारित होती हैं। इसमें **'मैं'** और

'नाम' अपरिवर्तनीय होते हैं। जबसे मुझे याद है तब से, अब तक की निरन्तरता का आधार **'मैं'** और **'नाम'** का **'एक'** होना है। लेकिन **'नाम'** **जिसका है वह देह नित नूतन एवं क्षण-क्षण परिवर्तित होने वाली है।** साथ ही समय-समय का जगत भी तदनुसार सतत् परिवर्तनशील है। संस्मरणों में बहुत बड़ी त्रुटि और सन्देह यह होता है, कि जो मैं आज व्यक्ति हूँ, नाम एक होने के कारण जिसके साथ अतीत में कोई घटना घटी मैं मानता हूँ, कि अब भी मैं वही व्यक्ति हूँ। मैं भूल गया कि वह देह आज की देह नहीं है। नाम वही है लेकिन व्यक्ति वह नहीं है। इसलिए समस्त संस्मरण सन्देह में होते हैं। एक ही संस्मरण एक दिन मुझे प्रसन्नता प्रदान करता है, किसी दूसरे दिन मुझे उदास कर देता है। एक ही संस्मरण विभिन्न स्थितियों में परिवर्तित रूप ले लेता है। इसलिए वह संस्मरण स्वयं में सन्देह है, क्योंकि वर्णन करने वाला दृष्टा सन्देह में है, कि मैं अब भी वही व्यक्ति हूँ। **'मैं'** वही है लेकिन **'मैं'** जिस देह को उस नाम-रूप में प्रस्तुत कर रहा था **'नाम'** वही होते हुए भी देह अब वो नहीं है। **'मैं'** देह रूप में देखता हूँ तो मेरी समस्त यादें, कसमें, प्रतिज्ञाएँ, मर्यादाएँ सन्देह में होती हैं। देह नित नूतन है। जिस देह का संस्मरण है, उस समय वह भी नई थी।

महापुरुषों की स्मृतियाँ होती हैं। उसमें **'देह'** **'मैं'** मयी होती है। उनकी यथार्थ देह होती है। वह जन्म-मृत्यु से परे होती है। वे मात्र लीला करते हैं। उनकी देह विशुद्ध जीवात्मा का चेतना में प्रतिनिधित्व करती है। किसी भी अतीत (Past) अथवा भविष्य (Future) का आधार **'मैं हूँ'** (वर्तमान) है। जो, जब, जहाँ, जैसा होगा उसके साथ ऐसा ही होगा। जब मैं सोया हुआ था, तो सन्देह में था, इसलिए **'मैं'** (जीव) ने सोना नहीं देखा। निद्रा में तेरी **'मैं'** लुप्त हुई, उससे जब तू उठा तो तू अलसाया हुआ निद्रा से ओत-प्रोत उठा। मृत्यु, भस्मी, मूर्च्छा आदि स्थितियाँ **'मैं'** ने नहीं देखीं। सद्गुरु कहता है, कि ''यह **'मैं'** तेरी समाधि भी नहीं देखती, लेकिन **'मैं'** शब्द जिस आत्म तत्त्व का प्रतिनिधित्व करता है; उसने **'समाधि'** देखी है। समाधि में तेरी **'मैं'** लुप्त हो जाती है। उससे जब तू उठता है, तो आनन्द से

सराबोर हुआ होता है। वह आनन्द की स्थिति तेरी चेतना है। **'मैं'** जीवात्मा तत्त्व क्रियाशील एवं ऊर्जा से ओत-प्रोत होता है। वह **'मैं'** अपने स्वरूप जिसका वह प्रतिनिधि है, समाधि से उसकी स्मृति लेकर उठती है।''

निद्रा से उठने वाला 'सन्देह' में रात्रि में थके हारे सोने जा रहे व्यक्ति की अथवा रात के सपने की Memory लेकर उठता है। इस Memory का आधार **'सन्देह'** ('मैं देह हूँ') है। अतः वह स्वयं में निराधार होती है। वह **'मैं'** देह की प्रतिनिधि होती है। समाधि से उठने वाली **'मैं'** सन्देह में नहीं होती। **'मैं'** आत्म तत्त्व की प्रतिनिधि होती है और **'देह'** उसका प्रतिनिधित्व करती है। वह यथार्थ देह ईश्वर द्वारा ही निर्देशित होती है और वह **'मैं'** देह और जगत की एकमात्र दृष्टा (जीवात्मा) होती है। वहाँ प्रारब्ध, काल-बन्धन, कर्म-बन्धन का सिलसिला हमेशा के लिए समाप्त हो जाता है। ईश्वर द्वारा निर्देशित, दैवीय कार्यक्रमों से भी वह **'मैं'** बँधती नहीं है। वह **'मैं'** स्थान, स्थिति व समय से परे स्थित्यातीत स्थिति में होती है। जिसने **'मैं'** द्वारा निद्रा स्थिति को देख लिया उसकी जागृति हो जाती है। उस जागृति में भी **'मैं'** शब्द लुप्त हो जाता है, लेकिन जब **'मैं'** शब्द प्रकट होता है, तो स्वयं में आनन्द से सराबोर होता है।

स्वयं में **'समभाव'** प्रकट होकर भी भावना एवं सम्भावना से रहित है। इस सम्पूर्ण प्रादुर्भाव का एकमात्र प्रतिनिधि मानव-देह है। यह प्रपंचमय प्रकाट्य एक इन्द्रजाल, जादू या प्रभु का खेल है, जो बहुत कुछ होते हुए भी स्वयं में **'कुछ नहीं'** है। यह जो **'कुछ नहीं'** है, इसका दृश्यमान स्वरूप एक देहातीत पदार्थ है, जो सम्पूर्ण चराचर जगत के प्रदर्शन के अन्त के अन्त का अन्त है। पंच-महाभूतों के प्रपंचमय खेल में दृश्यमान **'भसम'**ही समभाव का द्योतक पदार्थ है, जो जीवात्मा (मैं) के अक्षुण्ण पद का अर्थ एवं उसके विशुद्ध स्वरूप का प्रतिनिधित्व करता है। **'भसम'** का प्रकाट्य इस समस्त प्रदर्शन के अन्त के अन्त के अन्त (अन्तान्तान्त) का ही नहीं प्रारम्भ के आरम्भ के आरम्भ (प्रारम्भारम्भारम्भ) का भी द्योतक है। यह भसम जीवात्मा (मैं) के लिए **'मैं'** शब्द की भाँति मात्र प्रकट ही नहीं **'दर्शित'** भी है। **'समभाव'** के

अन्तान्त का अन्त **'भाव सम'** (भसम) में होता है। समभाव के प्रदर्शन के इस दर्शित पदार्थ भसम (भावसम) से आत्मसात् होने के लिए मानव-देह का अवलम्बन लेने पर देह अपने जगत सहित अविलम्ब जीवात्मा (**मैं**) पर अवलम्बित हो जाती है।

शैशव (जन्म) से शव (मृत्यु) और शव के भस्मी बनने तक प्रतिक्षण देह परिवर्तित होती है। जब (समय), जहाँ (स्थान) और जैसी (स्थिति) जो देह है, **'मैं'** वैसी की वैसी है। इसलिए **'मैं'** देह के साथ तद्‌रूप हो ही नहीं सकती। यदि तद्‌रूपता हो गई, तो वह भ्रम है। इस तद्‌रूपता के भ्रम का मर्म **'सन्देह'** है। **'मैं'** शब्द एक एवं अनेक में समय, स्थान और स्थिति के परिवर्तित होते हुए भी वैसा ही रहता है। जो जब, जहाँ, जैसी भी देह है, थी और होगी, उसमें **'मैं'** शब्द के अतिरिक्त अपरिवर्तनीय और स्थिर तत्त्व **'भस्मी'** है। **'मैं'** और **भस्मी** दो तत्त्व ऐसे हैं, जो सदा **'वैसे के वैसे'** रहते हैं। **'मैं'** शब्द **ब्रह्म** भी है और शब्द **भ्रम** भी है। जीव देह धारणा में भ्रमित सन्देह में है, तो यह शब्द भ्रम है और यदि **'मैं'** जीवात्मा विशुद्ध अदृश्य दृष्टा है, तो शब्द **'ब्रह्म'** है। **'मैं'** स्वर या नाद है, शब्द रूप में सुना जा सकता है। लेकिन देखा, छुआ, सूँघा और चखा नहीं जा सकता। **'मैं'** को **'मैं'** के प्रकट होने पर ही सुना जा सकता है और तभी कुछ सुना, देखा, छुआ, सूँघा और चखा जा सकता है। **'भसम'** को देखा, छुआ, चखा, सूँघा जा सकता है, लेकिन सुना नहीं जा सकता। यह **'भसम'** तत्त्व **'एक'** का एकान्त तत्त्व है। एकान्त+तत्त्व की सन्धि करें तो **'एकान्तत्त्व'** हुआ। देह के अन्त के अन्त (अन्तान्त) के अन्त में प्रकट होने वाला तत्त्वातीत तत्त्व भस्मी वस्तुतः एकान्तान्त है।

देहधारणावश हुई निर्धारित देह द्वारा जब तू अपनी '**वैसी की वैसी**' **'मैं'** (आत्मत्व) को '**वैसी की वैसी**' **'भस्मी'** के साथ आत्मसात् करेगा और उस देहातीत पदार्थ (भसम) की अवधारणा करेगा, कि 'मैं भस्मी हूँ' तो पहले तेरी देह निर्धारणा हटेगी। इसका अभ्यास करते-करते एक दिन सद्‌गुरु कृपा से तेरी देहधारणा ही भस्मी धारणा में रूपान्तरित हो जाएगी। स्वयं में

देह होते हुए तेरी एक देह में एकान्तत्त्व जाग्रत हो जाएगा। **यह एकान्तत्त्व ही तेरा शिवत्व है**।''

माया स्वयं में ईश्वर की बहुआयामी अनेकानेक कलाओं का असंख्यामी रहस्यमय, चमत्कारिक प्रदर्शन है। इस समस्त प्रपंच व भ्रम के नेपथ्य में कारणं कारणानाम् **'ब्रह्म'** है। वह माया का स्वामी है। इस माया रूपी **'भ्रम'** को देखने से पहले हमें ज्ञान होना चाहिए, कि यह भ्रम है, तभी इस प्रपंच का रसास्वादन सम्भव होगा। ईश्वर के इस मायिक प्रदर्शन को देखने की आध्यात्मिक वैज्ञानिक विधि है। पहले मानव-देह का अवलम्बन ध्यान में देह को **'दहन'** या भसम करने के लिए लेना है। **'दहन'** शब्द में **'देह न'** छिपा हुआ है। प्रारम्भारम्भ अर्थात् जब, इस देह के लिए एक बिन्दु अथवा भ्रूण (Zygote) रूप में गर्भाधान हुआ, से लेकर अन्त (मृत्यु), अन्तान्त (चिता में दहन) और पूर्ण भस्मीके प्रकाट्य तक मात्र **'भसम'** ही देह की एक ऐसी अवस्था है, जो सतत् व अविरल होते हुए परिवर्तनों के एवज़ में होते हुए भी स्वयं में अपरिवर्तनीय है। इस अवस्था में पंच-महाभूतों की देह समस्त प्रपंच सहित पंच-महाभूतों में विलीन हो जाती है। वहाँ देह नहीं रहती।

इस प्रकार जीते जी देह के रहते ध्यान (समाधि) द्वारा अपनी देह की **'भसम'** से आत्मसात् होने के लिए देह का अवलम्बन लेने पर वह प्राणमयी जाग्रत मानव-देह अविलम्ब जीवात्मा पर अवलम्बित हो जाती है। वह मानस की अवस्था, जिसमें देह के अन्तान्त का अन्त हो जाता है, जिस देह से इस अवस्था के लिए ध्यान में 'देह का दहन' होते अनुभव किया उस ध्यानावस्था के दौरान वह देह **'मैं'** (विशुद्ध जीवात्मा) का प्रतिनिधित्व करती हुई यथार्थ हो जाती है। भाव से देह का अवलम्बन देह की भस्मी से आत्मसात् होने के लिए लिया। सद्गुरु कृपा से उस भसम से **'मैं'** (जीवात्मा) की अपनी स्मृति जाग्रत हो जाती है। अब जो **'देह न'** है, वह **'मैं'** (जीवात्मा) हूँ और वह देह, विदेह है।

सद्गुरु का ख्याल, विचार, सान्निध्य, स्पर्श, दृष्टि, वचनामृत, श्रवणामृत, चरणामृत, कृत्य-अकृत्य, कर्म-अकर्म और मौन भी जीव के भ्रम

का नाश करने वाला होता है। सद्‌गुरु भ्रमवश **जीव** को माया के तीनों गुणों से पार करवाता है। मानव-देह सम्पूर्ण माया और माया के तीनों गुणों (सत्, रज और तम) का प्रतिनिधित्व करती है। देह के संहार के बाद का पदार्थ **'भसम'** है और **'मैं'** शब्द नाद है। **'भस्मी'** पदार्थ है, उसमें नाद नहीं है और **'मैं'** मात्र नाद है, पदार्थ नहीं है। भसम (शिव) और **'मैं'** (जीवात्मा) के संगम द्वारा गुणातीत स्थिति परमात्मा व जीवात्मा के मिलन की द्योतक है। **'मैं'** (जीवात्मा) ईश्वर के तीनों गुणों से युक्त प्रदर्शन का रसास्वादन तो करता ही है, ईश्वर की असंख्यामी कलाओं के दर्शन के साथ स्वयं ईश्वर के दिग्दर्शन का अधिकार भी रखता है।

'देह का दहन' अन्तान्त है और भसम का प्राकट्य अन्तान्त का अन्त है (अन्तान्तान्त) और आरम्भारम्भ का प्रारम्भ (प्रारम्भारम्भारम्भ) है। 'भसम' रूप में यह पदार्थ स्वयं में पारब्रह्म परमेश्वर का प्रतिनिधित्व करता है। अतः जीवात्मा के अपने दृष्टा 'पद का अर्थ' है। **'मैं'** शब्द जीवात्मा का प्रतिनिधि है। अतः **'मैं'** (जीवात्मा) और भसम (परमात्मा) दोनों प्रतिनिधियों का मिलन मात्र माया के तीनों गुणों के उल्लंघन द्वारा सम्भव होगा। **'मैं'** और **'भसम'** का एकात्म जीवात्मा और परमात्मा का नाद और पदार्थ रूप में दैवीय संगम है। दोनों देहातीत हैं, इसलिए **'देहातीत'** के मिलन के लिए देह का उल्लंघन अत्यावश्यक है। देह का उल्लंघन ही माया के तीनों गुणों का उल्लंघन है। यह प्रकरण मात्र सद्‌गुरु कृपा पर आश्रित है, जिसकी **'साधन'** देह ही है। असद् का आधार सद् है, लेकिन असद् स्वयं में 'सद्' नहीं है। सद् का दर्शन मात्र 'असद्' के उल्लंघन द्वारा होगा। असद् और सद् सापेक्षिक हैं। असद् (माया का समस्त प्रदर्शन) भी पार ब्रह्म परमेश्वर की अभिव्यक्ति है, लेकिन इसका उद्देश्य मात्र **'सद्'** को जनवाने के लिए है।

परम इष्ट कृपा से जब **'मैं'** विदेह देह में गुणातीत हो जाता हूँ, तो उसके बाद ही माया के तीनों गुणों का रसास्वादन करता हूँ। अन्यथा सन्देह में गुणों से ग्रसित हो जाता हूँ और मेरे द्वारा मात्र फँसास्वादन होता है।

सतत परिवर्तित तीनों गुण इस मायिक प्रदर्शन में मात्र मेरे आत्मरंजन के लिए **'दर्शित'** हैं, क्योंकि एक ही स्वाद स्वयं में नीरस और बेस्वाद होते हुए अवसाद सा हो जाता है। अतः प्रदर्शन में परिवर्तन अनिवार्य है। लेकिन जीवकोटि में प्रदर्शन में दर्शित तीन गुण ही मुझे ग्रसित करने लगते हैं। माया के तीनों गुणों में दर्शित कोई परिवर्तन मुझे ग्रसित न करे, इसके लिए मुझे देह से, देह के लिए देहातीत व गुणातीत का अवलम्बन लेना होगा, फिर प्रदर्शन में भय व चिन्ता नहीं मात्र कौतूहल होगा।

जब किसी **'रूप'** को **'नाम'** निर्धारित करता है, तो देह विशेष एवं उसकी विशेषताओं के कारण वह, विशेष देह बन जाती है। प्रत्येक देह को प्रभु ने विभिन्न **विशेषताएँ** प्रदान की हैं। एक ही नाम के कई व्यक्ति होते हैं। इसलिए देह विशेष को उस देह से सम्बन्धित विशेषताओं द्वारा पहचाना जाता है। देह विशेष, देह के रूप का नाम है। अमुक नाम, अमुक रूप और अमुक-अमुक विशेषताओं में देखते हुए हम उलझते चले जाते हैं। हमारा सन्देह प्रत्येक देह के साथ बढ़ता ही रहता है। अत्यन्त सन्देह का निवारण देह की एक अवस्था (भस्मीवस्था) से आत्मसात् होने पर ही सम्भव है। उस अवस्था में **'देहभाव'** का सर्वथा अभाव हो जाता है। न देह विशेष रहती है, न विशेष देह रहती है। देह विशेष और विशेष देह की वह अविशेष अवस्था एक ही है। भस्मी स्वयं में अ विशेष है। समस्त भावों का मूल **'देहभाव'** है और **'देहभाव'** का अभाव (देह भाव+अभाव=देह भावाभाव) होते ही मानस अभावमय हो जाता है। इसे देहाभाव (देह+अभाव) अथवा देह भाव+अन्त=देह भावान्त भी कह सकते हैं। देहाभाव अथवा देहभावाभाव भी एक भाव है।

भस्मी वह पदार्थ है, जहाँ देहान्तान्त (देह+अन्तान्त) होने पर देहभाव निर्मूल हो जाता है। 'मैं अमुक-अमुक हूँ' यह देह भाव है। एक अमुक **'नाम'** का द्योतक है, दूसरा अमुक **'रूप'** का द्योतक है। जहाँ रूप के साथ नाम और नाम के साथ रूप जुड़ा, वहाँ असंख्य **'अमुक'** और जुड़ जाते हैं, जिन्होंने मुझे **'देह विशेष'** से **'विशेष देह'** बना दिया। उन विशेषताओं में

मेरा सन्देह और पुष्ट हो गया। मेरा इस चक्रव्यूह से बाहर आने का मार्ग ही अवरुद्ध हो गया। उसी में मेरा जन्म होता है, मैं तथाकथित जीवन को ढोता हूँ और उसी में मृत्यु हो जाती है।

प्रभु महाकलाकार हैं। उसने प्रत्येक देह में भिन्न-भिन्न साधारण, असाधारण, विशिष्ट और अति विशिष्ट विशेषताएँ दी हैं। प्रत्येक देह, विशेष देह है और नित नूतन है। नित्य उसमें नवीन विशेषताएँ प्रकट **हो**ती हैं। प्रत्येक देह विशेष, विशेषताओं सहित सतत् परिवर्तित होती रहती है। ये विशेषताएँ मुझे जीवन का रसास्वादन नहीं करने देतीं। क्योंकि मैं विशेषताओं के प्रस्तुतिकरण (प्रकाट्य) और तथाकथित अपनी कलाओं में उलझ गया। मैं अति विशिष्ट होना चाहता हूँ। इन विशेषताओं को अधिक से अधिक पाने और उसकी प्रस्तुति में अक्सर मैं शिष्टता खोकर अशिष्ट तक हो जाता हूँ। यह अशिष्टता मुझे कहीं का नहीं रखती।

देह की विशेषताओं पर भ्रमवश **'मैं'** अधिपत्य व अध्यास कर लेता हूँ, कि मैं कलाकार हूँ, मेरी अमुक विशेषताएँ हैं, तो मुझ में स्पर्धा, ईर्ष्या, वैर-वैमनस्य, द्वेष, कलह आदि दुर्भाव पनपने लगते हैं। मेरी विशेषताएँ अशिष्टताओं से ओत-प्रोत हो जाती हैं। उन अशिष्टताओं से मैं उच्छृंखल एवं अभिमानी हो गया, विकृत हो गया। आधि, व्याधि, उपाधि का तोड़ **'समाधि'** है। देह का, देह द्वारा एक ही कर्म है—कि देह से देहातीत हो अथवा अपनी देह के बाहर का दिग्दर्शन एवं अनुभूति हो। सद्‌गुरु कहता है, कि ''तेरी एक देह का बाहर सब देहों का **बाहर** है और वही तेरी **बहार** है। देह से जब देह के बाहर जाना चाहेगा, तो देह कैसी भी विशिष्ट, अति विशिष्ट, अशिष्ट, अति अशिष्ट, निकृष्ट हो, उस समय उस देह का **'सद्'** होना बहुत आवश्यक है। भस्मी से आत्मसात् होने के लिए **'सद**' देह ही सक्षम है। समाधि में सद् देह ही जाएगी अन्यथा देह व जगत एकान्त में नहीं जाने देगा। तमाम अशिष्टताएँ स्वरूप धारण करके सम्मुख आ जाएँगी। अपने सारे कृत्यों, खोने-पाने, समस्त विचारों, तन-मन-धन अर्थात् सम्पूर्ण देह को तुझे सद् को समर्पित करना ही होगा।'' यहाँ समर्पण का समर्पण अनिवार्य है, कि ''प्रभु !

तेरी इच्छा, कृपा एवं शक्ति से मैं सम्पूर्ण देह को तेरे चरणों में समर्पित करता हूँ। मुझे नहीं मालूम नित नूतन देह तुम मुझे क्यों देते हो, इसका कोई सदुपयोग मैं नहीं जानता। त्राहिमाम् !'' यही देह का एकमात्र सदुपयोग है। यह देह भाव का समर्पण है। जब देह भावाभाव हो जाएगा, तो देह सद् हो जाएगी। **'सद्' देह** से ही किसी योग (कर्मयोग, भक्तियोग, ध्यानयोग आदि-आदि) में एकान्त की अवस्था प्राप्त कर सकते हैं। एकान्त में एक देह का अन्त नहीं होता, बल्कि एक देह के प्रति भाव का अभाव हो जाता है। **देह भावान्त ही देह भावाभाव (देह भाव+अभाव) अथवा देहाभाव (देह+अभाव) है।**

देहातीत होकर देह के अन्तान्त में प्रकट होने वाले पदार्थ भस्मी से आत्मसात् हो कर जब साधक देह में लौटता है, तो वह देह **'यथार्थ'** होती है। **'सद्'** देह तो थी ही, क्योंकि पहले ही समर्पित थी। भस्मी से आत्मसात् होकर **'अर्थ'** को लेकर जब जीवात्मा देह में लौटा तो सद् देह के साथ **'अर्थ'** जुड़ने पर वह देह **'यथार्थ'** हो गई। **'सद्'** समर्पित देह ही अर्थ की ओर उर्ध्वगमन करेगी। यह पुरुषार्थ का प्रथम सोपान **'अर्थ'** है। यथार्थ देह आत्मामयी होती है। इस देह द्वारा ईश्वर की कलाओं का रसास्वादन होता है और यह यथार्थ देह ही स्वयं ईश्वर के दिग्दर्शन की अधिकारी होगी। यहां आत्म तत्त्व जाग्रत होने के साथ ही परमात्म तत्त्व भी अनाच्छादित होने लगता है।

यथार्थ देह शनैः शनैः जब पूर्णतः भस्मी से आत्मसात् हो जाती है तो वहाँ भस्मी लुप्त हो जाती है और **'विरक्ति'** जाग्रत हो जाती है। यह विरक्ति **'धर्म'** है, जो पुरुषार्थ का दूसरा सोपान है। यह विरक्ति **'अर्थ'** की अति है। **अर्थ+अति=अर्थाति** पर **'अर्थ'** (भस्मी) पूर्णतः आत्मसात् हो जाता है। वहाँ **'भस्मी'** नहीं रहती, विरक्ति का प्रादुर्भाव हो जाता है। विरक्ति की अति **'भक्ति'** है, यह भक्ति पुरुषार्थ का तृतीय सोपान **'काम'** है। यहाँ साधक **'आप्त काम'** होकर मात्र ईश्वर की चाह रखता है और निष्काम होकर भक्ति की अति (भक्त्याति) **'अनुरक्ति'** या **'मोक्ष'** को प्राप्त करता है। यहाँ

भक्त भावानुसार समय-समय पर (सालोक्य, सारूप्य, सायुज्य, सामीप्य) चारों मोक्षों में विचरता है। अनुरक्ति की अति पर भक्त और भगवान का अद्वैत हो जाता है। यह अति के अन्त का अन्त (अत्यन्तान्त) है, जो अन्तिम पद है। **'कैवल्य'** पद पर ज्योति में ज्योति समा जाती है। अर्थाति (अर्थ+अति) अर्थार्थी, विरक्ति, विरक्त्याति (विरक्ति+अति) '**भक्ति**', भक्त्याति (भक्ति+अति) '**अनुरक्ति**' और अनुरक्त्याति (अनुरक्ति+अति) चारों अतियों के बाद अन्तिम पद कैवल्य पद की सिद्धि होती है। यह अनिर्वचनीय पद है।

''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(1 अप्रैल, 16 मई, 9 से 25 अगस्त एवं 4 अक्टूबर 2010)

सार

'सद् कर्म' 'सद् मर्म' और 'सद् धर्म' तीनों का जहाँ **सद् संगम** होता है, वहाँ सदुपयोग में से **'उप'** का विलय हो जाता है और मात्र **'सद् योग'** होता है। **'सद्'** स्वयं में योग ही है। सदुपयोग शब्द स्वयं में भ्रामक है। **'उपयोग' 'योग'** से अपदस्थ अथवा च्युत होकर होता है, क्योंकि उपयोग **'सद्'** का नहीं **'असद्'** का होता है। **'सद्'** एक ही है, उस साध्य के लिए साधना ही **'कर्म'** है, यही कर्म का **'मर्म'** है और यही मानव **'धर्म'** है। सदावतरण (सद्+अवतरण) सदा होता है, क्योंकि सद्पुरुष ईश्वरीय सत्ता को संजो कर रखते हैं और उसके विकास की चेष्टा में निरन्तर लगे रहते हैं। किसी भी युग में जो **'असद्'** भी होता है, वह भी **'सद्'** की ओट अथवा छाया में होता है। असद् में भी **'सद्'** ही प्रतिभासित होता है। उस सत्ता को कोई न छोड़ सकता है और न ही नकार सकता है। यदि कोई उससे दूर है तो **'सद्'** से दूर है और कोई पास है, तो **'सद्'** के समीप है। दूरी और नज़दीकी का मापदण्ड **'सद्'** है।

युगों-युगान्तरों से अकाट्य एवं विशुद्ध सत्ता मात्र '**सद्**' की है। ब्रह्मात्मा स्वयं में अदृश्य है और परमात्मा तथा जीवात्मा उसी की दो विधाएँ हैं। परमात्मा स्रष्टा है और जीवात्मा दृष्टा है। निराकार पंच-महाभूतों और इनके संगम से निर्मित, पालित एवं संहार के उपरान्त इन्हीं में विलय होती कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों की साकार एवं निराकार सृष्टि उस स्रष्टा की दृश्यमान माया है। उस एक अदृश्य स्रष्टा की बहुआयामी कलाओं का असंख्यामी नित नूतन प्रदर्शन यह युगों-युगान्तरों में विस्तृत पंच-महाभूतों

की साकार एवं निराकार सृष्टि है। करोड़ों महाब्रह्माण्डों में जो कुछ भी दृश्यमान था, है और होगा उस समस्त मायिक एवं सतत् गतिमान सृष्टि का कारण अदृश्य तथा परम स्थिर है। किसी भी कृत्य, क्रियान्वयन, निर्माण, पालन, संहार, पुनर्निर्माण, संशोधन, परिवर्द्धन आदि की सत्ता स्वयं में अकृत्य व अदृश्य है। यदि आधार अस्थिर होगा, तो प्रत्येक क्रिया अथवा अक्रिया मात्र अर्थहीन नहीं निरर्थ, व्यर्थ और अनर्थकारी ही होगी।

पंच-महाभूतों में निर्मित, पालित एवं संहारित सम्पूर्ण कोटि-कोटि दृश्यमान महाब्रह्माण्ड दशानन गतियों से ओत-प्रोत हैं। इन दशानन गतियों का सबसे बड़ा गुण इनकी अदृश्यता है। गतियों की अविरलता, निरन्तरता, अबाधता, अकाट्यता, संक्षिप्तता, उद्देश्यात्मकता, चिरन्तनता, सारगर्भिता, विशिष्टता एवं गुणात्मकता का कारण एवं अस्तित्व की सत्ता परम स्थिर है। उस अदृश्य सत्ता में दशानन स्थिरता है। यह **स्थिरता** दशानन गतियों की भाँति अविरल, निरन्तर, चिरन्तन, अकाट्य, अबाध, उद्देश्यात्मक, गुणात्मक, विशिष्ट एवं सारगर्भित है, लेकिन **'संक्षिप्त नहीं अधिकतम'** है। सतत् परिवर्तनशील पंच-महाभूतों की सृष्टि में दशानन गतियों का एक गुण संक्षिप्तता अथवा न्यूनता है, लेकिन अदृश्य सत्ता की दशानन स्थिरता का यह गुण वृहदतम है। इन अदृश्य एवं दशानन गतियों से असंख्य विविध दृश्यों में तीन (निर्माण, पालन और संहार) विधाओं में प्रकाट्य दृश्यमान होता रहता है।

अदृश्यता और दृश्यमानता में तथाकथित विरोधाभासी गुण हैं। अदृश्यता परम स्थिर और ठोस-घन-शिला है। दृश्यमान सतत् गतिमान और पल-पल परिवर्तनशील है। 'ठोस-घन-शिला' तीनों शब्द उसकी स्थिरता को हृष्ट, पुष्ट और तुष्ट करने के लिए हैं। कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों का निर्माता, पालनकर्ता व संहारकर्ता स्वयं टस से मस नहीं होता। सतत् गतिमान समस्त दृश्यमान माया के स्वामी एवं कारणों के कारण (कारणं कारणानाम्) की दशानन गतियाँ उसी की भाँति अदृश्य हैं। अदृश्य का अर्थ दिखाई न देना मात्र नहीं है, बल्कि उसे कानों से सुना, नाक से सूँघा, जिह्वा से चखा और त्वचा से स्पर्श भी नहीं किया जा सकता। वह मन-वाणी-बुद्धि

का विषय नहीं है। मानवों को उसका आभास तब होता है, जब वह अदृश्य शक्ति साकार एवं निराकार चराचर सृष्टि की विविध विधाओं में दृश्यमान होती है। अदृश्य दर्शन, दृश्यमान माया में होती गतियों द्वारा योगी करता है। ब्रह्मात्मा की महाविभूति **'अदृश्यता'** है, जो इन दशानन गतियों की पुष्टि करते हुए प्रमाणित और सत्यापित करती है। सिद्धि का प्रमाण देती है। अन्तिम सद् की स्वीकृति की पुष्टि, प्रामाणिकता एवं सत्यापन को सिद्धि कहा गया है।

उस अदृश्य स्रष्टा (परमात्मा) की दृश्यमान सृष्टि में असंख्य व अगणित जलचर, थलचर, नभचर और मानव-देह धारी प्राणियों का निर्माण, पालन व संहार युगों-युगान्तरों से ईश्वरीय प्रकृति के अधीन है। पंच-महाभूतों के चमत्कारिक संगम से निर्मित प्राणी जगत का पालन भी पंच-महाभूतों द्वारा **ही** होता है और अन्ततः संहार के बाद सब कुछ पंच-महाभूतों में **ही** विलय हो जाता है। ईश्वरीय प्रकृति की सर्वोत्कृष्ट, परम रहस्यमयी, सर्वोच्च, सर्वोपरि, परम विशिष्ट, अद्वितीय, चमत्कारिक, असमान्तर, अति विलक्षण सुकृति मानव-देह है, जिससे मुझ जीवात्मा को नवाज़ा गया है। यह मानव-देह ईश्वरीय प्रकृति के माध्यम से पुरुष अथवा चेतना द्वारा निर्देशित है। अन्य प्राणी जगत प्रकृति के अधीन है, लेकिन मानव में प्रकृति का बाध करने की अद्भुत क्षमता है। तथाकथित होश सम्भालते ही जब मैं स्वयं को (संदेह वश) देह के नाम-रूप से पहचानता हूँ वहीं से निर्माण, पालन और संहार में असन्तुलन हो जाता है। इसका मुख्य कारण यह है, कि **'मैं'** (जीव) मानव-देह के साथ तदरूपतावश सृष्टि की सबसे महत्त्वपूर्ण विधा **'संहार'** को भूल जाता हूँ अथवा जाने-अनजाने व जानबूझ कर उपेक्षित कर देता हूँ।

संहार ही मानव-देह का **'अर्थ'** तथा '**श्रंगार**' है। जो मृत्यु को भूल जाता है, वह अपनी सभी विभूतियों से विमुख हो जाता है। संहार एक प्रकरण है, जहाँ हमारी शान का शमन (शमशान) हो जाता है। संत महापुरुष मानसिक रूप से शमशानवासी होते हैं। हमारी मिथ्या **'शान'** ही हमें परेशान

करती है और **'नशा'** करने पर विवश करती है। यदि शान का शमन हो जाए, तो इसका अपना **'नशा'** है, जो व्यक्ति को हर समय दिव्य खुमारी में सराबोर रखता है। **हम भूल जाते हैं, कि देह की कोई भी श्वास अन्तिम हो सकती है और मृत्यु किसी भी क्षण आ सकती है।** अतः संहार ही मानव जीवन का **'सार'** है। यदि हम अपनी मृत्यु और भस्मी को भूल कर जीवन जिएँगे, तो संसार व जीवन निस्सार, सार रहित एवं अर्थहीन ही नहीं निरर्थ, व्यर्थ और अनर्थकारी हो जाएगा। सबसे महत्त्वपूर्ण आयाम **'संहार'** को भूलने अथवा उपेक्षित करने से पंच-महाभूतों से निर्मित, पालित मानव-देह अपने **'अर्थ'** से विमुख हो गई तथा जीवात्मा (मैं) देह को अपना स्वरूप मानने के भ्रम एवं अवचेतना में अपने पद के अर्थ से विमुख (पदच्युत) होकर जीव-सृष्टि में धक्के खाने लगा। जो देह व जीवन अर्थ सहित अथवा सार सहित है, वही दिव्य जीवन है। **'अर्थ'** ही सार है और सार ही **'अर्थ'** है। कृपया एकाग्र करिए, मैं सविस्तार वर्णन करूँगा।

स्रष्टा और दृष्टा दोनों स्वयं में अदृश्य हैं। पंच-महाभूतों में जो ये दशानन गतियाँ युगों-युगान्तरों से प्रकट अथवा अप्रकट रूप में चल रही हैं और चलती रहेंगी; उनके समस्त कारणों का कारण अदृश्य है। पंच-महाभूत अपनी शक्तियों को, गतियों को, स्वयं को और ईश्वर को नहीं जानते। ये उस अदृश्य सृष्टिकर्ता, पालनकर्ता एवं संहारकर्ता का प्रशासनिक विधान है। उस विधाता की विधि के अन्तर्गत जो विधान या कानून हैं, ये सहज जड़ पंच-महाभूत उनसे ही दशानन स्वरूपों में गतिमान होते हैं। मानवेतर प्राणी जगत प्रकृति के अधीन हैं। मानव प्रकृति का बाध कर सकता है और मानव ने ईश्वर प्रदत इस क्षमता का दुरुपयोग किया। मानव ही इस सृष्टि में सबसे अधिक दुःखी, त्रसित, भयभीत, विक्षिप्त, आधि-व्याधि-उपाधि से ग्रसित प्राणी है। इसका एकमात्र कारण यह है, कि मानव ही विधि के विधाता के **संविधान** (बिन्दु संयुक्त 'स विधान') में **'व्यवधान'** डालता है। मानव-देह अपनी समष्टिगत प्रकृति सहित पुरुष (परमात्मा) द्वारा संचालित होती है। **मानव का चिन्तित होना उस पुरुष के विधान में व्यवधान है और**

व्यवधान से चिन्ताएँ होती हैं।

सम्पूर्ण दृश्यमान महासृष्टि में निर्माण, पालन, विशिष्ट निर्माण, पालन, अति विशिष्ट निर्माण, पालन, प्रतिपालन, संचालन, सम्पादन, निर्देशन, संवाहन और संहार की समस्त गतियों, विधियों तथा गतिविधियों का विधाता पारब्रह्म परमेश्वर ही है। इनमें संहार विधि के विधाता का सबसे महत्त्वपूर्ण विधान है। निर्माण, पालन, संहार में कोई हस्तक्षेप, पुनर्विचार, नवीनीकरण, संशोधन, विचलन मात्र विधाता ही कर सकता है। उस विधाता के समस्त क्रियान्वयन-अक्रियान्वयन का तरीका या विधि है। विधि विधाता की है और विधि का विधान है, जिसकी 1008 धाराएँ हैं। **'नवग्रह'** विधि की विशिष्टतम विधाएँ हैं। सर्वोपरि शक्ति विधाता ही है।

निर्माण, पालन और संहार में सन्तुलन utmost अनिवार्यता है, जो साथ-साथ सन्तुलित रूप में चलता है। जहाँ असन्तुलन होता है वहाँ कहीं रोग, महामारी, प्राकृतिक आपदाओं, प्रलय, भूकम्प, सुनामी आदि दैवीय नियोजन द्वारा सन्तुलन करवाया जाता है। पंच-महाभूतों की अदृश्य दशानन गतियों के एवज़ में जो कार्य होते हैं वे भी दशानन होते हैं। सद्गुरु असन्तुलन के कारण प्रकट रोगों, दोषों, आधि, व्याधि, उपाधि, वैर, वैमनस्य, ईर्ष्या, द्वेष, काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, मद आदि के लिए जागरूक और सतर्क करता है। वह इनसे मुक्ति और पंच-महाभूतों की देह सहित जगत में निर्माण, पालन व संहार में सन्तुलन के उपाय बताता है। यह प्रक्रिया ही सत्संग है। संत महापुरुष विधि के विधाता की **'ज्यूरी'** (Jury) होते हैं। वे किसी विधान के अन्तर्गत नहीं होते। ईश्वर के साधारण से असाधारण एवं प्रलयंकारी निर्णयों में हस्तक्षेप करने का अधिकार इन संत महात्माओं को होता है। उन्हें विधाता के अदृश्य विधान की कुछ-कुछ झलक मिलने लगती है।

संत, पीर, पैगम्बर कोटि-कोटि ब्रह्माण्डों में **'मानव लोक'** और उससे सम्बद्ध प्राणी जगत के प्रति सम्बद्ध एवं करुणार्द्र रहते हैं। महासृष्टि के एक बहुत ही आंशिक भाग पृथ्वी लोक में विधाता के जो विधान होते हैं,

उन्हें ईश्वर उन संतों को जनवा देता है। संत उन विधानों का उल्लेख करके मानवों को जनवा देते हैं। सम्पूर्ण लोक का प्रतिनिधित्व करने वाले मानव-जगत के प्रमुख संत, ईश्वर और मानव लोक के मध्यस्थ होते हैं। उस अदृश्य शासक के शासन की विधियों एवं नियमों का दर्शन करके वे जिसे चाहे जनवा भी सकते हैं। शासक परमात्मा के शासन का अनुसरण ही '**अनुशासन**' की परिभाषा है। **जो शासित है उसका अनुशासित होना परमावश्यक है।**

ईश्वरीय संविधान का अनुसरण मात्र सद्गुरु की शरणागति से सम्भव है। ईश्वर के अदृश्य विधान को संत शास्त्रों, वेदों, वेदान्त, उपनिषदों तथा सरलीकृत रूप में पुराणों द्वारा जारी करते हैं। इस प्रकार विधाता की विधि की विधाओं के विधान को विधिवत् जानकर वे ईश्वर के संविधान की रचना करते हैं। विधि के विधाता की विधियों का उल्लंघन करने और उन्हें मानवों को जनवाने की संतों की अपनी-अपनी विधियाँ होती हैं। प्रवचन-श्रवण, यज्ञ-हवन, तीर्थ-यात्रा, ध्यान-समाधि, प्राणायाम-प्रत्याहार, व्रत-उपवास, भजन-कीर्तन, जप-तप, कृपा-दृष्टि, चरणामृत, प्रसाद आदि-आदि। स्थितियों-परिस्थितियों के अनुसार मानव-मानस में जब परिवर्तन आता है और वह ईश्वर की ओर उन्मुख होता है, तो सद्गुरु यदा-कदा 1008 अनुच्छेदों वाले ईश्वरीय संविधान में संशोधन व परिवर्तन लाता है। मानव से विभिन्न पुरुषार्थपरक प्रकरण करवाता है। वहाँ ये ग्रह नक्षत्र अपनी चाल बदल देते हैं, अनुकूल होने लगते हैं। इनकी तथाकथित प्रतिकूलता भी महा संशोधन एवं नवीनीकरण के लिए होती है। इनका पूजन, कृपा की एक पुकार है, जिससे इनकी हर चाल हमारे लिए शुभ व कल्याणकारी ही होती है। जब जीव अपने स्थिर गृह में स्थित हो जाता है, तो समस्त **'ग्रह'** अनुकूल ही होते हैं।

मानव-देह सार्थक है, अर्थात् इसका अर्थ इसी में समाहित है। सार्थक शब्द के दो अर्थ हैं—सार सहित और अर्थ सहित। बिन्दु संयुक्तम् स+सार=**'संसार'**। संसार जो स सार अर्थात् सार सहित है और ऊंकार के

बिन्दु से युक्त है, वह निस्सार हो ही नहीं सकता। किसी भी दृश्यमान सारगर्भित प्रश्न **में** उसका अर्थ या उत्तर अदृश्य रूप से समाहित रहता है। प्रश्न से अर्थ को निकालने के लिए विद्वान प्रश्न को बार-बार अच्छी तरह से समझते हैं। क्योंकि अदृश्य **'अर्थ'** दृश्यमान **'प्रश्न'** में ही छिपा है। **'अर्थ'** को दृश्यमान या प्रकट करने पर प्रश्न अदृश्य हो जाता है अथवा अपना महात्म्य खो देता है। इसी प्रकार मानव-देह एक बहुत महत्त्वपूर्ण एवं सारगर्भित प्रश्न है। सबसे बड़ा प्रश्न यह है, कि प्रभु ने मुझे मानव-देह क्यों दी है और **'मैं'** (जीवात्मा) मानव-देह के साथ ही तद्‌रूप क्यों हुआ? कुत्ता, बिल्ली, साँप, चूहा, मक्खी, मच्छर, हाथी, शेर, हिरन, गधा, मछली, मगरमच्छ, सूअर आदि प्राणी भी ईश्वर के ही बनाए हुए हैं। अतः प्रभु की अति कृपा है, कि उसने मुझे मानव-देह दी। यह मेरे पास कब तक रहेगी मैं नहीं जानता क्योंकि इसके अगले पल की भी मुझे कोई गारण्टी नहीं है। जब यह देह नहीं थी तब भी संसार चल रहा था और इसके न रहने पर भी संसार चलता रहेगा। अब यह मेरे पास है तो क्यों है, मैं इसका कोई सदुपयोग तो क्या उपयोग भी नहीं जानता। यह विवशता जिज्ञासा का बीज है।

जिस मानव-देह से प्रभु ने मुझ जीवात्मा को नवाज़ा है, उसका **'सार'** अधिगृहीत कर लूँ, तो संसार का सार स्वतः मेरे पल्ले पड़ जाता है। जो देह सार (अर्थ) युक्त है, उसका जीवन सार युक्त यानि सार्थक है। जब सार्थक देह में विचरण होने लगता है तो पल-पल **'अर्थ'** को दृष्टि में रखा जाता है। जहाँ एक क्षण के लिए भी अर्थ या सार को छोड़ दिया जाता है, तो यद्यपि संसार निस्सार होगा, तदपि जीव उसी में सार को खोजने का असफल प्रयास करता रहता है। वह कभी देह को कोसता है, कभी जगत को और भूल जाता है, कि जिस देह व जगत को वह तिरस्कृत करता है उसकी देह उसी संसार का एक अंग ही नहीं प्रतिनिधि, संघनित स्वरूप और मुख है। मुख व्यष्टि है, धड़ सहित मुख समष्टि है तथा दोनों में द्वैत नहीं है। जैसे कि मानव-देह में सिर और धड़ पृथक् नहीं हैं। सिर देह का है और धड़ देह का है। सम्पूर्ण देह का प्रतिनिधित्व देह में **'रूप'** या चेहरा करता है। किसी

का भी परिचय और पहचान चेहरे से की और करवाई जाती है। चेहरा (मुख) व्यष्टि है और सारी देह समष्टि है। अतः समष्टि में व्यष्टि है और व्यष्टि की समष्टि है। देह में चेहरा है, चेहरा देह में है। चेहरे वाले की देह है। व्यष्टि, समष्टि में सम्पूर्ण समष्टि की प्रतिनिधि है। इसलिए **'एकै साधे सब सधे'।**

शैशव और शव ही किसी भी मानव देह की सुनिश्चित अवस्थाएँ हैं। जन्म से शव बनने तक विभिन्न दृष्टियों से असंख्य अवस्थाएँ बिल्कुल अनिश्चित हैं उनका प्रकाट्य हो भी सकता है, नहीं भी। मध्य में देह का पालन वह अदृश्य स्रष्टा ईश्वर ही अदृश्य रूप से स्वयं करता है। महादुर्भाग्यवश, अज्ञानवश, मायावश, जाने-अनजाने मध्य में मानवीय बुद्धि अवचेतना में पालन के लिए स्वयं को उत्तरदायी मान लेती है। जिससे निर्माण, पालन और संहार में असन्तुलन हो जाता है। सन्तुलन हमारे कुछ करने से नहीं होगा, क्योंकि सब कुछ करने-कराने वाला परमात्मा ही है। हमें मात्र उसका शरणागत होना है। निर्माण, पालन और संहार की दशानन गतियों में सन्तुलन बनाए रखने की प्रक्रिया ही सत्संग है।

नौ महीने में पूर्ण देह के निर्माण में किसी का कोई हस्तक्षेप सम्भव ही नहीं है और दृश्यमान देह के शव को चिता पर रखकर सब दस-बीस फुट परे हट जाते हैं। माँ के गर्भ में एक भ्रूण (Zygote) या बिन्दु रूप में गर्भाधान से लेकर शिशु देह के पूर्ण निर्माण का समस्त प्रकरण अदृश्य है। पंच-महाभूतों की मृतक काया किस प्रकार पंच-महाभूतों में विलय होती है, इसका भी किसी को कोई ज्ञान नहीं होता। अतः दृश्यमान देह के शव का पंच-महाभूतों में विलीन होते हुए अदृश्य होने का समस्त प्रकरण भी अदृश्य है। दृश्यमान देह का **'निर्माण'** अदृश्य है और **'संहार'** अदृश्य है, मध्य में पालन दृश्यमान क्यों **है** इसका विशेष दैवीय **'अर्थ'** है; जिसे देह के रहते मानव को पकड़ना होगा। जब हमें किसी प्रश्न का अर्थ या उत्तर पहले से मालूम हो, तो प्रश्न हल करते समय हर स्तर पर हम उस अर्थ को ध्यान में रखेंगे। ज़रा भी इधर-उधर भटकेंगे, तो दिल-दिमाग कहेगा, कि तुम सवाल ठीक से हल नहीं कर रहे हो, क्योंकि अर्थ तो पहले से ही तुम्हारे पास है।

हम सब अपने भविष्य के बारे में और कुछ जाने अथवा न जाने, लेकिन हमें पता है, कि मृत्यु अवश्य होगी और कभी भी हो सकती है। फिर डेढ़-दो किलो **'भस्मी'** ही अविशेष रूप में रह जाएगी। **'भस्मी'** देह का अर्थ है, सबकी देह का अर्थ एक ही है और **'सम'** (एक ही जैसा) है। अर्थ **'सम'** है अतः उस सम अर्थ को देह के दौरान अधिगृहीत कर लें तो हम सब समर्थ हो जाएँगे। ***''समर्थ को नहीं दोष गुसाईं।''*** **'भस्मी'** सम अर्थ है, यही समर्थता मानव-जीवन का सार है। **'सार'** पकड़ते ही संसार भी बिन्दु संयुक्तम् स सार (संसार) हो जाएगा। अतः संहार पर एकाग्र करके उस **'सार'** और उस **'अर्थ'** को पकड़ना ही सार्थक मानव-जीवन है। मानव-देह रूपी दीर्घ प्रश्न का **'सार'** और **'अर्थ'** एक ही है। हर मानव-देह एक प्रश्न है और उसका अर्थ एक ही है। देह के दौरान वह **'अर्थ'** अदृश्य है जब निकलेगा, तो दृश्यमान हो जाएगा और देह अदृश्य हो जाएगी। वह **'अर्थ'** या **'सार'** है—डेढ़-दो किलो **'भस्मी'।** कभी भी जब देह नहीं रहेगी वही **'अर्थ'** निकलेगा। यही प्रत्येक मानव-देह का निश्चित, परिलक्षित, दर्शित भविष्य है।

सद्गुरु कहता है, कि ''तेरी समस्त Turnover का overturn एक ही भस्मी है। यदि तू इस **'सार'** और अपनी देह के इस **'अर्थ'** को छोड़ देगा, तो दैवीय अधिनियमानुसार महाकाल की 1008 धाराओं के अन्तर्गत जन्म-दर-जन्म धारावाहिक सज़ाएँ भुगतता रहेगा। प्रभु ने मानव-देह रूपी प्रश्न का अर्थ तुझे पहले ही दिखा दिया है। तू इसे उपेक्षित कैसे कर सकता है। क्योंकि इसे तो सब मानते हैं इस अर्थ या **'सार'** को पकड़कर जीवन जीना प्रारम्भ कर। तेरा जीवन सार्थक हो जाएगा और तू हर प्रकार से समर्थ हो जाएगा।''

इस प्रवचन के आरम्भ में मैंने अदृश्य सत्ता परमात्मा की अदृश्य दशानन स्थिरता और पंच महाभूतों की दशानन गतियों का वर्णन किया था। घड़ी के घण्टे, मिनट और सैकेण्ड की तीनों सुइयाँ निरन्तर गतिमान रहती हैं। यदि समय 7 बजकर 30 मिनट 10 सैकेण्ड हुआ है, तो यह उसकी गति की एक स्थिति है। इस **'स्थिति'** पर मैं 'स्थान' और 'समय' को निर्धारित

करता हूँ, कि 7 बजकर 30 मिनट पर मैं अमुक-अमुक स्थान पर पहुँचूँगा। कोई भी स्थिति स्थित एवं स्थिर नहीं है, सतत् परिवर्तनशील है। **स्थिति गति की है और गति में है।** स्थिति में गति है। इसलिए हर स्थिति कालचक्र में काल से बँधी है और स्थित नहीं है। हम **'जीव'** उन स्थितियों के वश में हैं, जो गति के वश में हैं। इसलिए विवश एवं वशीभूत हैं। घड़ी की तीनों सुइयों की गति की स्थिति पहले थी नहीं, अन्ततः रहती नहीं है। जिसमें स्थिरता है ही नहीं उससे हम बँधे हुए हैं।

सद्गुरु कहता है, कि ''यदि तूने बँधना ही है तो **'स्थिर'** से बँध। तू काल से बँधी देह का वह क्षेत्र पकड़ जहाँ **'काल'** समाप्त हो जाता है और अकाल में स्थिति हो जाती है। इसके लिए तुझे स्थिर होना पड़ेगा। समाधि **'सम+धि'** है। जहाँ बुद्धि की हरकत समाप्त हो जाती है वहाँ बुद्धि की चेतनता प्रकट होती है। बुद्धि की चेतनता में मन आनन्दमय होता है, अन्यथा मन, मानसिकता बन जाता है। मानस चंचल होता तो सृष्टि का निर्माण, पालन व संहार कैसे होता? मन और बुद्धि दोनों स्थिर हैं। स्थिर तत्त्व **गत्यातीत** (गति से परे) है। वह ठोस-घन-शिला है। वह स्थिति नहीं **स्थित्यातीत स्थिति** है। देह की जो अवस्था स्थित्यातीत है, वह गत्यातीत भी है वहाँ तू स्थिर हो जाएगा। बुद्धि चेतनामयी एवं मन आनन्दमय होगा, तो वहाँ **'सद्'** का प्रकाट्य होगा।''

मानव जीवन जशन एवं यजन है। जहाँ गति द्वारा गति समाप्त हो जाए। मानव-देह की केवल एक स्थिति (**'भस्मी'**) ऐसी है, जो स्थित्यातीत है, अतः वह गत्यातीत भी है। यही मानव-देह एवं जीवात्मा के पद का **'अर्थ'** है। अ रथ का अर्थ है—जहाँ **'रथ'** न रहे। अ रथ इसलिए कहा, कि जहाँ 'चंचल मन' रूपी रथ की गति समाप्त हो जाए और **'मैं'** अरथ हो जाऊँ एवं अपनी स्थिरता द्वारा अपने आच्छादित स्वरूप का दर्शन (आत्म-दर्शन) कर सकूँ।

''बोलिए सियावर रामचन्द्र की जय''

(26 दिसम्बर 2010 एवं 9 जनवरी 2011)

देह-भाव

'मैं' शब्द का प्रकाट्य **'जगत सहित देह'** की अवचेतना में, चेतना के विभिन्न स्तरों के होने का प्रमाण, सत्यापन एवं पुष्टि है। अर्थात् देह सहित जगत के अस्तित्व का प्रमाण **'मैं'** शब्द का प्रकाट्य है। देह पृथक् है और देह चेतना पृथक् है। देह-चेतना स्वयं में अदृश्य है। समय-समय पर **'मैं'** शब्द रूप में इसका प्रकाट्य देह व जगत के रूप में दृश्यमान होता है। दृश्यमान प्रकाट्य में मेरी एक मानव-देह का जीवित व जाग्रत होना अनिवार्य है। चराचर जड़-चेतन जगत में कोई सुषुप्त, मूर्च्छित, विस्मृत, मृतक होता है, कोई मरने वाला होता है, कोई पैदा हुआ होता है, कोई पैदा होने वाला होता है, कहीं निर्माण होता है, कहीं पालन होता है और कहीं विध्वंस होता है। इस प्रकार जगत में बहुत कुछ होता रहता है। जगत में विभिन्न प्रकार के प्राणी (जलचर, नभचर, थलचर) कीट-पतंगे, असंख्य प्राकृतिक विधाएँ, नदियाँ, पहाड़, प्रपात, झरने, वनस्पतियाँ, पेड़-पौधे आदि-आदि हैं। कृपया एकाग्र करिए।

'मैं' शब्द स्वयं में अदृश्य **'जीवात्मा'** का प्रतिनिधित्व करता है, इसलिए शब्द ब्रह्म है। एक मानव-देह युगों-युगान्तरों में विस्तृत सम्पूर्ण निराकार एवं साकार ईश्वरीय सृष्टि का प्रतिनिधित्व करती है। अदृश्य जीवात्मा के प्रतिनिधि के, **'मैं'** शब्द में प्रकाट्य की, एक दैवीय औपचारिकता है, कि एक जीवित व जाग्रत मानव-देह का तनिक अवलम्बन अत्यावश्यक है। साथ ही मानव-देह के समय-समय के जगत सहित जीवित एवं जाग्रत होने का प्रमाण व सत्यापन **'मैं'** शब्द द्वारा ही होता है। **'आत्म ज्ञान'** के पहले

साधक को अपनी देह के देहत्व का ज्ञान होना परमावश्यक है। माँ के गर्भ में एक भ्रूण या बिन्दु रूप में गर्भाधान (प्रारम्भारम्भ) से लेकर, न केवल मृत्यु (देहान्त) बल्कि मृतक देह के पंच-महाभूतों में विलय होने (देहान्तान्त) के बाद पूर्ण भस्मी के प्रकाट्य तक, मानव-देह की दृष्टि से जितना भी कार्य-व्यवहार, हस्तक्षेप, अत्यधिक क्रियाशीलता, अक्रियाशीलता, आलस्य, विस्मृति, निद्रा, स्वप्न, मूर्च्छा, मृत्यु, चिता में जलना और जो कुछ भी है, था और होगा; वह सब कुछ अवचेतना में एवं अवचेतना में चेतना के अधिकतम स्तर तक है। अवचेतना, स्वयं चेतना से निम्न स्थिति है अर्थात् चेतना, देह की चेतना होते ही Consciousness अथवा अवचेतना बन जाती है। इस अवचेतना में जो भी भूत, भविष्य एवं वर्तमान की जानकारी है, वही जीव की तथाकथित Awareness है।

दृष्टा **'जीवात्मा'** की चेतना **'मैं'** शब्द में प्रकट होती है। **'मैं'** शब्द जब एक साकार मानव-देह का अवलम्बन लेने पर प्रकट होता है, तो एक मानव-देह सहित संपूर्ण जगत की चेतना का द्योतक है। अतः एक साकार मानव-देह की चेतना किसी विशेष मानव-देह मात्र की नहीं है बल्कि जगत सहित देह की चेतना है। **देह चेतना अदृश्य है।** देह चेतना जब प्रकट होती है, तो देह व जगत के रूप में होती है। जब भी देह चेतना प्रकट या दृश्यमान होती है, तो उसमें मुझे अपनी देह वही लगती है और जगत पृथक् लगता है। भूत-भविष्य-वर्तमान, आकाशमण्डल, वनस्पतियाँ, जलचर, थलचर, नभचर, चाहतें, महत्त्वाकांक्षाएँ और साकार जगत की असंख्य व अगणित, ज्ञात-अज्ञात विधाओं का प्रकटीकरण अदृश्य देह चेतना के प्रकट होने पर होता है। देह सहित जगत का प्रकाट्य होने पर भी चेतना स्वयं में अदृश्य रहती है। एक देह का जीवित और जाग्रत होना देह चेतना के प्रकाट्य का प्रमाण एवं परिणाम है।

जिस चेतना में मानव-देह जगत सहित है, वह चेतना विशुद्ध जीवात्मा है। उसका प्रतिनिधि **'मैं',** शब्द ब्रह्म है। निर्माण, पालन एवं संहार तीनों विधाओं के अवलोकन के लिए दृष्टा जीवात्मा का जब **'मैं'** शब्द में प्रकाट्य

होता है, तो उसकी देह बाद में रखे गए नाम से **गुण्ठित-कुण्ठित** हो गयी होती है। एक प्रकार से उसकी देह **'नाम'** से ही बँध गई होती है। देह में देह का प्रतिनिधित्व रूप करता है। किसी भी व्यक्ति का परिचय उसके चेहरे से कराया जाता है। रूप अर्थात् चेहरा अर्थात् देह। रूप का अपना कोई नाम नहीं होता और **'नाम'** का अपना कोई **'रूप'** नहीं होता। लेकिन अदृश्य नाम की दृश्यमान देह (रूप) के साथ ऐसी गाँठ पड़ जाती है, कि वह रूप साममय ही नहीं, **नाम** हो चुका होता है। दृश्यमान रूप से नाम दिखाई नहीं देता। यह अदृश्य एवं दृश्य का अद्वैत है।

'मैं' शब्द के प्रकट होते ही जीव **'रूप'** के साथ नाम-रूप में तद्रूप हुआ। **'मैं'** शब्द देह सहित जगत की चेतना का द्योतक था, लेकिन यहाँ **मैं** एक देह की चेतना बनकर अपने ही जगत से कट सी गई। जब तक उस रूप का कोई नाम नहीं था, तब तक वह जगत सहित देह की चेतना थी। लेकिन एक देह के नाम-रूप तक सीमित होकर **'मैं',** चेतना से अवचेतना में आ गई। अरूप (नाम) और रूप (देह) के ऐक्य एवं गाँठ की वजह से महाचेतना की प्रतिनिधि **'मैं'** ने जगत को अपने से अलग मान लिया। आनन्दमय मानस (**'मैं'**) सबका एक ही था, एक ही है और एक ही रहेगा। सिर है, तो देह है और सिर, व्यष्टि है और धड़ समष्टि का द्योतक है। अतः देह में सिर है और देह, सिर सहित ही होगी। हाथ, पैर के बिना देह हो सकती है, लेकिन सिर के बिना देह का अस्तित्व नहीं है। अतः व्यष्टि है, तो समष्टि है और समष्टि वैसी है, जैसी व्यष्टि है। क्योंकि सम्पूर्ण समष्टि का आधार व्यष्टि देह है। **'हैत्व'** सबसे महत्त्वपूर्ण है। **मेरा होना जगत का होना है। 'नाम'** ने रूप को स्वयं में समा लिया। मेरी **'देह'** और **'नाम'** एक हो गए। यह हैत्व **'मैं'** की अवचेतना है, तदनुसार जगत भी अवचेतना में ही होता है।

'मैं अमुक-अमुक हूँ' भाव में रूप, नाम के साथ गुण्ठित हो चुका होता है। 'मैं हूँ' किसी ने कहा, तो इसमें अदृश्य **'मैं'** है, जो शब्द रूप में प्रकट है, अदृश्य नाम जो शब्द रूप प्रकट है और दृश्यमान रूप है, जो नाम के साथ

'एक' हो चुका है। यह **'मैं'** तद्नाम रूप के साथ मात्र जुड़ी हुई नहीं, बल्कि तद्रूप सी हो गई। यह **'मैं'** शब्द **'ब्रह्म'** न होकर, शब्द **'भ्रम'** है, जो उस देह के साथ तद्रूप है जो **'नाम'** के साथ गुण्ठित हो चुकी थी। पल-पल परिवर्तित होता हुआ भी वह रूप (देह) स्वयं में **'नाम'** बन चुका था। उस नाम स्वरूपी रूप (देह) के साथ **'मैं'** (आत्मतत्त्व) स्वरूपी **'मैं'** (जीव) गुण्ठित होकर कुण्ठित हो गई। देह सहित जगत की चेतना **'मैं',** उस एक नाम-रूपी देह की तुच्छ सी अवचेतना में उतर आई। **'मैं'** सबकी एक ही है। **'नाम'** के कारण देह अपने जगत से अलग सी हो गई और वह **'मैं'** रूपी आनन्दमय मानस, मानसिकता बन गई। देह मानसिकतावश तदनुसार व्यवहार करने लगी। **'नाम'** एक देह में संकुचित हो गया तथा जगत अलग हो गया। **'अलग'** में किसी से उसका **'लगाव'** हुआ, किसी से **'अलगाव'** हुआ। जो इसके लगते थे, वही इससे लगने लगे।

चेतना समस्त प्रदर्शन का निर्देशक, संचालक एवं प्रमाण है। जैसा मेरा होना है, वैसा ही जगत का होना है। जब **'मैं', 'नाम'** ही बन चुकी मानव-देह के रूप के साथ तद्रूप हो गई, तो अवचेतना में चेतना का जैसा और जो स्तर होगा, वही प्रत्येक मानव और उसके जगत का होगा। इस प्रकार एक जीव कोटि-कोटि जीवों की अवचेतना में चेतना के भिन्न-भिन्न स्तरों में युगों-युगान्तरों से भ्रमित है। अवचेतना में भी जो एक मानव-देह की चेतना थी, वही उसके जगत की भी रही। इस प्रकार मानव-देह दो प्रकार से फँस गई एक तो अवचेतनामयी मानसिकता और दूसरे स्वयं में अरूप और अनाम **'नाम'**। अतः वह देह यथार्थ खोकर निरर्थ, व्यर्थ और अनर्थ में भटकने लगी। ईर्ष्या-द्वेष, वैर-वैमनस्य, रोग-दोष, स्पर्धा, कटुता, जलन, छल, कपट आदि दुर्भावों में मानव पशुवत् तथाकथित जीते हुए जन्म-दर-जन्म भटकने लगा। दृष्टा चेतना **(मैं),** अवचेतना में निरर्थ, व्यर्थ, अनर्थ की अन्तहीन श्रंखला में तथाकथित कर्तव्य अपने पर थोप कर ईश्वर से पूरी तरह से विमुख हो गई। मूलतः शब्द कर्ताव्यय (कर्त+अव्यय) था अर्थात् कर्ता स्वयं में अव्यय (ईश्वर) है। जो अरूप नाम है वह प्रभु का है। प्रभु अदृश्य हैं, इसीलिए प्रत्येक का नाम

दृश्यमान रूप से पता नहीं चलता। वह **'नाम'** जो स्वयं में **'अरूप'** था जब उसने एक रूप ले लिया, तो वह प्रभु का नहीं रहा, वह अवचेतना में एक जीव का हो गया। यही **जीव-कोटि है**।

सद्गुरु कहता है, कि ''जब तुझे Body Consciousness हो गयी, तो तेरी यह Consciousness देह व जगत की Consciousness के रूप में प्रकट हुई। Consciousness फिर भी अदृश्य रही। जब तू देह और जगत के विषय में Conscious हो गया, तो वह देह व जगत स्वप्न है। स्वप्न से उठने के बाद स्वप्न का कुछ भी शेष नहीं रहता, मात्र एक मानसिकता रहती है। इसलिए समस्त Awareness मात्र Consciousness में है। निद्रा में देह व जगत की Consciousness नहीं होती और यह Consciousness भी नहीं होती, कि तुझे देह व जगत की Consciousness नहीं है। इसलिए **निद्रा जड़ता है।''** निद्रा में body Consciousness अप्रकट थी। निद्रा से उठने में प्रकट हुई, तो जो, जब, जहाँ, जैसी भी काल से बँधी देह है, थी और होगी, वह उस समय के जगत सहित होगी। **यदि 'मैं' स्वयं को देह रूप में पहचानता हूँ, तो मैं और मेरा जगत देह अवचेतना का प्राकट्य है, देह चेतना का नहीं।** अवचेतना में जो देह, जगत सहित है, वह स्वप्न है, जिसका मुझे ज्ञान नहीं है, कि यह स्वप्न है। यह देह अवचेतना **'सन्देह'** है, क्योंकि **'मैं'** स्वयं को देह के नाम-रूप में पहचानता हूँ।

Body Consciousness में जो देह व जगत होगा, वह जगत मुझसे भिन्न और अक्सर तद्विपरीत व विरोधी होगा। इसमें **'मैं देह हूँ'** वाली देह होगी, जिसमें मुझे सन्देह का ज्ञान हो भी सकता है, नहीं भी हो सकता। यदि मैंने स्वयं को नाम-रूप की देह से पहचाना, तो स्वयं की पहचान खोकर पहचाना है। इसमें जो देह होगी, वह **'यथार्थ नास्ति'** एवं **'अन्यार्थ अस्ति'**। अन्यार्थ में निरर्थ, व्यर्थ और अनर्थ कुछ भी हो सकती है। देह **'साधन'** से की गई समस्त साधना, ज्ञान, ध्यान, यज्ञ-हवन, जप-तप, तीर्थ-यात्रा, प्राणायाम, समाधि, सद्गुरु सेवा, परोपकार, निद्रायोग, स्वप्न दृष्टव्य, मृत्युयोग, भस्मीयोग आदि-आदि भी अवचेतना में चेतना के स्तर को बढ़ाने

के लिए ही हैं। देह अवचेतना में मेरा होना एक नाम-रूप में बँधी अवचेतन देह और उस समय उस पर आधारित विशिष्ट अतीत एवं काल्पनिक भविष्य रूप में छोटा सा नगण्य प्रायः **'अस्तित्व'** होता है। यह अन्यार्थ ही है। उस अवचेतना पर आधारित जगत देह सहित Fake है। इस देह को न मैंने पैदा होते देखा और न कभी मरते हुए देखा।

वर्तमान, भूत, भविष्य देह-अवचेतना में है। देह-अवचेतना में हम अपने अतीत या बचपन की कोई घटना सुनाते हैं, तो उस घटना का आधार मेरे अतीत या बचपन की वह देह होती है। उस सम्पूर्ण घटना का आधार वह देह **'थी'** नहीं, बल्कि **'है'**। क्योंकि मैं वह घटना उस समय की देह के साथ तद्रूप होकर सुनाता हूँ। सुनाते समय **'मैं'** अतीत की वह देह होता हूँ और वह घटना घट चुकी होती है। इसी प्रकार **'मैं'** भविष्य की योजनाएँ भी बनाता हूँ, ये मेरे भविष्य के वर्तमान की देहों के आधार पर निर्धारित काल्पनिक देहें हैं। अर्थात् मेरी इस समय की देह में असंख्य देहें हैं। अतीत वर्तमान और भविष्य वर्तमान की असंख्य भाव देहें मेरे इस समय के वर्तमान को अमरतवान नहीं रहने देतीं। इसी प्रकार हम किसी ऐतिहासिक, पौराणिक और हज़ारों वर्ष पूर्व की घटनाओं का वर्णन भी करते हैं। उस घटना में **'मैं'** नहीं था, लेकिन उसे याद करने वाली एक देह होती है। मेरी एक देह ने वे सुदूर अतीत में घटी घटनाएँ याद कीं, जिससे मुझे उन घटनाओं का ज्ञान हुआ। अतः मेरी वही देहें ये घटनाएँ सुना रही हैं, जो मेरे वर्तमान की देह में हैं। असंख्य घटनाएँ याद नहीं रहतीं अर्थात् वे देहें मेरी स्मृति में धुंधली पड़ चुकी होती हैं।

देह चेतना में 'मैं देह हूँ' के सन्देह के अज्ञान वश असंख्य देहों के मोह से मैं घिरा रहता हूँ। मेरी **'मैं'** केवल एक देह तक है ही नहीं। देह सहित जगत की असंख्य घटनाएँ मेरी देह चेतना में रहती हैं। देह चेतना में चेतना के आधिक्यवश असंख्य घटनाएँ चाहे वे पूर्व जन्मों की हों; मेरी स्मृति में ज्यों की त्यों जीवित रहती हैं। अतः वर्तमान इस एक देह में असंख्य देहें समय-समय के जगत सहित विद्यमान हैं। जो-जो घटनाएँ हमारी

मानसिकता को प्रभावित करती हैं, वे अंकित हो जाती हैं। जब **'मैं'** देह चेतना में होता हूँ, तो एक विशिष्ट चैनल में उसी देह जैसी असंख्य अतीत की देहें जगत सहित होती हैं। जिसे हम भविष्य की कल्पनाएँ कहते हैं, वे कल्पनाएँ नहीं होतीं, बल्कि उसी चैनल में भविष्य होता है। यदि वह दैवीय चैनल है, तो अतीत की घटनाएँ और भविष्य के आभास दिव्य होते हैं।

हम सब अक्सर और अधिकतर मैं, मैंने, मेरा, मुझे, मुझको आदि मानव-देह को आधार मानकर कहते हैं। यह मानव-देह एक दिन थी नहीं और कभी भी वह दिन आ सकता है, जब यह रहेगी नहीं। सबसे बड़ा भ्रम, अज्ञान और भूल यह होती है, कि जिसके आधार पर मैं किसी से मिलता, बिछुड़ता अथवा सुखी-दुःखी होता हूँ वह देह भी मुझसे एक न एक दिन बिछड़ने वाली है। मेरे भ्रम और अज्ञान का निवारण नहीं होता, क्योंकि किसी ने अपनी देह को अपने से बिछुड़ते हुए नहीं देखा। मुझे ज्ञात है, कि देह नहीं रहेगी। मैंने कभी अपनी देह को उसी प्रकार स्वयं से बिछुड़ते हुए नहीं देखा, जैसे मैंने स्वयं को सोते हुए नहीं देखा। मैं देह को छोड़ना चाहूँ या न चाहूँ एक दिन ऐसा अवश्य होगा और दिवस में ऐसा क्षण होगा, जब मेरी देह मुझसे सदा के लिए छूट जाएगी। यह प्रकृति का अकाट्य नियम है। उस क्षण को किसी ने देखा नहीं है। वह दर्शित है, लेकिन दृश्य बनकर मेरे सम्मुख कभी नहीं आएगा। उस स्थिति की अवधारणा समस्त जन्म-मृत्यु की कल्पनाओं को लील जाएगी।

अपना जन्म किसी ने नहीं देखा। उसकी हम अवधारणा कर बैठे हैं। अतः मृत्यु की भी कल्पना नहीं अवधारणा है। सोकर उठने के बाद देह अलग होती है, मृत्यु के बाद देह नहीं होगी। जीवन में मृत्यु हमेशा मेरा भविष्य रहती है। निद्रा भविष्य भी होती है और निद्रा अतीत भी होती है। मैं सोऊँगा, मैं सोया था। निद्रा में भी देह मुझसे बिछड़ जाती है, लेकिन मेरे लिए यह **'गा' 'था'** ही रहती है। देह के होते हुए अपनी मृत्यु या अपनी भस्मी की धारणा नहीं, अवधारणा होगी। जो देह धारित है उस धारणा पर इस अवधारणा की हमारे मानस में एक दिव्य प्रतिक्रिया होती है, क्योंकि

अस्तित्व केवल जो है वही नहीं है, जो था वह भी है और जो होगा वह भी है। कृपया एकाग्र करें।

किसी भी सारगर्भित प्रश्न का उत्तर प्रश्न से ही निकाला जाता है और प्रश्न का उत्तर प्रश्न से बाहर होता है। अर्थ या उत्तर निकलने के बाद प्रश्न का महत्त्व नहीं रहता। उत्तर यदि पहले से मालूम हो, तो प्रश्न हल करते समय अतिरिक्त सतर्कता एवं सावधानी रखी जाती है और प्रश्न हल करने का भी आनन्द आता है। तनाव यदि होता भी है, तो गलती का होता है। यह सम्पूर्ण दृश्यमान जगत अपने समस्त आकर्षणों, सुखों-दुःखों, चकाचौंध और चमक-दमक से पूर्ण माया है। जब हम इसका अर्थ पकड़ लेते हैं, तो यह प्रदर्शन है और यदि **'अर्थ'** को जानते-बूझते, अनजाने या अज्ञानता में उपेक्षित कर देते हैं, तो यह न केवल कभी न सुलझने वाला बल्कि अधिक उलझने व उलझाने वाला जानलेवा प्रश्न बन जाता है।

मानव-देह का अर्थ भस्मी है और भस्मी, देह के बाहर (देहातीत) है। हम जगत में बाहर धक्के खाते रहते हैं, लेकिन इस बाहर से डरते हैं और जानते-बूझते हुए भी उपेक्षित करते हैं। सद्‌गुरु कहता है, कि "जिसे तू अपनी जागृति और Awareness कहता है, वह वास्तव में देह अवचेतना है। निद्रा (**'जड़ता'**) में देह व जगत नहीं होता और उसके न होने का ज्ञान भी नहीं होता। **'चेतना'** में देह का परमानन्दमय सूक्ष्म सा आभास होता है और वह देह आत्मामयी व परमात्मामयी होती है तथा जीवात्मा-परमात्मा का संगम स्थल होती है। मैं कुछ उदाहरणों द्वारा इस तथ्य को सरलीकृत करने का प्रयास करूँगा।

एक कैरेट का सोना भी सोना है। यदि सोने की विशुद्धता बढ़ाते जाएँ, तो अधिकतम 24 कैरेट तक कर सकते हैं। एक कैरेट से 23 कैरेट तक जितना भी सोना है, उसकी Value बढ़ती जाएगी लेकिन वह फिर भी मिलावट वाला ही रहेगा। दस ग्राम सोने में एक कैरेट की Value सबसे कम और 24 कैरेट की सबसे अधिक होगी तथा इससे अधिक बढ़नी सम्भव नहीं है। 24 कैरेट का विशुद्ध सोना दस ग्राम या एक तोले सोने का अधिकतम

मूल्य है। दस ग्राम में यदि हम और कीमती या अधिक मूल्य वाली धातु चाहते हैं, तो हमें धातु बदलनी पड़ेगी। इससे अधिक मूल्यवान धातु के लिए प्लैटिनम लेना पड़ेगा। मैं एक और उदाहरण दूँगा। ठोस बर्फ को पानी में रूपान्तरित करके बहुत गर्म करना है, तो तापमान 100 डिग्री सैन्टीग्रेड तक जा सकता है। तापमान और अधिक देने पर पानी का तापमान नहीं बढ़ेगा, इसके बाद पानी भाप बनकर उड़ते हुए कम होना शुरू हो जाएगा। एक ग्राम पानी को भाप बनने के लिए 536 कैलोरी हीट या ऊर्जा चाहिए। उस भाप का तापमान भी 100 डिग्री सैन्टीग्रेड होगा, लेकिन पानी का रूपान्तरण भाप में हो जाएगा।

इसी प्रकार जगत में समस्त कार्य व्यवहार अवचेतना में हैं अर्थात् 24 कैरेट से नीचे-नीचे ही है। यही स्थिति भौतिक मानव-देह की है। कोई देह 5 कैरेट की होती है, कोई 16 कैरेट की होती है, कोई जन्म लेते ही 23 कैरेट की होती है। जैसे 100 डिग्री सैन्टीग्रेड पर उबलता पानी, और अधिक गर्म करने पर पानी नहीं रहता और भाप में रूपान्तरित हो जाता है तथा 0 डिग्री का ठण्डा पानी, और ठण्डा करने पर पानी की जगह बर्फ बनना शुरू हो जाता है। एक तरल है और दूसरा ठोस है। उसी प्रकार 24 कैरेट तक अवचेतना में चेतना का अधिकतम स्तर होता है। उसके बाद रूपान्तरण हो जाएगा।

मानव-देह में अवचेतना के विभिन्न स्तर हैं और विभिन्न स्थितियों में विभिन्न स्तर होते हैं। **अवचेतना का स्तर बढ़ने से तात्पर्य अवचेतना में चेतना का स्तर बढ़ने से है।** एक जन्मजात विशुद्धता होती है और दूसरी प्राप्त की जाती है। जन्मजात विशुद्धता संस्कारगत व अनुवांशिक भी हो सकती है अन्यथा भी हो सकती है। कोई शिशु बचपन से ही बहुत मेधावी, प्रज्ञावान एवं विवेकशील होता है। उसके बाद जप, तप, साधना, ध्यान, प्राणायाम, हठयोग द्वारा अवचेतना में चेतना का स्तर बढ़ाया जाता है। जितना भी कार्य व्यवहार और जप, तप आदि होगा वह अवचेतना में चेतना की एक विशिष्ट सीमा तक ही होगा। उसकी एक चरम सीमा है। विशुद्धता

की चरम सीमा पर अवचेतना का पूर्ण रूपान्तरण चेतना में हो जाता है। अवचेतना में चेतना का स्तर अधिकतम होने पर देह, विदेह हो जाती है। मोक्ष के पाँचों पदों (सायुज्य, सामीप्य, सालोक्य, सारूप्य एवं कैवल्य) में चार पदों का उल्लंघन करके साधक कैवल्य पद प्राप्त करता है। कृपया एकाग्र करिए, मैं सविस्तार वर्णन करूँगा।

कई लोग अवचेतना में चेतना के बहुत अधिक स्तर को लेकर धरा पर आते हैं। लेकिन जहाँ तक देह की पहचान है, कि मैं देह हूँ, मैं देह नहीं हूँ, मैं कौन हूँ? मैं देह से पहले भी था, अब हूँ और देह के न रहने पर भी रहूँगा। जब देह नहीं थी, तब मैं क्या था? कौन था, कैसा था? समस्त वक्तव्य, मैं देह रूप में एक होता हूँ, तभी दे सकता हूँ। **'मैं'** आत्मतत्त्व है। इसकी देह के साथ नाम-रूप में तद्रूपता होना मैं की अवचेतना एवं सन्देह है। 'मैं देह हूँ' यह सन्देह है इसमें देह और जगत अवचेतना (सन्देह) द्वारा ही निर्देशित व संचालित होता है। यहाँ देह की इतनी हैसियत नहीं है, कि आत्म तत्त्व (मैं) के साथ आत्मीयता या सन्धि कर ले। देह चाहे जिस भी स्थिति में थी, आत्म तत्त्व ने सन्देहवश जैसा चाहा उसी स्थिति में देह को आना पड़ा और उसी स्थिति में उसके जगत को आना पड़ा। यहाँ वर्चस्व आत्म तत्त्व (**'मैं'**) का है। क्योंकि जीवात्मा, परमात्मा का इकलौता मानस-पुत्र है। देह उसके द्योतक **'मैं'** शब्द के लगे बिना अर्थहीन और निष्क्रिय होती है। देह के सान्निध्य में इसकी चेतना आच्छादित होकर अवचेतना में रूपान्तरित हो गई और यह देह के साथ तद्रूप सा हो गया। फलस्वरूप इसकी समस्त साधना और उपासना भी अवचेतना के सीमित दायरे में ही इसकी चेतना के स्तर के विकास तक रही। बड़ी-बड़ी सिद्धियाँ भी अवचेतना तक ही रहती हैं। इसलिए विशुद्ध आत्म तत्त्व की सिद्धि के लिए साधक ये सिद्धियाँ नहीं चाहता। अवचेतना में चेतना का स्तर कम-ज्यादा होने से मानव अपने को अपने से ही छोटा-बड़ा मानने लगा।

जब तक मानव को इस सन्देह (मैं देह हूँ) में सन्देह का ज्ञान नहीं होता, तो यह अपनी देह को अपना स्वरूप मानकर साथ ही प्रकट जगत को

अपने से भिन्न मानता रहता है। यह अवचेतना का निम्नतम स्तर है। जब इसे 'मैं देह हूँ' सन्देह का ज्ञान हो जाता है, कि सब एक ही **'मैं'** लगा रहे हैं और **'मैं'** सबकी एक ही है, तो मैं देह नहीं हो सकता। जब तक **'मैं'** लगेगी नहीं, तब तक कोई नाम, कोई रूप, किसी देह की बड़ी-छोटी क्रिया-अक्रिया, धर्म, सम्बन्ध कुछ भी प्रमाणित नहीं होते। **'मैं'** तत्त्व बिल्कुल पृथक् है और जैसे परमात्मा चैतन्य है, **'मैं'** भी चेतन है। देह के साथ नाम-रूप में तद्‌रूपता में **'मैं'** एक व्यक्ति के रूप में अति-अति सीमित एवं संकुचित हो गई। अपनी सत्ता से च्युत होकर अवचेतना में अधोगति को प्राप्त होने लगी। अतः देह भी निरर्थ, व्यर्थ और अनर्थ में भटकने लगी। देह निर्देशक **'मैं'** सन्देहयुक्त हो गया। देह का यथार्थ (यथा+अर्थ) लुप्त हो गया। इस जीव-सृष्टि में जीव को कुछ का कुछ नज़र आने लगा। साथ ही इसे अपने अक्षुण्ण पद की स्मृति भी बनी रही। इसलिए यह अपना पद खोने के बाद विभिन्न भौतिक पदार्थों को एकत्र करने लगता है। देह ही इसे भटकाने लगती है।

हमारे जीवन की प्राथमिकताएँ क्या हैं? **'सद्'** की अनुभूति के लिए एक हूक एवं जनून अपेक्षित है। यदि यह हूक होगी, तो जो देह व जगत है, था और होगा, वह सहायक ही होगा। किसी भी विशेष वर्तमान में हमें अपने अतीत में घटी और उस समय याद आती घटनाओं से अपनी वर्तमान चैनल का आभास हो जाएगा। भौतिक जगत में कुछ लोग बहुत महत्त्वाकांक्षी होते हैं। लेकिन इसकी एक सीमा है। **'मैं'** विवेक बुद्धि से सोचूँ, कि कब तक? इसके आगे क्या है? देह व इन्द्रियों की क्षमता के रहते मुझे इनसे परे क्या है, उसे जानना होगा। आकांक्षा और क्षमता का दामन-चोली का साथ है। जो महत्त्वाकांक्षी होगा, उसमें क्षमता भी होगी। क्षमताएँ उस महत्त्वाकांक्षा के समान अनुपात में हो भी सकती हैं, नहीं भी। भौतिक जगत में इनमें तालमेल कभी होता है, कभी नहीं होता।

स्वयं को जानना प्रत्येक मानव का जन्म-सिद्ध अधिकार है। इसके लिए मात्र एक जुनून, दीवानगी एवं परम लालसा अपेक्षित है। अपनी तुच्छ

क्षणभंगुर व क्षणिक क्षमताओं का पूर्ण समर्पण अपेक्षित है। सद्‌गुरु कहता है, कि ''तू भटका हुआ जीव है, तू **'सद्'** को कैसे पा सकता है। उसके लिए आत्म रुदन कर।'' भौतिक जगत में व्यक्ति पद, प्रतिष्ठा, सन्तान, परिवार, समाज में रुतबे आदि के लिए रोता है। दिन-रात संघर्ष रत रहते हुए पा भी लेता है। इन्द्रियों के सुखों के लिए पदार्थ परिवर्तित करता रहता है। लेकिन इन्द्रियों की क्षमता अति सीमित है और साथ ही सुख के लिए मन का आनन्दित होना भी परमावश्यक है। इन्द्रियों का सुख न होता, तो जीव को अपने आनन्द स्वरूप की धारणा ही न होती। सद्‌गुरु कृपा से इन्द्रियाँ हीं सुखों को बाइपास करते हुए सुखों के स्रोत आनन्द में प्रविष्टि दिलाती हैं। आनन्द जाग्रत होने पर इन्द्रियों का सुख अति तुच्छ हो जाता है। **'सद्'** का जिज्ञासु इन्द्रियों की क्षमता रहते हुए उन क्षमताओं को प्रभु को समर्पित करता है। ''तुम मात्र मेरे हो और मात्र तुम मेरे हो, मुझे बस इतना ही ज्ञान हो। मेरा कर्मक्षेत्र तुमसे, तुम तक, तुम्हारे साथ हो। मैं अपनी तुच्छ क्षमताओं की तुमसे क्षमा माँगता हूँ।'' क्योंकि **'सद्'** की प्राप्ति जीव की अपनी क्षमताओं की सीमा से परे है और मात्र कृपा साध्य है।

सन्देह (मैं देह हूँ) का ज्ञान होने पर सद्‌गुरु कृपा से देह की **'मैं'** से सन्धि होती है। इसमें विवेक जाग्रत हो जाता है, यह चिन्तन करने लगता है, कि मैं क्या कर-करवा रहा हूँ? कब तक करवाऊँगा और जो मैं देहार्थ (देह व देहों के लिए) प्राप्त करना चाहता हूँ, वह प्राप्त भी हो जाए, तो क्या हो जाएगा? इस सोपान पर ग्लानि, पाप और असंख्य उत्तरदायित्वों से लदी हुई देह और **'मैं'** में दरार पड़ जाती है। इस दरारे-मुराद में जीव को अनिर्वचनीय विश्राम मिलता है। सन्देह का ज्ञान होते ही **'मैं'** और **'देह'** सन्देह (मैं देह हूँ) से मुक्त होने के लिए **'संधि'** कर लेते हैं। वहाँ अवचेतना में इसकी **'धि'** अर्थात् चेतना का विस्तार होने लगता है। यहाँ देह अपने यथार्थ तथा जीव अपनी चेतना की ओर उन्मुख हो जाता है। इसे देह का सहयोग मिलने लगता है। अपनी उन अवस्थाओं को देह इसे दिखाती है, जो 'मैं देह हूँ' के सन्देह का ज्ञान न होने के कारण जीव स्वयं पर थोप रहा था। उदाहरणतः

मैं सोया हुआ था, मैं बहुत थक गया था, मैं मूर्च्छित हो गया था, मैं सब कुछ भूल गया। मैं सोऊँगा, मैं मरूँगा, मैं भस्मी बनूँगा। देह की सहायता से यह देह की सुषुप्ति, मूर्च्छा, विस्मृति, मृतकावस्था, भस्मावस्था में ध्यान द्वारा एकाग्र करता है तथा स्वयं में अदृश्य उन अवस्थाओं का **'दर्शन'** करता है।

मैं सुषुप्त हूँ, तो मानस क्या होगा? मैं मूर्च्छित, विस्मृत और मृतक हूँ, तो मानस क्या व कैसा होगा? ध्यान में इन अवस्थाओं पर एकाग्र करने पर यह पाता है, कि **न मैं व्यष्टि हूँ न समष्टि हूँ। यदि मैं व्यष्टि हूँ, तो समय-समय पर प्रकट देह सहित जगत (व्यष्टि सहित समष्टि) भी मैं हूँ।** मैं किसी से सम्बन्धित नहीं हूँ, मेरा कोई कारोबार अथवा व्यापार नहीं है। धन-सम्पदा, धर्म-कर्म-कर्तव्य, गुण-दोष होते हुए भी मेरे लिए कोई धर्म-कर्म, पाप-पुण्य नहीं है। त्रिगुणमयी माया के तीन गुण होते हुए भी मैं त्रिगुणातीत हूँ। पहले यह मृत्यु से भयभीत था, अब इसे मृत्यु में **'अमरत्व'** का आभास होने लगता है। जीवित देह के साथ यह देह की मृतकावस्था का ध्यान करता है। मेरी अर्थी उठेगी और शमशान जाएगी। अर्थी का अर्थ क्या है? शमशान क्या है? ध्यान करते हुए इन स्थितियों में प्रविष्टि में देह इसकी सहायता करती है। अन्ततः देह इसे भस्मी अवस्था तक ले जाती है। पूर्णतः भस्मी तब प्रकट होती है, जब पूर्ण देह पूर्णतः पंच-महाभूतों में विलय हो जाती है। इसके बाद गर्भित देह (Conceptual) की भूमिका समाप्त हो जाती है। 24 कैरेट तक पहुँच अवचेतना पूर्णतः चेतना में रूपान्तरित हो जाती है। चेतना में अपने पद की धुंधली, स्पष्ट और स्पष्टतर स्मृति आती है। जैसे कोई राजकुमार स्मृति विभ्रम में कोई नौकरी करता हो या छोटा-बड़ा व्यापार करता हो, उसे याद आ जाए, कि वह तो इकलौता युवराज है। स्मृति की विभिन्न अवस्थाओं में इसके साथ जन्म-मृत्यु से परे इसकी यथार्थ देह होती है। जन्म-मृत्यु वाली गर्भित देह में इसे अपने पद की स्मृति नहीं आती। जैसे इसकी अवचेतना में चेतना का स्तर बढ़ता है इसे विश्राम मिलने लगता है। वहाँ इसे **'संतृप्ति'** मिल जाती है और अपने विशुद्ध स्वरूप की **'स्मृति'** आ जाती है।

भस्मावस्था एकमात्र ऐसी अवस्था है, जिसमें न कोई नाम रहता है और न कोई रूप रहता है। सुषुप्ति, मूर्च्छा, विस्मृति, मृत्यु में देह नाम-रूप में रहती है। लेकिन भस्मी में पंच-महाभूतों में निर्मित और पंच-महाभूतों द्वारा पालित देह पंच-महाभूतों में पूर्णतः विलय हो जाती है और **'भस्मी'** रूप में एक पदार्थ दृश्यमान होता है, जो दृश्यमान देह के दौरान अदृश्य था। **'भस्मी'** एकमात्र अवस्था है, जो देह की होते हुए भी देहातीत है। वहाँ इसकी देह के साथ तद्‌रूपता छूट जाती है, क्योंकि भस्मी का कोई रूप ही नहीं है। जिस देह के साथ सन्देह निवारण हेतु **'संधि'** हुई थी, वह देह अपनी समस्त विधाओं सहित **'अदृश्य'** हो जाती है। यहाँ वह संधि टूट जाती है और यह देह के होते हुए अदृश्य देह के दृश्यमान अविशेष (पदार्थ) भसम के साथ आत्मसात् हो जाता है। वहाँ इसकी **'अवचेतना'** का पूर्ण रूपान्तरण **'चेतना'** में हो जाता है और पुरुषार्थ के प्रथम सोपान **'अर्थ'** की पूर्ति हो जाती है।

'भस्मी' देह का **'अर्थ'** है और जीवात्मा के पद का अर्थ (पदार्थ) है। **'अर्थ'** तक की समस्त साधनाएँ एवं पुरुषार्थपरक कर्म, अवचेतना में चेतना की चरम सीमा तक ही रहते हैं। जिसका **'साधन'** देह एवं **'साधक'** जीव-कोटि में भटकती हुई जीवात्मा है। **'अर्थ'** के सोपान पर देह के अर्थ का ज्ञान होने पर देह चिन्ताएँ पूर्णतः समाप्त हो जाती हैं और चिन्तन प्रारम्भ हो जाता है, कि **'मैं'** स्वयं में देशातीत, कालातीत, कर्मातीत, धर्मातीत, कर्तव्यातीत, सम्बन्धातीत, लिंगातीत, मायातीत अथवा त्रिगुणातीत है। यह पदार्थ (भस्मी) मेरे जैसा है। जीवात्मा सहज ही इस पदार्थ के साथ आत्मसात् हो जाता है। इस **'संतृप्ति'** में समस्त भटकन समाप्त हो जाती है और इसे अपने स्वरूप की **'स्मृति'** आनी प्रारम्भ हो जाती है।

'स्मृति' के अनुसार अपना स्वरूप पाने की इच्छा बलवती हो जाती है। वहाँ पर इसे अपने विशुद्ध स्वरूप की लग्न लग जाती है। उस **संलग्नता** में यह पाता है, कि जब देह दृश्यमान थी, तो यह प्रकट पदार्थ **'भसम'** अदृश्य था। देह अप्रकट हुई तो यह प्रकट हुआ। यह प्रकट पदार्थ मुझे मेरे पद की स्मृति दिला रहा है। इसका अप्रकट स्वरूप मेरा विशुद्ध स्वरूप है।

उस प्रकट पदार्थ **'भसम'** की सहायता से यह अपने स्वरूप को पाने की चेष्टा में दृढ़ संकल्प होते हुए संलग्न हो जाता है। उस प्रकट अर्थ (भसम) को लेकर अपने स्वरूप को पाने के लिए जो साधना करता है, वह अर्थ का अर्थ **'अर्थार्थ'** है। भस्मीमय देह प्रकट यथार्थ देह होती है। पंच-महाभूतों की जन्म-मृत्यु में बंधी देह ध्यानाग्नि में विलय हुई, तो **'अर्थ'** मिला। यह यथार्थ देह के साथ अपना स्वरूप पाने में **'संलग्न'** हुआ। **'संलग्नता'** में लगा पुरुष **'अर्थार्थी'** है। जब वह अपने स्वरूप **'विरक्ति'** को पा लेता है वहाँ पुरुषार्थ के द्वितीय सोपान **'धर्म'** पर पहुँच जाता है। **'अर्थ'** पर अपने स्वरूप की स्मृति आती है और विरक्ति को पाकर स्मृति मिल जाती है। **'धर्म'** के सोपान पर **'धारयति इति धर्मः'** के अनुसार जीवात्मा का विरक्त मानस यथार्थ देह को धारण करता है। पहले गर्भित देह धारित थी। महापुरुष जब अवतार लेते हैं, तो यथार्थ देह को धारण करते हैं। अतः अब जो देह है, वह पंच-महाभूतों से परे विदेह देह होती है। यह संहार के बाद की देह है। इस समय वह देह जो पंच-महाभूतों में पूर्णतः विलीन हो गई है, उसका इसे सूक्ष्म सा परम आनन्दमय **'आभास'** मात्र होता है। नाम-रूप की संज्ञा से मुक्त होने के कारण यह **'स्मृति भगवती'** है। वह देहातीत यथार्थ देह **'सद्'** होती है।

'मैं भस्मी हूँ' के भाव में सराबोर हुआ यह जब समाधि से उठता है, तो वहाँ पर जो यथार्थ देह इसके साथ होती है, वह **'विदेह'** होती है। उस देह में उसे कोई अधिपत्य (देह मेरी है) और अध्यास (मैं देह हूँ) नहीं होता, बल्कि परम आनन्दमय **'देहाभास'** होता है। इस देहाभास के साथ भस्माधिपत्य (भस्मी मेरी है और मेरी भस्मी है) और भस्माध्यास (मैं भस्मी हूँ, मैं भस्मी ही हूँ तथा मैं भस्मी के अतिरिक्त कुछ नहीं हूँ) होता है। यह भस्माधिपत्य और भस्माध्यास जिस देह के आधार पर होता है, उसकी नींव **'देहाभास'** है। उसके साथ जो यथार्थ देह होती है, वह दिव्य (विदेह) देह होती है। यहाँ तक आते-आते वह असाधारण महापुरुष दैवीय दृष्टि से पूजनीय व वन्दनीय हो जाता है। उसकी गरिमा के अनुसार ईश्वरीय प्रकृति उसके लिए समस्त

प्रबन्ध करती है। वह यथार्थ देह आत्मामयी होती है।

देहाभास वाली देह जब स्वरूप लेती है तो **'नाम'** होते हुए भी **'अनाम'** और **'रूप'** होते हुए भी **'अरूप'** होती है। यही इसकी देह का यथार्थ स्वरूप है, जिसके साथ यह **तद्रूप** नहीं **तद्स्वरूप** होता है। उस स्वरूप के साथ इसकी तादात्मयता एवं आत्मसातता हो जाती है। यह आत्मीयता से सराबोर देह **'आत्मामयी' 'मैं मयी'** विदेह देह होती है। आत्मामयी देह दिव्य देह है। अपनी देह की भस्मी से आत्मसात् होकर साधक सद्गुरु निर्देशन में 'भस्मी नामकरण प्रकरण' करता है, कि ''प्रभु ! मैं भस्मी हूँ। आप मेरे नाम को मेरी इस भस्मी पर प्रस्थापित कर दो।'' **'नाम'** स्वयं में **'अरूप'** और **'अनाम'** है और **'भस्मी'** भी **अरूप** व **अनाम** है। अब देह रूपवान, सौन्दर्यवान, ज्ञानवान, शक्तिवान, ऐश्वर्यवान, ख्यातिवान एवं वैरागवान होकर स्वयं में 'अरूप व अनाम' हो जाती है। क्योंकि नाम-रूप की तद्रूपता की गाँठ ही नहीं रहती। वह देह उस अरूप नाम एवं अरूप **'मैं'** के साथ संगमित होती हुई स्वयं में परमात्मा व जीवात्मा का संगम होती है।

उसके साथ दिव्य जीवन का शुभारम्भ होता है। इस **'मैंमयी'** देह की आत्मतत्त्व **(मैं)** के साथ आत्मीयता हो जाती है। इसके लिए नित नूतन देह सहित जगत तदनुसार प्रकट होता है। वह बिन्दु सहित स+सार=संसार की वास्तविक प्रदर्शनी का रसास्वादन करते हुए प्रभु की अदृश्य कलाओं एवं स्वयं प्रभु का दर्शन करता है। कृपया एकाग्र करिए, मैं पुनः वर्णन करूँगा। पंच-महाभूतों की देह के पंच-महाभूतों में पूर्णतः विलय होकर अदृश्य होने के बाद दृश्यमान होने वाला पदार्थ **'भस्मी'** देहातीत है। देह के रहते इसके साथ जब **'मैं'** (आत्मतत्त्व) की आत्मीयता हो जाती है, तो वह तत्त्वातीत तत्त्व विरक्ति रूप में **दृष्टा** होता है। **'मैं'** (जीवात्मा) स्वयं में देहातीत हूँ और मुझे दी गई यथार्थ देह पंच-महाभूतों के समस्त प्रपंच से परे देहातीत विदेह देह है। दृश्यमान भस्मी का स्वरूप पंच-महाभूतों की समस्त प्रदर्शनी और देह सहित जगत से परे है, इसीलिए वह स्वरूप ही विरक्ति रूप में दृष्टा है। यह पदार्थ (भसम) जब अपना स्वरूप **'धर्म**' दिखाता है, तो सारे जगत से परे

'दृष्टा' पद देते हुए इसे संतृप्त कर देता है। इसका दृष्टव्य जाग्रत हो जाता है तथा यह पूर्णकाम होते हुए मात्र ईश्वर, अपने इष्ट व सद्गुरु की कामना में संलग्न हो जाता है। वैराग्यमयी मनःस्थिति में पूर्ण निर्लिप्त हो जाता है। इसे अपने इष्ट की भक्ति मिल जाती है और यह पुरुषार्थ के तीसरे सोपान **'काम'** की ओर ऊर्ध्वगमन करता है। चारों मोक्षों (सायुज्य, सामीप्य, सालोक्य, सारूप्य) में विचरता हुआ भी कैवल्य स्थिति में रहता है। स्वयं में पूजनीय ही नहीं दर्शनीय हो जाता है। उसके दर्शन मात्र से जीव-सृष्टि में भटकते जीवों को परम शान्ति मिलती है और अन्ततः उनका उद्धार हो जाता है।

''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(23 फरवरी एवं 8 मार्च से 12 मार्च 2011)

नाम-दर्शन

इष्ट-कृपा से **'नाम-दर्शन'** शीर्षक प्रवचन आप समस्त अति श्रद्धालु एवं जिज्ञासु पाठकों व श्रोताओं के सम्मुख प्रस्तुत करने में **'मैं'** स्वयं को अति हर्षित एवं गौरवान्वित अनुभव कर रहा हूँ। यह समस्त विषय मात्र आत्मानुभूति से प्रेरित व निःसृत है, आपकी एकाग्रता वांछनीय है। यथा श्रद्धा एवं यथा सद्‌गुरु निर्देशन हम सब ईश्वर का नाम जपते और भजते हैं। लेकिन जब तक हम अपने नाम को ध्यान में नहीं रखेंगे अर्थात् अपने नाम के महात्म्य, सरलता व जटिलता का आभास एवं ज्ञान हमें नहीं होगा, कोई नाम-जाप एवं सिमरन सुफलदायी नहीं होगा। **'नाम'** बहुत बड़ा रहस्य है और स्वयं में दर्शन (दरश+न) है। एक ही जीवात्मा युगों-युगान्तरों से **'नाम-रूप'** में तद्‌रूपतावश अवचेतना में जीव बनकर जीव-सृष्टि में भटक रही है। जीव को इस अन्तहीन भटकन से बाहर आने के लिए कोई शाश्वत् **'नाम'** ही चाहिए।

जीव-सृष्टि में **'नाम'** स्वयं में एक Complex एवं जटिल्य बन गया। जैसे Shopping Complex विभिन्न भिन्न-भिन्न दुकानों का समूह होता है एवं Residential Complex में बहुत से भिन्न-भिन्न घर होते हैं। वैसे ही **नाम** में एक देह की कुल समष्टि समाहित है। इस नाम Complex में चार अंग हैं –**'मैं'**, **'व्यक्ति'** (देह), **'नाम'** और **'हूँ'** (अस्तित्व)। इन्हें Component या अंग तब कहेंगे, जब **'मैं देह हूँ'** Complex प्रकट होगा, अन्यथा ये चारों Individual अस्तित्व हैं। प्रत्येक स्वयं में परिपूर्ण एवं महत्त्वपूर्ण है। **'नाम'** जिस देह (रूप) का रखा जाता है, वह **'मानव-देह'** स्वयं में अनाम है। **'मैं'**

अमुक (रूप) -अमुक (नाम) हूँ, किसी मानव का यह परिचय स्वयं में Complex है; जो एक सरल सी मानव देह का Complicated (जटिल) परिचय है। जैसेकि Shopping Complex में दुकान न हो, यदि हो तो उसमें कोई पदार्थ न हो, पदार्थ हों तो उन्हें बेचने वाला न हो। एक मानव-देह युगों-युगान्तरों में विस्तृत सम्पूर्ण ईश्वरीय प्रदर्शन का अंग नहीं, बल्कि प्रतिनिधि एवं संघनित स्वरूप है। इस देह का एक **नाम** में परिचय देना सम्भव ही नहीं है। ऐसी अति विलक्षण देह का अर्थ जाने बिना मानव ने सन्देह (मैं देह हूँ) में इस पर अनधिकृत कब्ज़ा व अधिपत्य कर लिया।

मानव-देह उस परम पिता परमात्मा की सम्पूर्ण युगों-युगान्तरों में विस्तृत सृष्टि के प्रदर्शन का रसास्वादन करने के लिए है, जिसका अधिकारी मात्र जीवात्मा और **'जीवात्मा'** मात्र है। जीव-कोटि में देह के साथ तद्‌रूपता सी, जीव का भ्रम या सन्देह है। इसका ज्ञान भी उसे नहीं हो पाता और उसके द्वारा रसास्वादन नहीं, फंसास्वादन होता है। जब हम छोटे थे, तो जादू का खेल देखने जाते थे। वह जादूगर लम्बा सा टोप, जादू वाला काला चोगा पहने मंच पर प्रकट होता था। सब ज़ोर-ज़ोर से ताली बजाते थे। बहुत कौतूहल होता था। वह एक खाली बर्तन सबको दिखाता था। उस पर कपड़ा डालकर अपने हाथ में पकड़ी छड़ी से 'छू छक्का छू' करता था और कपड़ा हटा कर कुछ भी (कभी कबूतर, कभी मुर्गा, गुड़िया या बन्दर आदि-आदि) निकाल देता था। सबको बड़ा विस्मयजनक आनन्द होता था, कि खाली बरतन में से कबूतर या कुछ भी कैसे निकल आया ! फिर वह कबूतर आदि उसमें डाल देता था। कपड़ा डालकर छड़ी से फिर कुछ जादुई संकेत करते हुए बरतन खाली का खाली दिखा देता था। फिर तालियों की गड़गड़ाहट होती थी और कौतूहल होता था, कि अब क्या दिखाएगा। पहले उसने जब खाली बरतन दिखाया तो तालियाँ नहीं बजी। उस खाली बरतन से कुछ भी निकलने और बाद में खाली बरतन दिखाने पर तालियाँ बजी। ऐसे ही यह संसार उस स्रष्टा का जादुई प्रदर्शन व इन्द्रजाल है। यहाँ सब खाली हाथ आते हैं और खाली हाथ ही जाते हैं।

मानव-देह का कर्ता स्वयं **'अव्यय'** (ईश्वर) है। मूलतः शास्त्रीय शब्द **कर्ताव्य** (कर्त+अव्य) है। कुछ भी करन-करावनहार प्रभु ही हैं। यह जानना और जानकर आश्वस्त होते हुए मान लेना ही मानव का एकमात्र कर्तव्य है। मानव को, मानव-देह की चेतना के परिचय और उस परिचय की प्रामाणिकता, सत्यापन एवं पुष्टि के लिए तीन भिन्न-भिन्न Components या अंगों की आवश्यकता थी–**'मैं'** शब्द, **'मानव-देह'** और **'नाम'**। लेकिन इनके युग्म या ग्रन्थि (Complex) की आवश्यकता नहीं थी। प्रामाणिकता के लिए **'मैं'** शब्द, सत्यापन के लिए **'मानव-देह'** और पुष्टि के लिए **'नाम'** अनिवार्य था। लेकिन **'मानव-देह'**, **'मैं'** और **'नाम'** तीनों का Complex या गाँठ पड़ने से सब कुछ उलझता चला गया और मानव के अस्तित्व में गाँठ पड़ने लगी।

चार व्यक्ति परिचय देते समय अलग-अलग नाम बताते हैं। लेकिन **'मैं'** और **'हूँ'** सबकी एक ही है। पहले ने कहा 'मैं सोहनलाल हूँ'। सद्गुरु पूछता है, कि "सोहनलाल जी, सोहनलाल आपके क्या लगते हैं ?" कि "मैं ही सोहनलाल हूँ।" तो उसकी **'मैं'** सोहनलाल मात्र और मात्र सोहनलाल ही है। यहाँ **'मैं'** शब्द सुनने में एक ही है, लेकिन सबकी **'मैं'** एक नहीं अलग-अलग है। अतः **'मैं'** के साथ कुछ गुथा-मुथा एवं गुण्ठित हो गया है। हरेक व्यक्ति में **'नाम'** का वर्चस्व होता है और नाम का वर्चस्व जिस **'मैं'** शब्द के लगने से होता है उसे न कोई जानता है और न जानना चाहता है। सबकी **'मैं'** एक है और **'हूँ'** एक है, लेकिन नाम अलग-अलग हैं। यहाँ **'मैं'** मात्र उस देह तक सीमित है, जिसका एक रूप है। वह रूप सतत् परिवर्तित होता हुआ भी एक नाम से बँध गया। **'मैं'** शब्द लगने से देह की क्रियाशीलता, अक्रियाशीलता, विशेषता, गुण-अवगुण, पसन्द-नापसन्द, धर्म, कर्म, कर्तव्य, सम्बन्ध, लिंग, सुख, दुःख, लाभ, हानि, मान, अपमान, यश, अपयश आदि प्रमाणित हुए।

देह में **'रूप'** (चेहरा) देह का प्रतिनिधि है, वह रूप **'नाम'** से बँध गया। अतः **'नाम'** दृश्यमान देह का प्रतिनिधित्व करने लगा। **'मैं'** आत्मतत्त्व है,

जो जीवात्मा का प्रतिनिधि है। लेकिन देह के सान्निध्य में प्रकट होने पर तद्रूपतावश तद्नाम होकर उस **'नाम'** के एक व्यक्ति का प्रतिनिधित्व करने लगा। एक प्रतिनिधि की दूसरे प्रतिनिधि से गुथकर गांठ पड़ गई। The name is **of** the person and the name is not the person. Therefore the name is **off** the person. नाम देह का होते हुए भी देह से बाहर है, लेकिन महादुर्भाग्यवश दोनों भ्रम, अज्ञान, सन्देह और अज्ञान के अज्ञान में एक ही हो गए। जो स्वाभाविक हो गया है और इस पर किसी को कोई आपत्ति नहीं है, कि मेरी **'मैं'** और एक ही **'मैं'** सबने क्यों लगाई। यह गुण्ठित एवं कुण्ठित जीवन, मानव का एक रुटीन बन गया है।

'मैं' शब्द जो विशुद्ध आत्मतत्त्व का द्योतक एवं प्रतिनिधि है, वह कभी नहीं बदलता। अतः स्वयं में **शब्द ब्रह्म** है। **'मैं'** का अपना कोई रूप नहीं है, कोई नाम नहीं है। जब किसी ने कहा, कि मैं अमुक-अमुक हूँ, तो वह **'मैं',** रूप के साथ गुण्ठित एवं कुण्ठित **शब्द भ्रम** है। जब धागों में गाँठ डाली जाती है, तो वे धागे पृथक्-पृथक् होते हैं और गाँठ डालने का कोई उद्देश्य होता है। वर-वधू का एक साथ रहने के लिए गठ-बन्धन होता है। विभिन्न राजनीतिक दल सोच-समझकर एक लक्ष्य की पूर्ति के लिए गठ-बन्धन करते हैं। **'मैं'** शब्द (जिसका अपना कोई रूप नहीं है) उसकी **'रूप'** के साथ तद्रूपता में ऐसी गाँठ पड़ी, कि रूप बदलता रहा और गाँठ सुलझने की बजाय और अधिक-अधिक उलझती रही। **'गाँठ'** तब तक गाँठ रहती है, जब तक पूरी तरह से सुलझ नहीं जाती। अधिक उलझने, अधिक-अधिक उलझने और थोड़ी बहुत सुलझने पर भी गाँठ समस्या ही बनी रहती है। इस गाँठ के कारण देह का नाम रखने के बाद होश सम्भालते ही शैशव से शव तक निरन्तर बदलते रूपों में **'मैं'** तद्रूप के साथ तद्नाम भी हो गया। **'रूप'** के साथ **'मैं'** की गाँठ इतनी गुण्ठित हो चुकी है, कि जीवात्मा, एक ही कल्पित जीव की जीव-सृष्टि में जन्मों-जन्मान्तरों से भटक रहा है।

देह का **'नाम',** 'मैं' 'देह' और 'हूँ' पर हावी हो गया। अतः 'मैं देह हूँ' सन्देह में जीव अपनी विशेषताओं को बढ़ाने और अति विशिष्ट होने की

लालसाओं में असंख्य चाहतों से भरा हुआ विकृतियों से घिर गया। **'नाम'** ही इसे बदनाम करने लगा। इसका मूल सच्चिदानंद स्वरूप पूर्णतः आच्छादित हो गया। इसकी देह का यथार्थ और ईश्वरत्व भी लुप्त हो गया। देह का **'नाम'** मात्र ही **'मैं'** **'देह'** और **'होने'** (अस्तित्व) का द्योतक बन गया। कोई टेलीफोन पर मुझसे पूछे, कि कौन बोल रहा है, तो केवल **'नाम'** उच्चारण करने मात्र में नाम के साथ **'मेरा होना'** **'मैं'** और **'देह'** तीनों अंग होते ही हैं। किसी भी मानव की पहचान उसके चेहरे से की और करवाई जाती है और चेहरा प्रत्यक्ष दृश्यमान होते हुए भी नाम की उद्घोषणा नहीं करता। आप व्यक्ति विशेष से परिचित नहीं हैं, तो आप पूछेंगे, कि वह कौन है? वह सामने खड़ा भी हो, तो उसके रूप मात्र से आप उसे पहचान नहीं सकते। जब बताया, कि ये व्यक्ति अमुक-अमुक है वह **'नाम'** एक Complex हो जाता है और **'मैं', देह, 'हैत्व या अस्तित्व' और** **'नाम'** चारों अंगों को स्वयं में समेटे होता है। **'मैं', 'देह'** **'नाम'** और **'हूँ'** (अस्तित्व) चारों में **'हूँ'** अथवा मेरा होना सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। यदि कोई **'हूँ'** बोलने की स्थिति में ही नहीं है, तो वह नहीं है। **'हूँ'** बोला या नहीं बोला यदि कोई **'है'** तो वह **'मैं'** भी है। यह **'मैं'** क्या है?

सम्पूर्ण महाब्रह्माण्ड के मानव-शिशु **'मैं'** **'मैं'** की ध्वनि के साथ रोते हुए ही प्रथम श्वास लेते हैं। कोई भी शिशु हँसते हुए पैदा नहीं होता। चिकित्सा वैज्ञानिक दृष्टि से प्रथम श्वास के साथ यह रुदन बहुत महत्त्वपूर्ण है। यदि इस रुदन में विलम्ब हो जाए, तो चिकित्सक एवं शिशु के सम्बन्धी चिन्तित हो जाते हैं। अतः स्वस्थ मानव-शिशु रोते हुए ही जन्म लेता है। प्रथम श्वास के साथ प्रथम रुदन **'मैं'** **'मैं'** की ध्वनि लिए होता है और जीवित शिशु का जन्म घोषित व प्रमाणित हो जाता है। क्रन्दन स्वयं में शब्द नहीं है। **'मैं'** (आत्मतत्त्व) से **'मैं'-'मैं'** शब्द के साथ यह क्रन्दन होता है। किसी पदार्थ, प्राणी, खोने-पाने और साकार जगत की किसी विधा का नाम **'मैं'** नहीं है। सृष्टि के अपार शब्द भण्डार में जितने भी अन्यथा शब्द हम व्यवहार में प्रयोग करते हैं, वे किसी व्यक्ति, प्राणी, पदार्थ आदि के नाम होते

हैं अथवा किसी कृत्य, अकृत्य, भाव, विचार, घटना आदि को इंगित करने के लिए होते हैं। लेकिन **'मैं'** शब्द प्रत्येक पदार्थ, प्राणी, कृत्य, अकृत्य, लाभ, हानि, घटना, भाव, विचार आदि का प्रमाण होते हुए भी किसी से जुड़ा हुआ नहीं है।

'मैं' शब्द को (जो ब्रह्मात्मा की ही अभिन्न विधा जीवात्मा का शब्द रूप में प्रकाट्य है) शिशु अहंकारवश जानबूझ कर नहीं, स्वतः भाव से उच्चरित करता है। **'मैं'** शब्द को किसी भाषा अथवा शिशु की तथाकथित मातृ भाषा में क्या कहते हैं, शिशु को इसकी कोई परवाह नहीं होती। किसी अंग्रेज़ का शिशु 'आई-आई' कह कर पैदा नहीं होता। **'मैं', 'मैं'** शब्द की ध्वनि एवं रुदन के साथ उसके मुख पर एक विक्षिप्ति, भय, त्रास, पीड़ा, दुःख व वेदना का भाव होता है। चारों ओर से तथाकथित खुशी, प्रसन्नता एवं बधाई के परिवेश में यह **'आत्मक्रन्दन'** सबको सहज, स्वाभाविक एवं नार्मल लगता है। आत्म तत्त्व का प्रतिनिधि शब्द **'मैं'** अवचेतना में पुनः देह को अपने साथ पाकर चीत्कार कर उठता है। यहाँ उसे देह व जगत की कोई पीड़ा, लेना-देना, सुख-दुःख, लाभ-हानि, यश-अपयश, ज्ञान-अज्ञान, मान-अपमान का भाव नहीं होता। इस प्रथम रुदन का विशिष्ट दैवीय कारण होता है। अवचेतनामयी देह के सान्निध्य में जीवात्मा को यह चेतना होती है, कि हे प्रभु ! फिर जब मैं प्रकट हुआ हूँ, तो मेरे साथ देह आ गई। यह आत्मवेदना धीरे-धीरे वह भूल जाता है। इसके बाद देह के किसी कष्ट अथवा भूख, प्यास आदि की स्थिति में रोता है और इसका जगत हंसता नहीं, बल्कि दैहिक पीड़ा का कारण जानने व चिकित्सा आदि के लिए चिन्तित हो जाता है।

प्रथम रुदन जो **'मैं' 'मैं'** के साथ होता है, वह सन्देह में जीवकोटि की अवचेतना में देह के साथ तद्‌रूपतावश जन्मों-जन्मान्तरों से भटके हुए जीवात्मा की 'Cry' है, कि मैं फिर मानव-देह के साथ तद्‌रूप हूँ। शिशु के रुदन और **'मैं'** शब्द की ध्वनि के साथ ज्योतिषी ग्रह, नक्षत्र और जन्मपत्री आदि का लेखा-जोखा तैयार करते हैं। इस रुदन को मात्र योगी और

आध्यात्मिक महापुरुष जानते हैं और इस आत्म-रुदन पर संसारी व सन्देहयुक्त जीव बधाई देते और प्रसन्नता व्यक्त करते हुए परस्पर मिठाइयाँ बाँटते हैं। हम संसारी जीवों के लिए 'मैं देह हूँ' के सन्देह के अज्ञानवश 'रुदन' ही नार्मल हो गया है। **'मैं', 'मैं'** अथवा I,I करते हुए जीव रोता नहीं है, परन्तु जो कुछ बनता-बनाता, करता-करवाता है, वह रुदन ही होता है। इस ज्ञान के अभाव में हर व्यक्ति की प्रसन्नता एवं सहज मुदिता आच्छादित ही रहती है। जो कभी स्थाई रूप से वस्तुतः प्रसन्न (परसन्+न) न हो पाए, उसे Person कहते हैं। जो भी तथाकथित प्रसन्नता, खुशी दृष्टिगोचर होती है, वह किसी दुःख की सापेक्षता में होती है। अतः अस्थाई, क्षणिक एवं क्षण-भंगुर होती है। जैसे मादक द्रव्यों के सेवन से नशा आदि करके क्षणिक विश्राम सा मिलता है। सांसारिक रोने और हँसने का आनन्द से कोई सम्बन्ध नहीं है।

नाम Complex में एक मानव-देह अपने समय-समय के प्रकट-अप्रकट जगत सहित होती है। **'मैं'** शब्द चाहे बोला भी न जाए, तो भी होगा ही, क्योंकि वह मानव-देह, चेतना में सक्रिय, जीवित व जाग्रत है। अतः उस व्यक्ति विशेष तथा विशेष व्यक्ति का होना (हैत्व) प्रमाणित भी है। **'मैं'** शब्द यद्यपि जीवात्मा का प्रतिनिधित्व करता है, लेकिन वह **'मैं'** जीवित, जाग्रत एवं जानवित मानव देह के साथ नाम-रूप में तद्रूप हुई **'मैं'** है। अतः उसकी **'मैं'** जीवात्मा का नहीं उस मानव-देह का प्रतिनिधित्व करती है। यह **'मैं'** जो, जब, जहाँ, जैसी भी देह थी, है और होगी, उसके साथ नाम-रूप में तद्रूप होगी।

यहाँ मूलतः दो Complex हैं—**'मैं'** और **'नाम'**। दोनों ही स्वयं में अनाम और अरूप हैं। अकेले **'मैं'** से किसी नाम या रूप का बोध नहीं होता। अकेले **'नाम'** से किसी रूप का पता नहीं चलता। अतः **'नाम'** स्वयं में अनाम ही नहीं अरूप भी है। यदि पूछा, कि कौन है ? जवाब मिला, कि **'मैं'**। अब इस मैं शब्द से किसी मानव-देह का होना पता चलते हुए भी कौन है, यह पता नहीं चलता। अतः उत्तर अधूरा है, क्योंकि कौन सी **'मैं'** है या

कौन व्यक्ति है, इसका बोध नहीं होता। यदि उसने जवाब दिया होता, कि **'गिरधारी'** तो इस उत्तर में **'मैं', 'मानव-देह', 'नाम'** और उसका **'होना'** चारों अंग समाहित रहते तथा उत्तर पूर्ण होता। अतः सबसे बड़ा Complex **'नाम'** Complex है, जो तथाकथित अपूर्ण Complex **'मैं'** से अधिक प्रभावशाली है।

इस प्रकार **'मैं'** जो आत्मतत्त्व एवं विशुद्ध जीवात्मा का प्रतिनिधि शब्द ब्रह्म था, चेतना से अवचेतना में उतर कर **'नाम-रूप'** में तद्‌रूप सा हुआ और कर्म-बन्धन, काल-बन्धन एवं प्रारब्ध-बन्धन के मिथ्या मायाजाल में जकड़ा गया। इस जकड़न में भी उसे अपने विशुद्ध आत्म-स्वरूप की धुंधली सी स्मृति थी, इसलिए उस स्वरूप को वह देह व जगत की विविध भिन्न-भिन्न विधाओं में पाने के असफल प्रयास में और-और उलझता चला गया। इतना उलझ गया, कि 'मैं देह हूँ' इस सन्देह का ज्ञान पूर्णतः आच्छादित हो गया और भ्रमवश अपने इस अज्ञान को ही ज्ञान मानने के कारण जीव, बद्ध अज्ञानी हो गया। बद्ध ज्ञानी और बद्ध अज्ञानी दोनों अधोगति में ही रहते हैं। **'मैं', 'रूप'** (देह), **'नाम'** और **'है'** (अस्तित्व या हैत्व) के जटिल्य में सद् मानव-देह असद् सी हो गई। देह और जगत के होने का प्रमाण, सत्यापन और पुष्टि **'मैं'** शब्द के द्वारा होती है और **'मैं'** शब्द के प्राकट्य के लिए एक जीवित एवं जाग्रत मानव-देह का होना अत्यावश्यक है।

एक मानव-देह है और एक उसका होना है। सुषुप्त व्यक्ति देह है लेकिन उसके लिए देह का होना नहीं है, तद्‌नुसार जगत का होना भी नहीं है। जब मेरे लिए देह का होना है, तो प्राकट्य में देह, जगत सहित होती है और उसकी पुष्टि, प्रमाण एवं सत्यापन **'मैं'** शब्द द्वारा ही होता है। जन्मों-जन्मान्तरों से यह सिलसिला चला आ रहा है। प्रत्येक जन्म में **'नाम'** पृथक् होता है, **'रूप'** पृथक् होता है। एक ही जन्म में देह के अनेको भिन्न-भिन्न रूप होते हैं और व्यावहारिक दृष्टि से **'नाम'** नहीं बदला जाता। रूप और जगत नित्य बदलता रहता है। जीवन के एक परिदृश्य (एपीसोड) की समाप्ति होने पर दूसरे परिदृश्य में रूप और जगत बिल्कुल बदला हुआ

होता है, **'मैं'** वही रहती है। सर्व का दृष्टा एक व्यक्ति नहीं, अदृश्य जीवात्मा है, जो **'मैं'** शब्द में प्रकट होने के लिए मानव-देह का तनिक अवलम्बन मात्र लेता है।

देह में, देह का प्रतिनिधित्व **'रूप'** करता है। जैसा भी रूप दृश्यमान है, वह **'नाम'** के साथ गुण्ठित है और इस दृढ़ गांठ में नाम स्थिर तत्त्व है लेकिन दर्शित नहीं है। इस गांठ का अस्तित्व **'नाम'** से है। **'रूप'** नाम से इस प्रकार गुण्ठित है, कि बदलते हुए रूपों में वह जो नाम नज़र नहीं आता, वह उस गांठ का स्वामी है। सतत् बदलते दृश्यमान रूप (देह) का सद् उसकी परिवर्तनशीलता है। इसका अदृश्य Factor नाम है, जो स्थिर है। देह जो, जब, जहाँ, जैसी है, नाम वही रहता है। वास्तव में **'नाम'** ही स्वयं में देह बन गया। देह पृथक्-पृथक् है और उसके साथ प्रकट समय-समय का जगत भी पृथक् है।

समष्टि-व्यष्टि अलग नहीं हैं। व्यष्टि है, तो समष्टि सहित ही होगी और सम्पूर्ण समष्टि की प्रतिनिधि व्यष्टि देह है। सिर के बिना देह नहीं हो सकती, **'स्व'** सर्व सहित है और **'सर्व'** **'स्व'** के बिना नहीं हो सकता। **'मैं'** सर्व का एक है, लेकिन **'नाम'** सबके पृथक्-पृथक् हैं। अतः **'नाम'** Complex में **'मैं'** Complex भी समाहित है। नाम एक व्यक्ति (Individual) का है, जो सबसे अलग है और **'मैं'** आत्मतत्त्व का प्रतिनिधि शब्द है। 'मैं अमुक-अमुक हूँ' के भ्रमपूर्ण गठबन्धन ने देह को (जो मूलतः प्रकाट्य में जगत सहित ही थी) अपने ही जगत से अलग-थलग ही नहीं किया, बल्कि विरोधी, प्रतिरोधी, अनुरोधी और असहयोगी बना दिया। वहाँ समन्वय और सन्तुलन अस्तव्यस्त हो गया। सिर का धड़ पर कोई नियन्त्रण नहीं रहा। जिस प्रकार देह में अधरंग, लकवा या पैरालिसिस होने पर देह के अंगों का सन्तुलन अस्तव्यस्त हो जाता है, उसी प्रकार सिर होते हुए भी जीव बेसिर का होते हुए पशुवत् जीवन-दर-जीवन बिताने लगा।

नाम के कारण देह का निर्धारण हो गया और इस निराधार निर्धारण में देह के साथ जो जगत है, जो जगत था और जो होगा उसे मानव ने पृथक्

मान लिया। जीव, देह सहित जगत के प्रकाट्य में अपनी ही समष्टि से कट गया। जगत में जो उसके होने से थे, हैं और होंगे, उनमें ही किसी से लगाव, किसी से अलगाव, किसी से अपेक्षा, किसी की उपेक्षा, किसी से वैर-शत्रुता, स्पर्धा, राग-द्वेष, वैमनस्य, ईर्ष्या आदि के मायाजाल में जीव उलझ गया। जो इसके कुछ नहीं लगते, वे भी इसके होने से हैं। जो इसके कुछ लगते हैं, वे इसकी **'मैं'** की वजह से हैं। जगत में अन्य मेरी **'मैं'** में होते हैं, तो मेरे लिए होते हैं। जो होते हैं और मेरे कुछ नहीं लगते, वे भी मेरे होने से होते हैं। जो मेरे कुछ लगते हैं या नहीं लगते हैं, उनका होना मेरी **'मैं'** की वजह से होता है। मेरी **'मैं'** चेतना है, जिसके बिना नाम और जगत की कोई भी विधा प्रमाणित व सक्रिय नहीं होती। अतः मेरी **'मैं'** सबकी है और सबकी **'मैं'** एक ही है, जिसका प्रकाट्य मेरी देह की चेतना में होने पर होता है। यह **'मैं'** की सर्वव्यापकता है।

इसी प्रकार मेरे साथ जो मेरा जगत है, था या होगा उसमें मेरा या किसी का **'नाम'** महत्त्वपूर्ण नहीं है, मेरी **'मैं'** महत्त्वपूर्ण है। मेरा होना ही जगत का होना है। 'मैं हूँ' यह '**अस्ति**' तत्त्व ही समस्त था, थे, थी और गा, गे, गी का आधार है। लेकिन जो जगत मेरे साथ मेरी **'मैं'** की वजह से है, वह मेरे **'नाम'** के कारण मुझसे पृथक् हो गया। मेरा **'नाम' 'मैं'** ही बन गया। किसी से पूछो आपका नाम क्या है? कि **'गिरधारी'** और आप कौन हैं, कि **'गिरधारी'**। मेरा नाम भी गिरधारी है और मैं भी गिरधारी हूँ। मैं ही गिरधारी हूँ, मैं गिरधारी ही हूँ। जो **'नाम'** गिरधारी है, वह सरल व सहज नाम है और जो व्यक्ति स्वयं में गिरधारी बन गया, वह नाम Complex है। सारे Inferiority और Superiority Complexes का मूल यह नाम Complex है।

जहाँ **'मैं नाम'** बन गया, वहाँ दैवीय अधिनियमानुसार जीव महाकाल की 1008 धाराओं के अन्तर्गत सज़ाएँ भुगतने लगा। यहाँ जीव को 'मैं देह हूँ' और 'अमुक-अमुक मेरा नाम है' इस सन्देह का भी ज्ञान नहीं हो पाता। इसलिए अपने दुःखों का कारण इसे अज्ञात ही रहता है। देह अलग है, नाम

अलग है। लेकिन जन्मों-जन्मान्तरों से देह की **'नाम'** के साथ गाँठ पड़ी हुई है। यही सामान्य लगता है, क्योंकि गाँठ खुली हुई कभी देखी ही नहीं। **'मैं'** जब भी प्रकट हुई, इस गाँठ से गुण्ठित ही रही। आत्मतत्त्व का प्रतिनिधि और आनन्द मानस का द्योतक शब्द **'मैं'** जीवकोटि में कोटि-कोटि जीवों की जीव-सृष्टि में स्वयं को देखने की चाहत में बिखरता, बिफरता, बिसरता और छितरता ही चला गया। कोटि-कोटि जन्म-जन्मान्तरों और युगों-युगान्तरों में मुझे 'मैं देह हूँ' इस सन्देह में निःसन्देह सन्देह का भी ज्ञान ही नहीं रहा। मैं इस सन्देह में इतना मदान्ध हुआ, कि **'मैं'** (आत्मतत्त्व) आच्छादित हुआ, मानव-देह आच्छादित हुई और इतनी आच्छादित हुई, कि सन्देह का भी ज्ञान नहीं रहा।

ईश्वरीय संरचनाओं की सर्वोत्कृष्ट सुकृति मानव-देह पाकर मानव ही इस सृष्टि में सबसे अधिक दुःखी, त्रसित, भयभीत, वैर-वैमनस्य, ईर्ष्या-द्वेष, स्पर्धा, आधि-व्याधि-उपाधि से ग्रसित प्राणी है। सद्गुरु कहता है, कि "तेरे होने से जगत है और तेरा जगत समय-समय पर वैसा ही है जैसा तू समय-समय पर है। तू जगत का प्रतिनिधि उसी प्रकार है, जैसे सिर के होने से देह होती है। देह में देह का प्रतिनिधि **'सिर'** है। जिस समय तेरे सिर में जैसा सिर होगा, वैसी देह होगी। यदि तेरा सिर अस्थाई तौर पर खराब हो गया, तो तेरी देह को भुगतना पड़ेगा। अपने स्व सहित सर्व पर अधिकार के लिए तुझे देह का वह तत्त्व अधिगृहीत करना होगा, जो सबका एक ही है, था और होगा। वह तत्त्व **'भसम'** है, जो पंच-महाभूतों से अतीत तत्त्वातीत तत्त्व है। देह के रहते यह तत्त्व अदृश्य विरक्ति रूप में रहता है और जब प्रकट होता है, तो देह स्वयं में अदृश्य हो जाती है। दृश्यमान देह के रहते देह की भस्मी से आत्मसात् होने के लिए देह का अवलम्बन लेने पर वह देह अविलम्ब **'मैं'** (जीवात्मा) पर अवलम्बित हो जाती है और वह नाम किसी व्यक्ति देह का नाम न होकर ईश्वरीय व पूजनीय हो जाता है। क्योंकि उसकी भस्मी का नामकरण प्रकरण हो चुकता है।" कृपया एकाग्र करिए, मैं सविस्तार वर्णन करूँगा।

नाम-रूप की देह से स्वयं को पहचानते ही हमारा मानस एक मानसिकता बन जाता है। उस मानसिकता में प्रत्येक मानव प्राप्तियों के पीछे भागने लगता है। जो पदार्थ स्वतः समय-समय पर लब्ध होने हैं, उन्हें कर्ताभाव में उपलब्ध करने लगता है। देह धारणा हम सबको हो चुकी है। इस धारणा में देह के साथ नाम-रूप में तद्‌रूपतावश जीव देह में विभिन्न भविष्यों के लिए भटकता है। इसके समस्त भविष्य रूपवान एवं साकार होते हैं। देह व जीवन में भविष्यों की यह चाहत इसे अधःपतन और निरर्थ, व्यर्थ एवं अनर्थ में भटकाती है। भविष्य के लिए कोई भी चाहत, वस्तुतः एक स्थिति है। जिसे हम भविष्य कहते हैं, उस स्थिति को हम मानसिक रूप से अपने वर्तमान में ढो लेते हैं। अभी वह स्थिति हमने भौतिक रूप से प्राप्त नहीं की, लेकिन मानसिक रूप से प्राप्ति की कल्पना कर ली। वह मानसिक प्राप्ति हमें किसी न किसी प्रकार से और सब प्रकार से उसकी भौतिक प्राप्ति के लिए भटकाती रहती है। प्राप्ति की अनिश्चितता के कारण हमें भविष्य की चिन्ता बनी रहती है। कभी हमें कुछ मिलता है, कभी नहीं मिलता। कभी भी हमारी चाहत के अनुरूप प्राप्ति नहीं होती, यदि होती भी है, तो मिलने के बाद की मानसिक स्थिति का अनुमान हम नहीं लगा सकते। जीवन में समस्त भविष्य इसी प्रकार के हैं। जो भविष्य मिल जाता है, उसके आगे और भविष्य खड़े हो जाते हैं। मानव का यह सहज स्वभाव है।

देह मे जो भविष्य हम पाना चाहते हैं, वे विशेष-विशेष होते हैं। क्योंकि हम अपने विशेषों एवं विशेषताओं से सन्तुष्ट नहीं होते और विशेष-विशेष (V.V.I.P) होना या बनना चाहते हैं। मानव-देह का एक निश्चित भविष्य है, जो सामने है और सबको विदित है। देह का अन्त मृत्यु, शव या देहान्त है। इसका अन्त (देहान्तान्त) मृतक व्यक्ति देह (शव) का चिता की अग्नि में जलते हुए पंच-महाभूतों में विलय होना है। यह देह का अन्तान्त (देहान्तान्त) है और इसके अन्त (देहान्तान्तान्त) में एक तत्त्वातीत तत्त्व पूर्णतः प्रकट होता है, जिसे **'भस्मी'** कहते हैं। **'मृत्यु' 'उपसंहार'** है और शव का चिता की अग्नि में जलना **'संहार'** है और पूर्ण भस्मी का प्राकट्य संहारान्त है। मृत्यु

किसी भी कारणवश हो सकती है। मृत्यु कोई प्रक्रिया नहीं है, क्योंकि हर कोई जीते जी मरता है। शव का **'अग्नि दहन संस्कार'** संहार प्रक्रिया है, जिसमें देह के पंच-महाभूतों में विलय होने के दौरान प्रकरण और प्राकट्य साथ-साथ होता है। देह का दहन उसकी भस्मी बनाने के लिए नहीं किया जाता, लेकिन दहन होते समय साथ-साथ भस्मी स्वतः प्रकट होती है। यह साकार देह का अन्तिम संस्कार है, क्योंकि इसके बाद साकार देह की सीमा समाप्त हो जाती है।

जन्म लेते हुए किसी देह के साथ नाम नहीं आता। सर्वप्रथम संस्कार **'नामकरण संस्कार'** है और अन्न प्राशन, जनेउ, मुण्डन, विवाह आदि षोड्श संस्कारों में अन्ततः अन्तिम संस्कार साकार देह के शव को मुखाग्नि देकर होता है। इसमें दहन और विलय दोनों प्रक्रियाएँ साथ-साथ स्वतः चलती हैं। जैसे-जैसे देह अग्नि द्वारा, अग्नि सहित पंच-महाभूतों में विलय होती जाती है, वैसे-वैसे साथ-साथ स्वतः और अग्नि की प्रचण्डता, तीक्ष्णता व न्यूनता के अनुसार अदृश्य रूप से भस्मी प्रकट होती रहती है। देह के पंच-महाभूतों में पूर्णतः विलय होने पर पूर्णतः भस्मी ही रह जाती है। देह का दहन होते हुए विलय होना प्रकरण था और 'भसम' प्राकट्य है। इस पदार्थ का पंच-तत्त्वों की मानव-देह व चराचर जगत की किसी विधा से कोई सम्बन्ध नहीं है।

मानव-देह का एक ही परिदृश्य ऐसा है, जिसमें प्रकरण और प्राकट्य साथ-साथ चलते हैं। देह में जितने भविष्य हैं, हम उनकी प्राप्ति के लिए प्रकरण करते हैं और फिर भी प्राप्ति सुनिश्चित नहीं है। हो भी, तो हमारे द्वारा किए प्रकरणों के तदनुसार हो, यह भी आवश्यक नहीं है। देह में सारे भविष्य कुछ करने से ही प्राप्त नहीं होते, बहुतों को बिना कुछ किए भी बहुत कुछ मिल जाता है। कई लोग कर-कर के और प्राप्त करके गवाँ देते हैं। जीवन में और देह में कोई ऐसा भविष्य नहीं है, जो निश्चित, परिलक्षित और दर्शित हो और पूरा होकर आगे भविष्य न खड़ा करे। अतः देह का भविष्य जो निश्चित है और प्रत्यक्ष दृष्टिगत है, उस भस्मी की नित्य 4 – 5 मिनट अवधारणा करें, कि भस्मी तो बनना ही है। अतः मैं भस्मी बन गया हूँ। भस्मी

की अवधारणा से देह पर अनधिकृत कब्ज़ा धीरे-धीरे समाप्त हो जाएगा। प्रत्येक मानव का यह एकमात्र निजी व्यक्तिगत कर्म है, जो मात्र कृपा साध्य है। शेष कर्म तो स्वतः हो रहे हैं और होते रहेंगे।

किसी पुरानी बिल्डिंग के अवशेष जगह-जगह से खण्डित होते हैं इसलिए उन अवशेषों को उस बिल्डिंग के खण्डहर कहा जाता है। कोई भी मानव-देह, चाहे वह भिखारी की हो, चाहे राजा-महाराजा की हो, उसके दो विशेष होते हैं। एक तो उसका विशेष नाम होता है, दूसरे उसकी अन्य विशेषताएँ होती हैं। उदाहरणतः एक भिखारी है, उसका **'अमुक'** नाम है। वह एक **व्यक्ति विशेष** है और अपने दूसरे विशेषों में वह भिखारी है, भीख माँगने की उसकी शैली है। उसका रहन-सहन, बोल-चाल, गुण-अवगुण, पारिवारिक, आर्थिक, सामाजिक स्तर, विचारधारा आदि उस व्यक्ति विशेष की अन्य दूसरी विशेषताएँ हैं। अतः अकेला एक नाम एक व्यक्ति का एक विशेष है तथा अन्य समस्त ज्ञात-अज्ञात विशेषताओं सहित वह सम्पूर्ण व्यक्ति दूसरे वर्ग विशेष में होता है। सुषुप्त, विस्मृत, मूर्च्छित, मृतक भी जब तक साकार देह है—ये दोनों विशेष प्रत्येक मानव-देह के होते हैं। भस्मी प्रत्येक देह का निश्चित, परिलक्षित, दर्शित भविष्य है। यह **'भस्मी' अविशेष** है। जिस व्यक्ति विशेष की देह का पंच-महाभूतों में विलय हुआ, उसमें दो विशेष थे। एक उसका **'नाम'** दूसरे अन्य विशेषताएँ। पूर्ण भस्मी प्रकट होने पर उसके दोनों विशेष नहीं रहते।

सद्‌गुरु कहता है, कि "यदि मानव-देह होते हुए तू देह तक ही सीमित रहा और देह के रहते देहातीत नहीं गया, तो तू मानव-देह के रसास्वादन करने योग्य नहीं है। पहले विचार कर ले, कि देह मात्र देह में ही विचरने के लिए नहीं है, क्योंकि देह तेरी नहीं है। तुझे अस्थाई तौर पर मिली है और कभी भी छीन ली जाएगी। तू मानव-देह की संहार प्रक्रिया को जीते जी एकाग्रता से ध्यान द्वारा अनुभव कर। जब तू देह के रहते देह के अदृश्य होने पर दृश्यमान **'भसम'** से ध्यान में आत्मसात् होगा और उस देहातीत क्षेत्र में विचरेगा, तो देह तुझे स्वतः विचार करवाएगी, कि तेरा और देह का सम्बन्ध

क्या है?'' जब मानसिक रूप से योगी यह प्रकरण करता है, तो वहाँ उसकी आनन्दमय एवं अभावमय ईश्वरीय मानस में प्रविष्टि व स्थिति हो जाती है। समस्त तुच्छ मानसिकताएँ समाप्त हो जाती हैं।

देह से देहातीत जाने के लिए देह का यथार्थ होना आवश्यक है। जैसे Long Jump अथवा high Jump लेने के लिए खिलाड़ी दूर से भागता हुआ निमिष मात्र के लिए ठहर कर फिर Jump लेता है। यह ठहराव ऊर्जा से भरपूर होता है। जिसका सदुपयोग किया जाता है। देहातीत जाने के लिए ध्यान में देह का सदुपयोग देह के मानसिक दहन के लिए किया, तो देह यथार्थ हो जाती है। देह द्वारा देहातीत जाने के मानसिक प्रकरण के लिए जब देह तैयार हो जाती है, तो वह देह यथार्थ ही होती है। भस्मी देहातीत है और देह का अर्थ है। साधक अपनी देह के रहते देह की भस्मी से आत्मसात् होने के लिए देह का अवलम्बन लेता है और देह आत्मविभोर होती हुई अविलम्ब साधक पर अवलम्बित हो जाती है। ध्यान में देह दहन में जितनी एकाग्रता और ऊर्जा लगी, उसका लक्ष्य भस्मी रूप में विरक्ति का प्रकाट्य है। **देह के मानसिक दहन प्रकरण में, प्रकाट्य में भस्मी नहीं होती, बल्कि भस्मी-दर्शन की अनुभूतियाँ होती हैं।** जैसे अन्य मानव-देहों की संहार प्रक्रिया हुई, वैसे ही मेरी देह की भी होगी और अवश्य होगी। जिन अन्य देहों की संहार प्रक्रिया हुई, उन विशेष-विशेष देहों ने नहीं देखी। वह नहीं देख पाए, कि संहार प्रक्रिया में पंच-महाभूतों की देह पंच-महाभूतों में जैसे विलय होती जाती है, वैसे-वैसे **'भसम'** नामक पदार्थ प्रकट होता जाता है। **'भसम'** पांचों तत्त्वों से अतीत तत्त्वातीत तत्त्व है और निर्माण, पालन और उपसंहार (मृत्यु) के समय तक यह तत्त्व अदृश्य विरक्ति रूप से रहता है। साधक ध्यान में अपनी देह के मानसिक संहार प्रकरण के एवज में प्रकट **'भसम'** से आत्मसात् होता है। यह पदार्थ **'भसम'** जलने से प्रभावित नहीं होता, यद्यपि इसका प्रकाट्य देह के दहन के साथ-साथ स्वतः और जलने की प्रचण्डता के तदनुसार होता है। इस भाव प्रकरण में भस्मी-दर्शन प्रारम्भ हो जाता है और विभूत्यातीत विभूति (विरक्ति) जाग्रत हो जाती है।

देह के पूर्णतः विलय होते हुए अदृश्य होने पर जो पूर्ण **भसम'** दृश्यमान होती है, वह **'अविशेष'** है। यह पदार्थ अखण्ड है, क्योंकि अविशेष है। किसी भी और प्रत्येक विशेष-विशेष मानव-देह का निश्चित, परिलक्षित, दर्शित भविष्य भसम है। चिता की अग्नि में पूर्णतः दहन होने पर भी **'नाम'** अवशेष रह जाता है। **'नाम'** देह के साथ आया नहीं था, ऊपर से रखा गया था। **'भसम'** शेष नहीं अविशेष और अखण्ड है। देह के बाद, देह का कुछ नहीं रहता। लेकिन **'अवशेष' नाम** किसी बिल्डिंग के खण्डहरों की भाँति रहता है। देह का एक ही खण्डहर बचता है, जोकि उसका नाम है। अतः नाम देह रहित ऐसा अवशेष है, जो स्वयं में विशेष+अवशेष=विशेषावशेष है। **'अवशेष'** नाम एक व्यक्ति विशेष का है और **'भसम'** पदार्थ **'अविशेष'** है, जो सबका है और एक ही और एक ही जैसा है। जीते जी नाम का भस्मीकरण प्रकरण मात्र सद्गुरु ही करवाएगा। इस प्रकरण की प्रेरणा एवं विचार भी वही देगा और इसकी सिद्धि की पुष्टि, प्रामाणिकता एवं सत्यापन भी वही करेगा। देह के रहते जब देह धारणा पर उसकी **'भसम'** (जो अखण्ड है) की अवधारणा होगी, तो अवशेष नाम को इस अविशेष (भसम) की अवधारणा का आधार मिल जाएगा।

देह विशेष (नाम) और विशेष देह (अन्य विशेष) दोनों का आधार **'नाम'** ही था। जो भी नाम रखा था, उस नाम ने देह को और उसकी समस्त धारणाओं एवं विशेषताओं को धारण कर लिया था। अतः वह व्यक्ति स्वयं में वह नाम ही बन गया था। जो भी विशेष उस व्यक्ति के थे, वे उस नाम के हो गए थे। अविशेष में दोनों विशेष–व्यक्ति विशेष (नाम) और अन्य विशेष जो उसके नाम के ही थे, नहीं रहते। अतः **'अवशेष'** नाम रूपी खण्डहर को **'अविशेष'** भसम रूपी अखण्ड तत्त्व की अवधारणा का आधार मिल जाता है। सद्गुरु के सद् निर्देशन व कृपा से मैं अपनी देह का तनिक अवलम्बन लेकर देह के निश्चित, परिलक्षित व दर्शित भविष्य **'भस्मी'** से आत्मसात् हुआ, तो वहाँ नाम मेरा ही रहा, लेकिन **'मैं'** उस नाम में स्वयं में अनाम और अरूप हो गया। क्योंकि भस्मी देह की वह सुनिश्चित, परिलक्षित व दर्शित

देहातीत अवस्था है, जो **'मैं'** की तरह स्वयं में सबकी एक ही है।

देह भाव के विभिन्न सुख-दुःखमय आभासों में **'मैं भस्मी हूँ'** यह आनन्दमय एवं अभावमय आभास आते ही वह नाम, अनाम-नाम हो जाता है। सद्‌गुरु कहता है, कि ''एक देह के **'अवशेष'** **'नाम'** को मानस एकाग्रता द्वारा **'अविशेष'** **'भसम'** पर प्रस्थापित कर दे, तो वह **'नाम'** भसम की तरह सबका हो जाएगा। जब तेरा नाम अखण्ड के साथ लग जाएगा, उसी समय वह नाम ईश्वरीय हो जाएगा।'' यह समस्त प्रकरण मात्र कृपा साध्य है। यहीं से अमरत्व एवं शिवत्व का रहस्य खुलने लगता है।

''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(13 फरवरी एवं 9 से 19 मार्च 2011)

पर्दा

पथ्वी और सूर्य के बीच जब चन्द्रमा आ जाता है, तो वह सूर्य के प्रकाश को ढक लेता है। पृथ्वी और चन्द्रमा में अपना स्वयं का प्रकाश नहीं है, दोनों सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित होते हैं। एक प्रकाशित (सूर्य) और एक अप्रकाशित (पृथ्वी) के मध्य जब दूसरा अप्रकाशित (चन्द्रमा) आ जाता है, तो वह उस प्रकाशित (सूर्य) के प्रकाश को ढक लेता है। वहाँ एक अप्रत्याशित घटना घटती है, जिसे हम संसारी लोग **सूर्य-ग्रहण** कहते हैं। सूर्य सतत् दैदीप्यमान प्रकाश पुंज है। ईश्वरत्व स्वयं में प्रकाशवान प्रकाश पुंज है और जीवात्मा (दृष्टा) भी ऐसा ही है। लेकिन दोनों के मध्य जब जीव भाव (मैं देह हूँ) का पर्दा या आवरण आ जाता है, तो ग्रहण की भाषा में **'जीव'** को **'ईश्वर ग्रहण'** लग जाता है। जीव भाव अथवा देहभाव का यह आवरण आत्म-तत्त्व के प्रकाश को ढक कर उसकी चमक को धूमिल कर देता है। इस ग्रास से मानव-देह यथार्थ से अन्यार्थ हो जाती है और जीवात्मा, जीव-कोटि में उतर कर चेतना से अवचेतना में भटकता है।

परमात्मा और जीवात्मा एक ही ब्रह्मात्मा की दो अभिन्न विधाएँ हैं तथा दोनों प्रकाश पुंज हैं। दो प्रकाश पुंजों के मध्य एक जीव भाव आने से ईश्वर, जीवात्मा और मानव-देह तीनों आवृत हो जाते हैं। एक देहभाव (मैं देह हूँ) के हटने से तीनों का आवरण या ग्रहण हट जाता है। जीवात्मा के प्रतिनिधि **'मैं'** शब्द के प्राकट्य के लिए एक मानव-देह का जाग्रत होना आवश्यक है और देह व जगत के होने के प्रमाण के लिए **'मैं'** शब्द का प्राकट्य आवश्यक है। इसके लिए देह की अवचेतना में चेतना के न्यूनतम से अधिकतम कोई

भी स्तर हो सकता है। एक **'मैं'** लगेगी तो एक के लिए अनेक होंगे।

'मैं' प्रकाट्य में **'स देह'** है। जीवात्मा कभी देह के साथ तदरूप नहीं होता, लेकिन एक जीवित एवं जाग्रत मानव-देह के सान्निध्य में उसका प्रतिनिधि **'मैं'** शब्द प्रकट हुआ और **'मैं'** द्वारा देह सहित जगत का होना प्रमाणित हुआ। यहाँ 'मैं देह हूँ' के भ्रम में जीवात्मा का द्योतक एवं प्रतिनिधि **'मैं'** शब्द देह के साथ नाम-रूप में तद्रूप हो गया। जीव-सृष्टि की समस्त भटकन इस अज्ञान (मैं देह हूँ) की अनभिज्ञता में है। इस **अज्ञान** का नाम **'सन्देह'** है। सन्देह स्वयं में शास्त्रीय शब्द है, इसका अर्थ शक, संशय या Doubt नहीं है बल्कि ''मैं देह ही हूँ'' इस अज्ञान (संदेह) में जीव की हर सोच-असोच शंकामयी, संशयपूर्ण व 'In doubts' होती है, हर कृत्य-अकृत्य 'Doubtful' एवं हर पाना-खोना या बनना-बनाना 'Full of doubts' ही होता है। ईश्वर अंश जब जीव बनकर कोटि-कोटि जीवों की जीव-सृष्टि में उतरा, तो सृष्टि भी इसके अनुसार चली। जब यह 'मैं देह हूँ' के सन्देह से मुक्त हो जाता है, तो जगत भी तदनुसार प्रकट होता है। क्योंकि दृष्टा जीवात्मा ही है। कोई राजकुमार स्मृति विभ्रम में अज्ञान की अज्ञानतावश और अन्यथा स्वयं को भूल जाए, तो भी मूलतः तो वह राजकुमार ही रहता है।

'मैं' शब्द प्रकट रूप में मानव-देह के जगत सहित होने का प्रमाण है। जिस प्रकार सिनेमा हॉल का सफेद पर्दा पहले से Recorded चलचित्र की प्रस्तुति को प्रस्तुत करता है, उसी प्रकार जीवात्मा के प्रतिनिधि **'मैं'** शब्द प्रकट होते ही देह सहित युगों-युगान्तरों के जगत का प्रदर्शन शुरू हो जाता है। इस Recorded चलचित्र में कहानी, आवाज़, विभिन्न आकार, चित्र सब कुछ समाहित रहता है। **चलचित्र की प्रस्तुति के लिए पर्दे को सम्पूर्णतः होते हुए भी अदृश्य होना पड़ता है। पर्दा अदृश्य नहीं होगा, तो चित्र व चलचित्र की प्रस्तुति नहीं होगी।** पर्दे पर फिल्म दिखाने के लिए सिनेमा हॉल में पीछे एक Projection Room होता है, जिसमें Projector लगे होते हैं, जिससे Recorded Reel की प्रस्तुति होती है तथा पर्दे पर प्रकाट्य होता है। पर्दे पर असंख्य आकार एवं आवाज़ें दृश्यमान होती हुई प्रकट हो जाती

हैं। Reel की प्रस्तुति या Projection में कोई निराकार पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश तथा साकार प्रकार नहीं होते, लेकिन पर्दे पर प्रकट होते ही सब निराकार-साकार अनेक प्रकारों व आकृतियों में दृश्यमान हो जाते हैं। पर्दा उन स्थितियों और परिस्थितियों को भी प्रकट करता है, जिनमें Reel की Recording हुई।

प्रस्तुति को ज्यूं का त्यूं प्रकट करते हुए दिखाना पर्दे द्वारा, पर्दे पर होता है। प्रकाट्य में बहुत सी गतियाँ और विभिन्न भावाभिव्यक्तियाँ होती हैं तथा पर्दा अप्रभावित रहते हुए टस से मस नहीं होता एवं अदृश्य हो जाता है। प्रकट गतियाँ और अभिव्यक्तियाँ पहले से ही Recorded होती हैं। फिल्म का अन्त, समाप्त और समाप्त का समाप्त जब हो जाता है, तो फिल्म की प्रस्तुति नहीं होती; इसलिए पर्दा दृश्यमान हो जाता है। मध्य में जब पर्दा अदृश्य हुआ, तो जो कुछ दृश्यमान होता है वह पर्दे के कारण, पर्दे पर और पर्दे के लिए तदनुसार होता है। वह स्रष्टा अपनी सृष्टि की चाहे जितनी Projection अथवा प्रस्तुति कर ले, जब तक पर्दा उस प्रस्तुति को दृश्यमान करने के लिए तैयार नहीं होगा, तब तक कुछ भी प्रकट नहीं हो सकता। **यह पर्दा प्रस्तुता अथवा प्रसूता है।** इस जगत जननी माँ भवानी ने सम्पूर्ण जगत को अपने गर्भ में समेटा हुआ है। समय-समय पर प्रकट करती है और फिर अपने गर्भ में समा लेती है। वह जगत जननी एक मानव-देह को प्रकट करती है और सम्पूर्ण जगत साथ ही प्रकट हो जाता है। देह सहित जगत को डिज़ाइन करने वाली यह प्रसूता, विरक्त **'शिव'** की आसक्ति आद्याशक्ति माँ भवानी है।

शिव विरक्ति की अमूर्त-मूर्ति है। उसकी आद्याशक्ति माँ भवानी की इच्छा से उस महाविरक्त मानस में एक प्रेरणा उठती है, कि 'एकोऽहम् बहुस्याम्।' शिव से शक्ति का प्रकाट्य होता है और पंच-प्राणों से पंच-महाभूतों की समस्त निराकार-साकार सृष्टि प्रकट होती है। पंच-महाभूतों की समस्त चराचर सृष्टि निर्माण, पालन एवं संहार तीन विधाओं में प्रकट मायिक प्रदर्शन है। संसार रूपी इस सुकृति में निर्माण व

पालन शिव की इच्छाशक्ति द्वारा होता है, लेकिन संहार शिव स्वयं करता है। यह अद्वैत में द्वैत सा है।

पंच-महाभूतों को संचालित करने वाली शक्ति अदृश्य विरक्ति ही है। शिव में शक्ति समाहित है। शिव, शक्ति युक्त है। शिव में छोटी **'इ'** शक्ति का बीज है। शिव, शक्ति के बिना नहीं है। स्वयं में, स्वतः एवं स्वान्तः सुखाय शिव से शक्ति का प्रकाट्य होता है और अतिशक्ति और महाशक्ति दो पक्ष बन जाते हैं। अतिशक्ति स्वयं में विरक्ति है। इससे महाशक्ति रूप में पंच-प्राणों की अदृश्य ज्योति का प्रकाट्य होता है और दोनों अदृश्यों (अतिशक्ति विरक्ति और पंच-प्राणों की महाशक्ति) में स्वतः, स्वयं में और स्वान्तः सुखाय क्रीड़ा होती है। पंच-प्राणों की महाशक्ति का स्रोत अतिशक्ति विरक्ति है। यह अद्वैत में द्वैत सा, परमात्मा-जीवात्मा और व्यष्टि-समष्टि में भी अन्त तक चलता है। शिव-शक्ति-क्रीड़ा के आनन्द का प्रकाट्य पंच-महाभूतों के रूप में होता है। प्राण, अपान, समान, उदान एवं व्यान प्राण क्रमशः अग्नि, वायु, पृथ्वी एवं आकाश के रूप में प्रकट होते हैं। पंच-प्राणों की महाशक्ति का प्रकाट्य होने के कारण ये पंच-महाभूत स्वयं में महाशक्तिशाली हैं। लेकिन प्रभु ने विशिष्ट कृपा करके इन पंच-महाभूतों को सहज जड़ रखा है। इन्हें अपना, अपनी महाशक्ति और अपने स्रोत, ईश्वर किसी का कोई ज्ञान नहीं है। अतिशक्ति विरक्ति द्वारा इनका समस्त क्रियान्वयन, निर्माण, सम्पादन, प्रतिपादन, पालन, विलय, प्रलय आदि दशानन स्वरूपों में अदृश्य रूप से शिव द्वारा ही होता है।

निराकार पंचतत्त्वों को आद्याशक्ति ने असंख्य आकारों (रूपों) में मूर्तिमन्त किया। साकार में प्रकार हैं। साकार में सर्वोत्कृष्ट मूर्ति मानव-देह है। एक मानव-देह के साथ समय-समय का जगत, नाना रूपों एवं प्रकारों में है। प्रकार प्रकृतिगत हैं। **'प्रकृति'** स्वयं में **'प्रकार की रति'** है अर्थात् जिसे प्रकारों की रति हो, वह प्रकृति है। शिव की शक्ति आद्याशक्ति माँ भवानी है और **'प्रकृति'** उसकी **सहायिका** है, जो उसका ही स्वरूप है। माँ भवानी की विविधता में एक विधा उसकी प्रकृति है। पृथक्-पृथक् आकारों एवं प्रकारों के

निर्माण, पालन एवं संहार में प्रकृति सहायिका है। इस सबकी स्वामिनी माँ भवानी एवं स्वामी स्वयं शिव है। निर्माण, पालन और संहार का समस्त क्रियान्वयन शिव-शक्ति-क्रीड़ा रूप में ब्रह्मण्डातीत होता है और इस क्रीड़ा के आनन्द का दृश्यमान प्रकाट्य ब्रह्माण्ड में होता है।

दृश्यमान सृष्टि की सर्वोत्कृष्ट मूर्ति मानव-देह है। जो युगों-युगान्तरों के सम्पूर्ण निर्माण, पालन एवं संहार की प्रतिनिधि एवं संघनित स्वरूप है। मानव-देह का रोम-रोम ईश्वर द्वारा ही निर्मित, पालित, संचालित एवं संहारित है। इस मानव-देह के भीतर असंख्य एवं अगणित प्रकरण दशानन गतियों से सदा-सदा से चल रहे हैं और चलते रहेंगे। असंख्य महाब्रह्माण्ड देह के भीतर एवं देह के बाहर चल रहे हैं। इन गतियों का किसी को कोई ज्ञान नहीं है और इन सबका स्वामी ईश्वर ही है। ईश्वर द्वारा निर्मित मूर्ति मानव ने ईश्वर की ही प्रेरणा से अदृश्य ईश्वर को भी मूर्तिमन्त किया। एक ईश्वर द्वारा **निर्मित** मूर्ति (मानव-देह) है दूसरी ईश्वर द्वारा **'प्रेरित'** मूर्ति (भगवान का विग्रह) है, जिसे साधक साधना, भक्ति, उपासना एवं आर्तनाद द्वारा सिद्ध कर लेते हैं और इन सिद्ध मूर्तियों से विभिन्न शक्तियों को पाकर सृष्टि, स्रष्टा, दृष्टा और मानव-देह की रहस्यमय एवं अदृश्य विधाओं का दर्शन करते हैं।

शिव सत्यं शिवं सुन्दरं है। कोटि-कोटि ब्रह्माण्डों में युगों-युगान्तरों की सम्पूर्ण निराकार व साकार सृष्टि के प्रकाट्य में हर दृश्य **'सच्चिदानंद'** का प्रकाट्य है और सद्, चेतन एवं सुन्दर है। चेतन और आनन्द अदृश्य हैं और इनका समन्वय भी अदृश्य रहता है तथा **'सद्'** प्रकाट्य है। यह दृश्यमान चराचर जगत चेतन और आनन्द के होने का **'प्रमाण'** एवं दोनों के पूर्ण समन्वय का **'परिणाम'** है, इसलिए यह **'सद्'** जगत भी ईश्वर ही है। जगत रूप में यदि यह **'सद्'** प्रकाट्य न होता, तो हम मानव ईश्वर का अनुमान न लगा पाते। मानव में मान्यता की अथाह शक्ति है। कुछ भी मानना अथवा न मानना इसका सहज स्वभाव है। मानव अपनी मानसिकता के अनुसार **मान** सकता है, **मनवा** सकता है और **मना** सकता है।

दृश्यमान सृष्टि में जो कुछ तथाकथित असद्, असुन्दर व प्रतिकूल सा आभासित होता है वह सद्, सुन्दर और अनुकूल के रसास्वादन एवं मूल्यांकन के लिए है। शिव सब प्रकार से कल्याण है, उसके क्रोध, विरोध, अवरोध, प्रतिरोध, अनुरोध सबके पीछे मात्र कल्याण एवं हित का भाव है। **'अ'** उपसर्ग लगाने से शब्द विपरीतार्थक हो जाता है, जैसे ज्ञानी-अज्ञानी। यहाँ विरोध और अवरोध में विपरीतता नहीं है। शिव का अवरोध, विरोध की पुष्टि करता है, मानो विरोध करके अवरोध उत्पन्न कर दिया हो। विरोध का विपरीत शब्द **'अनु'** उपसर्ग से अनुरोध है। कृपया एकाग्र करिए।

सर्वोत्कृष्ट सुकृति मानव-देह के निर्माण से पहले और देह के दौरान ईश्वर की भी एक इच्छा थी, कि कोई उसका गुणगान, प्रशंसा एवं स्तुति करे। उसने इतनी सुन्दर संसार रंगशाला के निर्माण, पालन एवं संहार में अपनी बहुआयामी कलाओं का असंख्यामी प्रदर्शन किया है। समस्त प्राणी जगत में मात्र मानव और मानव मात्र ही ऐसा प्राणी है, जो उसकी कलाओं का दर्शन एवं स्वयं ईश्वर का दिग्दर्शन करते हुए उसकी वाह-वाह कर सकता है। महाचेतनामय बुद्धि एवं आनन्दमय विरक्त मन का प्रमाण एवं दोनों के पूर्ण समन्वय का सद् परिणाम मानव-देह है। यह मानव-देह समय-समय पर विभिन्न स्थितियों और माया की 84 लाख विधाओं अथवा मानसिकताओं के अनुसार प्रकट होती है और तदनुसार जगत प्रकट होता है।

अदृश्य स्रष्टा की बहुआयामी कलाओं का असंख्यामी प्रदर्शन यह युगों-युगान्तरों में विस्तृत साकार व निराकार दृश्यमान सृष्टि, एक अदृश्य दृष्टा (जीवात्मा) के लिए है। अदृश्य दृष्टा (जीवात्मा) की इच्छानुसार मानस रूपी शुभ्र स्क्रीन पर फिल्म की भाँति दृश्य उपस्थित होते हैं, उनमें निर्माण, पालन, संहार बहुत कुछ होता है। अन्ततः फिल्म समाप्त (अन्त) हो जाती है और समाप्त भी समाप्त (अन्तान्त) हो जाता है। फिल्म में बहुत मार-काट, प्रेम-घृणा, वैर, ईर्ष्या, द्वेष, सुख-दुःख होते हैं। लेकिन सफेद पर्दा ज्यों का त्यों रहता है। जीवात्मा आनन्दमय मानस रूपी सफेद पर्दा है

जिसके द्वारा पहले से ही Recorded दृश्यों की प्रस्तुति होती है। इस अदृश्य दृष्टा का एकमात्र प्रतिनिधित्व एक **'मैं'** शब्द करता है। **'मैं'** शब्द का कोई नाम नहीं है, कोई रूप नहीं है। समस्त प्रदर्शन के क्रियान्वयन एवं प्रकाट्य का प्रतिनिधित्व एक जाग्रत मानव-देह करती है। जब देह है, तो जगत सहित है। मानस में अदृश्य रूप से **'अप्रकट-प्रकट'** जगत ही अदृश्य मानसिकता है, जो दृश्यमान प्रकाट्य में देह सहित जगत की गुणात्मकता की द्योतक है।

जीवात्मा के लिए हर दिन नित नूतन है। **'मैं'** शब्द के प्रकट होने पर उस दिन की अदृश्य मानसिकता ही इसकी देह व जगत बनकर प्रकट होती है। **'यथार्थ'** मानव-देह Conceptual नहीं factual है और **'सद्'** प्रकाट्य है। **'अस्ति'** ही हमारी हस्ती है। Conceptual अथवा गर्भित एवं जन्म-मृत्यु के दो छोरों में बँधी मानव-देह 'मैं देह हूँ' सन्देह का प्रमाण एवं परिणाम है। इस सन्देह में प्रकट मानव देह व जगत चेतना का अपमान एवं अवमानना है। यथार्थ देह प्रकट होती है और जगत सहित, **सद्** होती है। **'सद्'** का दृष्टा भी सद् है। दृष्टव्य का साधन **'मानव-देह'** है। यह सद् होनी चाहिए। आत्म-चिन्तन, आत्म मनन का साधन मानव-देह है। इसका **'सद्'** जाने और माने बिना आत्म-चिन्तन रेत की बुनियाद पर खड़ी दीवार की भाँति है। यदि देह **'सद्'** नहीं होगी, तो प्रदर्शन प्रश्न बन जाएगा और रसास्वादन के स्थान पर फँसास्वादन होगा।

सद्गुरु कहता है, कि ''तूने होश सम्भालते ही बिना यह जाने, कि देह तेरी नहीं है, इस देह पर अनधिकृत कब्ज़ा कर लिया और अपनी इच्छाएँ प्रकट कीं। इतनी बड़ी देह जो तेरे ज्ञान के बिना, तेरे जगत सहित चला रहा है उसकी क्या इच्छा है, यह तूने न जाना और न जानना चाहा। तू यह जानता है, कि ईश्वर जब चाहे तुझसे देह छीन लेगा। यदि तेरी इच्छाओं की पूर्ति के लिए वह देह चला रहा होता, तो तेरी इच्छाएँ अधूरी क्यों रहतीं?'' प्रत्येक व्यक्ति होश सम्भालते ही इच्छाओं से भरा होता है और इच्छाओं को लेकर ही मरता है। मानव होते हुए भी इसमें विवेक जाग्रत नहीं होता, कि

कोई मुझे जीवित रख रहा है इसलिए मैं जीवित हूँ। देह धारणा और नाम-रूप में निर्धारणा की जकड़न में जीव काल, कर्म व प्रारब्ध के वशीभूत हो जाता है। निर्धारणा पर असंख्य निर्धारणाएँ जीव को कुकरमुत्तों की तरह घेर लेती हैं। भ्रमवश जीव इन निर्धारणाओं से छूटने के लिए असंख्य निर्धारणाएँ करता है। ये निर्धारणाएँ ही असंख्य अवस्थाएँ हैं, जो विभिन्न मानसिकताओं द्वारा इसकी मानसिकता को प्रभावित करती रहती हैं। यही इसका जीवन **सा** है। जीव, उस जगत में कुछ न कुछ बनना और करना चाहता है, जो इसकी ही मानसिकता से प्रकट होता है और लय हो जाता है। **'बाहर'** बहुत कुछ पाकर भी असन्तुष्ट और आसक्त ही रहता है।

परमात्मा अदृश्य है और जीवात्मा भी अदृश्य है। भक्तों की विह्वलता, पुकार, वेदना, आर्तनाद पर वह अदृश्य, दृश्यमान हो जाता है। अवतरण लेता है, लेकिन वह अदृश्य कभी भी दृश्य के साथ तद्रूप नहीं होता। आत्मतत्त्व (जीवात्मा) भी अदृश्य है, वह दृश्यमान देह के साथ भ्रमवश तद्रूप सा हो गया और मानव ने देह के **'नाम'** के साथ **'तदनामता'** कर ली। **'नाम'** कोई जीव साथ लेकर पैदा नहीं होता। **'नाम'** मानवों द्वारा उसके रूप और उसकी देह को निर्धारित करने के लिए रखा जाता है। **'नाम'** देह के साथ आता नहीं, इसलिए मृत्योपरान्त देह के भस्मी बनकर पंच-महाभूतों में विलीन होने पर भी **'नाम'** अवशेष रह जाता है। **'नाम'** का अपना कोई नाम, अपना कोई रूप नहीं है। जो रखा जाता है, वह नाम कहलाता है। उस नाम से देह **'तद्नाम'** हो गई और वह **'नाम'** ही देह बन गया। देह के साथ तद्रूप हुआ जीव तद्नामता के कारण जन्मों-जन्मान्तरों के मिथ्या काल-चक्र में धक्के खाने पर विवश हो गया।

सद्गुरु कहता है, कि ''अवचेतना में देह और जगत है तथा देह और जगत अवचेतना में ही है। अतः अवचेतना का प्रकाट्य देह और जगत के रूप में दर्शित होता है, लेकिन अवचेतना अदृश्य रहती है। देह का निर्माण तेरे लिए अदृश्य रूप से हुआ और देह का संहार तथा पंच-महाभूतों में विलय भी तेरे लिए अदृश्य रहेगा। मध्य में तू होश कर, कि जो इसे चला रहा है

और सम्पूर्ण प्रकृति की असंख्य विधाओं को तेरे लिए नित नूतन स्वरूपों में रचता है, उसकी भी तो कोई इच्छा होगी। समस्त जलचर, थलचर, नभचर यह जान ही नहीं सकते। अतः उनका जीवन देह के लिए (देहार्थ) ही बीतता है। तू मानव है, यद्यपि तू स्वयं जान नहीं सकता, लेकिन तू जानने की इच्छा तो कर, वह तेरे सम्मुख सद्गुरु के रूप में जनवाने के लिए प्रकट हो जाएगा।''

सम्पूर्ण कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों की साकार सृष्टि में अपनी देह व साकार जगत की असंख्य विधाओं सहित जो कुछ भी हम सब देख, सुन, चख, सूंघ और स्पर्श कर रहे हैं; वह निराकार व अदृश्य आनन्दमय मानस रूपी पर्दे पर प्रकट मायिक खेल अथवा फिल्म है। **'मा न स'** को उलटा पढ़ें, तो **'स न मा'** पढ़ा जाता है। स्क्रीन पर फिल्म आती है बड़े-बड़े युद्ध, प्रेम, खून-खराबा, घृणा और बहुत कुछ होता है, लेकिन पर्दा फिल्म समाप्त होने पर ज्यूँ का त्यूँ रहता है। फिल्म की पहले से Recorded Reel है, जिसका रिकार्ड करने वाला और प्रस्तुत करने वाला दृश्यमान नहीं होता। यह संसार ब्रह्मात्मा के विरक्त एवं अभावमय मानस के 'एकोऽहम् बहुस्याम्' भाव का भावमय प्राकट्य है। विविध भाव साकार रूप लेते हैं। भाव मन के हैं, मन निराकार व अदृश्य है और स्वयं में भाव भी अदृश्य एवं निराकार ही होते हैं। भावाभिव्यक्ति ही साकार रूप लेती है, वे भाव चाहे हमें ज्ञात हों, चाहे अज्ञात हों। करोड़ों महाब्रह्माण्डों में जो पंच-महाभूत व्याप्त हैं उसमें जो कुछ भी निर्माण और पालन होता है अन्ततः उसका संहार अवश्यम्भावी है। संहार के बाद निर्माण और पालन हो, यह आवश्यक नहीं है, लेकिन निर्माण और पालन के बाद संहार अवश्य होगा।

किसी भी निर्माण, पालन का निश्चित परिलक्षित व दर्शित भविष्य संहार है। संहारान्त में मानस रूपी पर्दा किसी भी निर्माण, पालन एवं संहार से अप्रभावित ज्यूं का त्यूं स्वच्छ, शुभ्र रहता है। जो बना है वह मिट कर भस्मी अवश्य बनेगा, यह भस्मी निश्चित, परिलक्षित, दर्शित भविष्य है। **'भस्मी'** का स्वयं में न कोई अतीत है, न भविष्य। अतः उसका वर्तमान भी नहीं है। संहार ही

ईश्वरीय माया का श्रंगार है। **'भस्मी'** सम्पूर्ण कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों के संहार की प्रतिनिधि है। यह निराकार एवं दृश्यमान **'भस्मी'** साकार मायिक सृष्टि में **'शिव'** की अतिशक्ति विरक्ति का द्योतक है, जो निर्माण और पालन में अदृश्य रहती है और संहारान्त में ब्रह्माण्ड में दृश्यमान हो जाती है। कृपया एकाग्र करिए।

सिनेमा हॉल में जब हम प्रवेश करते हैं, तो बिजली की रोशनी से जगमगाता हॉल और सफेद पर्दा (स्क्रीन) हमारे सम्मुख होता है। हम अपनी-अपनी सीट पर बैठ कर फिल्म के शुरू होने की प्रतीक्षा करते हैं। पहले कुछ विज्ञापन अथवा ट्रेलर आदि चलते हैं और फिर मूल फिल्म शुरू होती है। फिल्म शुरू होती है, कुछ देर चलती है और समाप्त होती है। पर्दे पर समाप्त का द्योतक समाप्त या The End शब्द लिखा हुआ आ जाता है और फिर समाप्त भी समाप्त हो जाता है तथा वही रोशनी से जगमगाता हॉल एवं श्वेत पर्दा ज्यूं का त्यूं रह जाता है। जिन्होंने पूरी फिल्म देख ली, वो उठकर बाहर चले जाते हैं और सिनेमा की अगली प्रस्तुति देखने वाले अन्दर आने लगते हैं। मानव-जीवन में जब हम होश सम्भालते हैं, तो संसार रूपी सिनेमा हॉल में हमारे जीवन की फिल्म शुरू हो चुकी होती है। माँ के गर्भ में हमारी देह का निर्माण और जन्म होने के बाद होश सम्भालने तक पालन-पोषण के कई परिदृश्य हमारी जानकारी के बिना निकल चुके होते हैं। इसके बाद बहुत कुछ होता है और एक दिन देहान्त (मृत्यु) हो जाता है। देहान्त में मेरे लिए मेरे जीवन रूपी फिल्म का अन्त नहीं होता, क्योंकि **'मैं'** अपने जीवन में बहुत से भविष्यों की योजनाओं, परियोजनाओं में घिरा हुआ जीते जी, संसार रूपी सिनेमा हॉल में चलती हुई फिल्म के दौरान ही बाहर निकाल दिया जाता हूँ। मैंने जीवन रूपी फिल्म में वह **'सफेद पर्दा'** जिस पर पूरी फिल्म चली, देखा ही नहीं। क्योंकि चलती हुई फिल्म के दौरान सफेद पर्दा होता है, लेकिन अदृश्य रहता है। **पर्दे पर पूरी फिल्म चलती है और फिल्म ने पर्दे पर पर्दा डाल कर पर्दे के होते हुए भी मेरे लिए पर्दा अदृश्य कर दिया।**

फिल्म का सबसे नज़दीकी दृष्टा पर्दा है। यद्यपि फिल्म की प्रस्तुति पर्दे के बिना हो ही नहीं सकती फिर भी चलती फिल्म के दौरान इस दृष्टा का होना और अदृश्य होना आवश्यक है। यदि किसी कारणवश रील कट जाए अथवा अन्यथा किसी तकनीकी खराबी के कारण चलती फिल्म बीच में रुक जाए, तो देखने व दिखाने वालों को यह रुकावट बहुत बुरी लगती है। यह रुकावट कभी भी आ सकती है अथवा डाली जा सकती है, लेकिन कोई भी चलती फिल्म के दौरान पर्दा देखना नहीं चाहता। फिल्म में मध्यान्तर योजनाबद्ध होता है क्योंकि उसके बाद फिल्म जहाँ पर रुकी थी वहीं से फिर शुरू हो जाती है। हम सब जीते जी होश सम्भालते हैं, जीते जी जीते हैं और जीते जी मरते हैं। रात्रि की निद्रा हमारे लिए योजनाबद्ध मध्यान्तर की तरह होती है। क्योंकि निद्रा से उठकर हम पुनः उसी भाग-दौड़ में लग जाते हैं, जो छोड़कर हम निद्रा में गए थे। जीवन रूपी फिल्म को देखने के लिए जब मैंने आँख खोली, तो फिल्म चली चलाई थी, मैंने नहीं चलाई। चलती हुई फिल्म अचानक कभी भी समाप्त हो जाएगी। मध्य में जो कुछ मेरे द्वारा और मेरे लिए होता है वह भी स्वतः होता है। जो मुझसे करवाना है, करवा लिया जाता है। मैं जीते जी चलती फिल्म के ख्यालों में अचानक मर जाता हूँ, ऐसा जन्मों-जन्मान्तरों से होता रहा है।

जीवन रूपी फिल्म के चलते **'सब कुछ'** देखने के दौरान कोई **'कुछ नहीं'** या सफेद पर्दा देखना नहीं चाहता। मैं चलती फिल्म के ख्यालों में ही जन्मों-जन्मान्तरों से चल रहा हूँ। जो सफेद पर्दा बिल्कुल अप्रभावित रह कर फिल्म के दौरान भी अदृश्य रूप से रहता है, वह हमने कभी भी नहीं देखा और न देखना चाहा। विशुद्ध पर्दा स्वयं में अभावमय है उसे फिल्म और उसकी विविध भावमय प्रस्तुतियों से कुछ लेना-देना नहीं है। पर्दे पर सब कुछ होता है और पर्दे को कुछ नहीं होता। जो कुछ हुआ पर्दे पर ही हुआ। पर्दा न होता, तो कुछ न होता। जो हुआ वह ऐसा ही होना था, क्योंकि फिल्म की रील पहले से Recorded थी। हीरो तथा विभिन्न पात्रों की कब, कहाँ, कैसे प्रविष्टि होगी तथा जो-जो उनसे करवाया जाएगा वह पहले से ही रील

में Recorded होता है। यह श्वेत पर्दा ही मेरा आत्म-स्वरूप है। जिसने फिल्म के आरम्भ का आरम्भ और प्रारम्भारम्भारम्भ भी देखा, फिल्म के दौरान फिल्म देखी, फिल्म का अन्त, समाप्त, समाप्त का समाप्त और पुनः सफेद पर्दा **'ज्यूं का त्यूं'** रहा। मैं विशुद्ध आत्म स्वरूप (सफेद पर्दा) हूँ। मेरा होना ही फिल्म का होना है। मेरे बिना फिल्म नहीं है और मेरे अदृश्य हुए बिना फिल्म की प्रस्तुति नहीं है।

पर्दा अप्रकट होता है फिल्म प्रकट होती है। जो अप्रकट होता है वह चेतन और आनन्द है। सद्, चेतन और आनन्द का अविरल व अकाट्य संगम ही ईश्वर है। आनन्द और चेतन पारस्परिक समन्वय से जब चेतनानन्द हो जाते हैं, तो उस समन्वय का प्रकाट्य **'सद्'** रूप में दृश्यमान होता है। **'सद्'** का प्रकाट्य जब अदृश्य होता है, तो भी चेतन और आनन्द तो हैं ही। चेतन और आनन्द रूपी अदृश्य पर्दा पूरी फिल्म अर्थात देह सहित युगों-युगान्तरों के जगत के लिए है। कलाकारों, सुकृतियों एवं विकृतियों के लिए पर्दा (आत्मतत्त्व) एक ही है। घृणा, प्रेम, हीरो, हीरोइन, विलेन, विदूषक, खून-खराबा, आँधी, तूफान, सुनामी, मार-धाड़, प्यार, मुहब्बत सब उसी एक पर्दे पर होता है। पर्दा ही एकमात्र दृष्टा है, जो चलती फिल्म की सभी प्रस्तुतियों से अप्रभावित, स्थिर, अपरिवर्तनीय एवं अदृश्य रहते हुए हर परिवर्तनशील प्रस्तुति को प्रकट करते हुए दृश्यमान करता है।

सद्गुरु कहता है, कि ''हे दृष्टा जीवात्मा ! जो, जब, जहाँ, जैसा भी समय-समय और विभिन्न स्थितियों में तेरे जगत सहित, तेरे लिए होगा, वह चेतन और आनन्द के समन्वय रूपी पर्दे से और पर्दे पर सद् रूप में प्रकट होगा। क्योंकि उसकी सारी Recording परमात्मा ने की है।'' **आत्म-चिन्तन पर्दा-चिन्तन है।** पौराणिक कथाएँ, विभिन्न महापुरुषों की लीलाएँ वास्तव में चेतन और आनन्द रूपी पर्दे से, पर्दे पर प्रकट विभिन्न दृश्य हैं। उन कथाओं को जो आनन्द में पढ़ते व बोलते हैं, वे चेतन और आनन्द से जुड़ जाते हैं। परम सद्गुरु कृपा से देह के पंच-महाभूतों में विलय हो जाने पर प्रकट भस्मी रूप अविशेष पदार्थ से साधक जब जीते जी

आत्मसात् होता है, तब उसे समस्त आकारों व मूर्तियों के रहस्य का ज्ञान होता है। उसे विशेष अनिर्वचनीय संतृप्ति मिलती है। भस्मी तत्त्व देह के दौरान देहातीत है और विरक्ति रूप में माँ के गर्भ में गर्भाधान तथा शैशव से शव तक सम्पूर्ण देह के जगत सहित निर्माण, पालन एवं संहार का दृष्टा है। भटके हुए जीव बने जीवात्मा को इस तत्त्वातीत तत्त्व (भसम) में अपने जैसा (देशातीत, कालातीत, धर्मातीत, मायातीत, सम्बन्धातीत, लिंगातीत) कुछ मिल जाता है। उस '**अविशेष**' पदार्थ को वह शिव-शक्ति के चरणों में समर्पित करता है और प्रसाद रूप में उसे अपनी विरक्ति और पंच-प्राणों की दिव्य, अदृश्य एवं अखण्ड ज्योति का आधार मिल जाता है। अविशेष (भसम) पदार्थ जो स्वयं में न देह विशेष का है, न विशेष देह का है, उसी से देह विशेष और विशेष देह व देहें प्रकट होती हैं।

निर्माण, पालन व संहार तीनों खेल ब्रह्माण्ड में हैं। **'भस्मी'** देहातीत एवं मायातीत है, लेकिन ब्रह्मण्डातीत नहीं है। **'मैं'** ब्रह्मण्डातीत हूँ और **'भस्मी'** से आत्मसात् होने की इच्छा मात्र से **'मैं'** (जीवात्मा) का आत्मतत्त्व, देह का यथार्थ एवं ईश्वर का ईश्वरत्व अनाच्छादित होने लगते हैं। **'मैं'** और **'भस्मी'** में अद्वैत में द्वैत सा है। सम्पूर्ण कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों के समस्त निर्माण और पालन की प्रतिनिधि एक मानव-देह है तथा संहार की प्रतिनिधि उसकी एक **'भस्मी'** है।

जीव कोटि में देह के रहते निर्माण व पालन के दौरान बीच में चलते दृश्यों में **'हठपूर्वक'** रुकावट डालकर संहार (भस्मी) की अवधारणा करनी होगी, ताकि शिव की अतिशक्ति विरक्ति की प्रतिनिधि **'भस्मी'** जो निर्माण, पालन के दौरान अदृश्य रहती है, सक्रिय (विरक्ति) होकर जीव को देह व जगत के रहते उसके जीवात्मा-स्वरूप की झलक दिखा दे। यही **'समाधि'** है। यह प्रारब्ध रूपी चलती हुई **'फिल्म'** में सद्गुरु द्वारा निर्देशित Interruption है जो मात्र **'कृपा'** वश है। इस Interruption के बाद फिल्म वहाँ से नहीं चलेगी जहाँ से Interrupt हुई थी, बल्कि या तो उसी Episode का दिव्य रूपान्तरण होगा अथवा कोई आनन्दमय ईश्वरीय सृष्टि शुरू हो

जाएगी। यहाँ प्रारब्ध कट जाता है। अतः नित्य ध्यान, जाप व समाधि, जीवन को दिव्य बनाने के लिए किए गये प्रकरण हैं, जो सद्‌गुरु निर्देशन में सफल होते हैं।

जीवन-काल में जो अपनी देह से देहातीत हो जाता है, वह समस्त संरचनाओं, पालन एवं संहार से परे हो जाता है। न वह किसी का सृजन करता है, न पालन और न संहार करता है। सृजन, पालन और संहार ईश्वरीय महाप्रदर्शन (कोटि-कोटि ब्रह्माण्डों की युगों-युगान्तरों की दृश्यमान सृष्टि) की तीन विधाएँ हैं। इन तीनों विधाओं में **'संहार'** सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि **'संहार'** इस सृष्टि का **'श्रंगार'** है। अन्ततः व अन्ततोगत्वा अन्तान्तान्त में भस्मी रूप एक तत्त्वातीत तत्त्व **'पूर्ण'** अविशेष रूप में प्रकट होता है। यह प्रकाट्य पूर्णतः भस्मी ही होता है और भस्मी के अतिरिक्त कुछ नहीं होता। भस्मी एक पदार्थ है, जो स्वयं में **'कुछ नहीं'** है। भस्मी **'कुछ नहीं'** ही है और भस्मी इतनी **'कुछ नहीं'** होती है, कि **'कुछ नहीं'** के अतिरिक्त **'कुछ नहीं'** होती। यह इस अविशेष पदार्थ का सद् और विशिष्टतम विशेषता है। यही मानव-देह का अर्थ और जीवात्मा के पद का अर्थ (पदार्थ) है।

'तू' (परमात्मा) और **'मैं'** (जीवात्मा) ब्रह्मण्डातीत हैं और भस्मी ब्रह्माण्ड में है। भस्मी का पंच प्राणों और पंच महाभूतों से कोई सम्बन्ध नहीं है। पंच-महाभूतों की समस्त सृष्टि में यह तत्त्वातीत शिव तत्त्व (**'भस्मी'**) ही शाश्वत् तत्त्व है। भस्मी अथवा संहार की उपेक्षा एवं इससे रहित होकर शेष करोड़ों जन्मों के क्षणों में जीव, क्षण भंगुर ही रहता है। **'भस्मी'** के साथ एक क्षण के सान्निध्य व आत्मसातता से जीवन में शाश्वतता का पदार्पण होने लगता है। शिव के सान्निध्य का **एक अक्षुण्ण क्षण** युगों-युगान्तरों के जन्म-जन्मातरों में बीते हुए और आगे आने वाले समस्त क्षणों को अक्षुण्ण व शाश्वत् बना देता है।

सद्‌गुरु कहता है, कि "तेरी भसम ही पर्दे की तरह वह सर्वव्यापी दृष्टा है जिसने तेरी देह को जगत सहित पंच-महाभूतों में विलय होते देखा है।

उस भसम का जीवन-काल में जो अति सशक्त, विरक्त स्वरूप है वह माँ के गर्भ में गर्भाधान से लेकर चिता में जलने तक का दृष्टा है। जीते जी भसम तत्त्व के अधिग्रहण एवं इसकी अवधारणा के सिद्ध होते ही तुझे पंच-महाभूतों और निर्माण, पालन तथा संहार तीनों विधाओं में अविरल चलती दृश्यमान सृष्टि का सम्पूर्ण रहस्य हृदयंगम हो जाएगा। पंच-महाभूतों के समस्त प्रपंच एवं **'सब कुछ'** की दृष्टा यह भस्मी, अदृश्य विरक्ति रूप में पर्दे की तरह स्थिर, अपरिवर्तनीय एवं सम्पूर्ण देह सहित जगत की समस्त क्रियाओं से अप्रभावित रहती है। भसम से आत्मसात् होने में तुझे आत्मस्वरूप की स्मृति आ जाएगी, इसे ही शास्त्र ने **स्मृति भगवती** कहा है तथा इसका श्रवण **श्रुति भगवती** है।''

परमात्मा और जीवात्मा दो प्रकाश पुंजों के मध्य एक जीवभाव (मैं देह हूँ) आने से दोनों के मध्य पर्दा (आवरण) पड़ जाता है और परमात्मा, जीवात्मा एवं मानव-देह तीनों आवृत हो जाते हैं। सद्गुरु की असीम कृपावश भस्मी भाव (मैं भस्मी हूँ) की पुष्टि, प्रामाणिकता एवं सत्यापन द्वारा सिद्धि (विरक्ति) होने पर तीनों का आवरण एक साथ हट जाता है। यह शास्त्रीय विधान है, कि एक बार आवरण हटने पर पुनः कभी नहीं पड़ता।

''बोल सियावर रामचन्द्र की जय''

**(13 अगस्त, 23 अक्टूबर, 22 दिसम्बर 2010 एवं
4 जनवरी से 26 मार्च 2011)**

स्वयं-दर्शन

श्रद्धा के दो आयाम हैं। सद् को धारण करने की शक्ति तथा सद्गुरु के श्रीमुख से निःसृत शब्दों के, अक्षरशः पालन की उत्कण्ठा। यदि साधक में उत्कण्ठा होगी, तो शक्ति स्वयं सद्गुरु देगा। **'सद्'** की अनुभूति की उत्कण्ठा, जिज्ञासा एवं जुनून स्वयं में विरक्ति है। ऐसे जिज्ञासु को सद्गुरु पर और सद्गुरु को उस पर अधिकार होता है। सद्गुरु और सद्शिष्य की परस्पर आत्मीयता ही आत्मामयता है। ईश्वरीय प्रकृति की सर्वोत्तम, परम विलक्षण, विशिष्ट, चमत्कारिक, उद्देश्यात्मक एवं अति रहस्यमयी सुकृति **'मानव-देह'** है। मानव-देह और मानव-जीवन के साथ हम खिलवाड़ नहीं कर सकते। मान!व के अतिरिक्त अन्य प्राणी जगत प्रकृति के वशीभूत हैं। उन पर दैवीय संविधान लागू नहीं होता। मानव-देहधारी जब 'मैं हूँ और मैं अमुक (रूप) अमुक (नाम) हूँ', के भाव में वशीभूत हो जाता है; वहीं से महाकालेश्वर की 1008 धाराओं के अन्तर्गत प्रारब्ध बनने लगता है।

मान्यताएँ एवं धारणाएँ जब ईश्वर समर्पित हो जाती हैं, तो वे **'सद्'** हो जाती हैं। **'Require'** (आवश्यकता) और **'acquire'** (प्राप्ति) दो शब्द हैं। मेरी प्रत्येक आवश्यकता मेरी मान्यता पर आधारित है। जो भी मेरी Requirement (आवश्यकता) होती है, **'मैं'** मान लेता हूँ, कि मुझे शीघ्रातिशीघ्र मिलनी चाहिए। जो भी मैंने चाहा मैंने मान लिया, फिर और चाहा और मान लिया। जब मैंने सद्गुरु को माना और स्वयं को समर्पित किया तथा वह समर्पण दैवीय शक्तियों द्वारा **'acquire'** हो गया, तो मुझे कुछ भी चाहने

की आवश्यकता नहीं है। समय-समय पर मेरी Requirements का ध्यान दैवी शक्तियों द्वारा स्वतः रखा जाएगा। श्रद्धावश साधक में यह भाव आना आवश्यक है, कि "प्रभु ! मैं असमर्थ हूँ आप ही करवाएँ, तो आपकी वाणी को मैं धारण कर सकता हूँ। आप ही जनवाएँ एवं अपना दर्शन दें, तो मैं जान सकता हूँ।"

सद्‌गुरु हित-बोध करवाता है। हित-बोध का कोई भविष्य नहीं होता, क्योंकि वह अक्षुण्ण क्षणों से निःसृत होता है। अक्षुण्ण क्षण स्वयं में शाश्वत् एवं कालातीत होते हैं। मानव जीवन के असंख्य क्षण-भंगुर एवं क्षणिक क्षणों में कोई एक-आधा अक्षुण्ण क्षण जहाँ समस्त क्षण (त्रिकाल—भूत, भविष्य, वर्तमान) तथा अकाल भी समाहित हो जाता है, उस क्षण की खोज एवं अनुभूति ही मानव देह का लक्ष्य है। सद्‌गुरु जीवन-काल में देह धारणा (मैं देह हूँ) के दौरान उस क्षण में ले जाना चाहता है, जिस क्षण में देह का निश्चित, परिलक्षित, दर्शित भविष्य वर्तमान में अवधारणा द्वारा उतर जाए। सब जानते हैं और तहे दिल से मानते हैं, कि मृत्यु अवश्य होगी और कभी भी होगी।

सद्‌गुरु कहता है, कि "तू सन्देह (मैं देह हूँ) की अनभिज्ञता में जीवन में भविष्यों में उलझा रहता है। तेरी कुछ न कुछ आवश्यकता (Requirement) बनी रहती है, जिसे तू किसी तरह से और सब तरह से प्राप्त (Acquire) करना चाहता है। देह व जीवन में हर भविष्य अनिश्चित ही है, क्योंकि तेरी कोई भी श्वास अन्तिम हो सकती है, जो तेरा शव प्रकट कर देगी। **'शव'** की भस्मी बनना सुनिश्चित, दर्शित एवं परिलक्षित है।" प्रमाण और परिभाषा विज्ञान का मूल है, चाहे वह भौतिक विज्ञान हो, चाहे आध्यात्मिक विज्ञान हो। कृपया एकाग्र करिए, अध्यात्म विज्ञान के अति रहस्यात्मक एवं मात्र श्रुतिगम्य विषय को मैं आप समस्त श्रद्धालुओं एवं जिज्ञासुओं के लिए सरल एवं सहज ग्राह्य शैली में अनावृत कर रहा हूँ।

मानव-देह और जीवन अति दुर्लभ हैं। इसके रुटीन का एक ढांचा प्रभु ने बनाया है, जिसमें शैशवावस्था, बाल्यावस्था, युवावस्था, प्रौढ़ावस्था, अति प्रौढ़ावस्था, वृद्धावस्था, अति वृद्धावस्था व मृत्यु का क्रम सा है। शैशवावस्था के बाद शवावस्था या मृत्यु कभी भी हो सकती है। साकार मानव-देह की

शैशव एवं शव दो अवस्थाएँ ही सुनिश्चित हैं। शैशवावस्था और शवावस्था के मध्य के रुटीन का क्रम कोई क्रम नहीं है। शव के चिता या कब्र में डालने के आगे साकार देह की अन्य कोई अवस्था नहीं है। **'शव'** मानव-देह का **'उपसंहार'** है। शव का अग्नि द्वारा अग्नि सहित पंच-महाभूतों में विलय **'संहार प्रकरण'** है और पूर्ण भस्मी का प्रकाट्य **'संहारान्त'** है। यह **'भस्मी'** स्वयं में निर्माण, पालन और संहार से परे देहातीत एवं अवस्थातीत है। यह प्रकट भस्मी पंच-महाभूतों की देह के इन्हीं महातत्त्वों में विलय की साक्षी तत्त्वातीत तत्त्व है।

देह का अन्त होना सुनिश्चित है और भस्मी परिलक्षित व दर्शित है। लेकिन वह अन्त (देहान्त या मृत्यु) जिसका अन्तान्त भस्मी है, वह किस अवस्था के बाद होगा, वह अवस्था न सुनिश्चित है, न दर्शित है और न परिलक्षित है। **'भविष्य'** किसी वर्तमान का ही होता है और वर्तमान किसी अतीत (Past या भूत) का होता है। देह का जो निश्चित, परिलक्षित, दर्शित भविष्य **'भस्मी'** है, वह भविष्य किसी वर्तमान को नहीं जानता। क्योंकि जिस वर्तमान का **'भस्मी'** भविष्य है, वह वर्तमान निश्चित, दर्शित एवं परिलक्षित नहीं है। सद्गुरु कहता है, कि ''**भस्मी** तेरी देह का भविष्य है यह तू जानता है, लेकिन कौन सी देह अर्थात् किस अवस्था, किस स्थान, किस समय और किस स्थिति की देह का भविष्य है, यह तू न जानता है और न जान सकता है। यह तेरे लिए अनिश्चित, अदर्शित एवं अपरिलक्षित ही था, है और रहेगा।'' भस्मी, मृत्यु के बाद बनती है और हर कोई जीते जी मरता है। कोई जीवित आत्महत्या करने के लिए अग्नि में कूद भी जाए, तो भी पहले उसकी मृत्यु होगी और फिर उसके शव की भस्मी बनेगी। इसलिए युगों-युगान्तरों से **'मृत्यु'** भविष्य ही बनी हुई है और जन्म अतीत में हो चुका होता है। मरण हो**गा** और जन्म हुआ **था** की **'गाथा'** में हम युगों-युगान्तरों से भटक रहे हैं। कृपया एकाग्र करें।

भस्मी स्वयं में अनाम और अरूप है और जीवात्मा भी ऐसा ही है। भस्मी के लिए हम सब Insured हैं। लेकिन यह बीमा किसी के अपने नाम से

नहीं है, इसलिए जब मैं अपना नाम-रूप भूल जाऊँगा, तभी अपनी पहले से Matured Policy का लाभ उठा पाऊँगा। देहान्त अथवा शव तक नाम-रूप रहता है, लेकिन भस्मी बनते ही **'रूप'** विलय हो जाता है। वहाँ पहुँचते ही नाम-रूप के समस्त खाते साफ हो जाते हैं। सद्गुरु कहता है, कि ''सब कुछ जो तेरे नाम से है, वह तेरा नहीं है। जो तेरा है, वह तेरे नाम से नहीं है। जो भस्मी तेरे नाम से नहीं है, उसके लिए तू Insured है। वह तेरी देह का अर्थ है और तेरे पद का अर्थ है। **'भस्मी'** देहातीत है और अनाम एवं अरूप है तथा तू भी ऐसा ही है। उससे आत्मसात् होने में तुझे तेरे जीवात्मा पद की स्मृति आ जाएगी। तू जानता है और मानता है, कि मृत्यु होगी। अब तू मान ले मृत्यु 'हो**गी'** नहीं, 'हो **गई'।''** और शव की भस्मी बने**गी** नहीं **'**बन **गई'।** प्रत्येक देह का और अनेकानेक देहों का सुनिश्चित, दर्शित एवं परिलक्षित भविष्य **'एक'** ही भस्मी है। तेरे हर अतीत, हर वर्तमान एवं हर भविष्य का भविष्य भस्मी ही है। हर अतीत का हो सकता था, हर वर्तमान का है और हर भविष्य का होगा ही, तू यह जानता है और मानता है। इस जान्यता एवं मान्यता को सिद्ध कर ले। जीवन-काल के किसी वर्तमान में अवधारणा कर, कि भस्मी तो बनना ही है। अतः मैं भस्मी ही हूँ। जिस क्षण ध्यान में अपनी देह के शव को मानस प्रकरण में **'दहन'** होते और भस्मी में रूपान्तरित होते देखेगा, वह क्षण स्वयं में भूत, भविष्य एवं वर्तमान से रहित शाश्वत् अक्षुण्ण क्षण हो जाएगा। अतः उस क्षण में और उस क्षण के भविष्य में कोई अन्तर नहीं होगा। जो भविष्य होगा, वह भविष्य **सा** होगा। जो अतीत होगा, वह अतीत **सा** होगा, क्योंकि स्वयं में वह वर्तमान भी वर्तमान **सा** होगा। वह क्षण, क्षण-क्षण बीतते, क्षण-भंगुर क्षणों **सा** नहीं, बल्कि **'अक्षुण्ण क्षण'** होगा।''

जीव-सृष्टि में एक जीवात्मा कोटि-कोटि जीवों की कोटि में जन्मों-जन्मान्तरों के मिथ्या काल-चक्र में युगों-युगान्तरों से भटक रहा है। जिस देह के साथ इसकी अज्ञान **'मैं देह हूँ'** (सन्देह) की अनभिज्ञता में धारणा हुई है, वह इसकी **'यथार्थ देह'** नहीं है। प्रत्येक सार्थक प्रश्न का अर्थ (उत्तर) प्रश्न में समाहित होते हुए भी प्रश्न से बाहर होता है। परमात्मा ने

‘मानव-देह’ का अर्थ सबको स्पष्ट दिखाया है। प्रत्येक देह चाहे कुछ भी हो, अन्ततः डेढ़-दो किलो **‘भस्मी’** में रूपान्तरित हो जाती है। **‘जीव-सृष्टि’** में जब मैंने देह को अपना मान लिया, कि ‘मैं देह हूँ’, तो ‘देहों से देहों’ की तुलना सतत् परिवर्तित होती विधाओं में की। उसके पास धन अधिक है, उसका मकान मेरे मकान से छोटा है, उसका पद ऊँचा है, उसका नीचा है, उसके बच्चे विदेश में हैं, वे बहुत अमीर हैं, आदि-आदि। मैं देह रूप में एक हूँ तो ही अनेक हैं। अनेक का सन्धि-विच्छेद करें, अन्य+एक=अनेक। जो **‘मैं’** एक अन्यों में हूँ उनसे मैं ईर्ष्या, स्पर्धा, आधि-व्याधि-उपाधि में तुलना करता हूँ। अन्य अनेकों और अनेकानेकों में **‘एक’** उन सबकी **‘भस्मी’** है, जो मैंने अपनी न देखी है न देख सकता हूँ। क्योंकि जो अन्य मृत्योपरान्त भस्मी बन गए थे, उन्होंने भी नहीं देखी। मैंने **‘भस्मी’** अन्यों की देखी। **‘मृत्यु’** स्वयं में दर्शन एवं बहुत बड़ा रहस्य है। मृत्यु ऐसा भविष्य है जो एक ही बार होता है। जो मृत्यु हो**गी,** यदि हो ग **‘ई’** तो यह प्रश्न नहीं उठता, कि दुबारा कब होगी ? यह एक ऐसा भविष्य है, जो हमेशा भविष्य ही रहता है और देह धारणावश हर जन्म में मृत्यु होगी की धारणा बनी रहती है। कृपया एकाग्र करिए।

मैंने स्वयं अपना जन्म नहीं देखा, अन्यों का देखा। अन्यों का जन्म देखकर स्वयं के जन्म की कल्पना करके मान लिया, कि मैं भी पैदा हुआ। मेरे जन्म के कई साक्षी मुझे मिलते हैं। अतः मेरा जन्म मेरे द्वारा मात्र सुना-सुनाया होते हुए भी बहुत से अन्यों द्वारा देखा भी गया है। इसी प्रकार मैंने अन्य की मृत्यु देखी है और मान लिया, कि मैं भी मरूँगा। जन्म के साक्षी मुझे मिले, लेकिन मेरी मृत्यु का, साक्षी भी मुझे कोई नहीं मिलेगा, क्योंकि तब मैं नहीं रहूँगा। अपनी निद्रा के साक्षी सबको मिल जाते हैं, क्योंकि निद्रा के बाद **‘मैं’** उठता हूँ। लेकिन **अपनी मृत्यु** का कोई साक्षी किसी को आज तक न मिला है और न मिलने की सम्भावना है। यदि **‘मैं’** अन्य+एक=अनेक न होता, तो जीवन के महान **‘सद्’** से वंचित रह जाता। देह की असंख्य अवस्थाओं की भाँति मृत्यु (शवावस्था) भी एक अवस्था है। जीतेजी उस अवस्था की अनुभूति स्वयं में **मृत्यु-दर्शन** है, जिससे

जीवन-दर्शन होना प्रारम्भ हो जाता है। जानने और मानने के बाद अनुभूति जब आत्मसात् हो जाती है, तो सिद्धि बन जाती है। जो मैंने अपनी देह का नहीं देखा और न देखने की सम्भावना है, उसे **'मैं'** देख पाऊँ। उसका जन्म हुआ, मेरा भी ऐसे ही हुआ होगा। वह नंगा-भूखा पैदा हुआ था **'मैं'** भी ऐसे ही पैदा हुआ हूँगा। वह मरा है और **'सब कुछ'** रहित चिता पर जलने के लिए लिटा दिया गया। मैं भी जब मरूँगा, तो ऐसे ही खाली हाथ लिटा दिया जाऊँगा। उसकी भस्मी बनी है, मेरी भी भस्मी बनेगी और भस्मी बिल्कुल ऐसी ही होगी। सद्गुरु कहता है, कि ''काश ! तेरी प्रतिस्पर्धा अन्य+एक के इन बिन्दुओं पर होती। कोई छत्रपति सम्राट हो, चाहे भिखारी सब खाली हाथ दुनिया में आते हैं और खाली हाथ दुनिया से चले जाते हैं। सबकी भस्मी या मिट्टी बनती है, तेरी भी ऐसे ही बनेगी और अवश्य बनेगी तथा कभी भी बनेगी। अन्य में कोई कुछ भी लेकर नहीं आता और कुछ लेकर नहीं जाता। तू भी ऐसे ही जाएगा, तो सोच तेरा तथा तेरे जीवन व देह का **अर्थ** क्या है?''

गौतम बुद्ध ने अन्यों में यही देखा। कपिलवस्तु का युवा राजकुमार सिद्धार्थ सब प्रकार से भौतिक सम्पन्नता एवं वैभव में जीवन का **'सद्'** अन्यों में देखता है। एक रोगी, एक वृद्ध एवं एक मृतक को अर्थी पर जाते देखकर उसने सोचा, मैं भी ऐसे ही वृद्ध होकर मर जाऊँगा। एक देह के साथ अन्य देहें न होतीं, तो मैं यह सद् कैसे देखता, कि अन्ततः देह रूप में कुछ भी बनने का अर्थ **'भस्मी'** है। जिसके लिए अर्थी बनती है, उसने अपनी अर्थी नहीं देखी। अतः वह जीवन के अर्थ से वंचित रहा। मैं अन्य में यह देखकर जान सकता हूँ और मान सकता हूँ, कि मेरी अर्थी भी ऐसे ही जाएगी और गन्तव्य स्थान शमशान ही होगा। **'मैं'** जो अन्यों में एक हूँ, उन सबमें असंख्य भिन्नताएँ हैं, लेकिन सबका अन्ततः यही होना है। मैंने अपनी देह के साथ तद्रूपतावश 'मैं देह हूँ' सन्देह के अज्ञान में अन्य को अपने साथ एक नहीं माना। स्वयं को देह रूप में एक मानकर अन्य अनेकों को अन्य व पृथक् मान लिया। अन्य में जन्म, मृत्यु, अर्थी, शमशान, भस्मी और **'मैं'** सबकी एक

ही है। मानव-देह का सद् है, कि वह परिवर्तनशील है। दूसरा सद् यह है, कि इसका जो अदृश्य क्षेत्र है, वह अपरिवर्तनीय है और वह सबका एक है। इसकी निद्रा, मूर्च्छा, शव, भस्मी एक है, जो किसी ने अपनी नहीं देखी।

सद्गुरु कहता है, ''तू अन्य देहों की भस्मी देख रहा है, तू अपनी देह में अवधारणा कर ले, कि मैं भस्मी हूँ, तो तेरी देह धारणा निर्मूल हो जाएगी। अन्य में **'एक'** देख, जो बिल्कुल तेरे जैसा है। जो तूने स्वयं में नहीं देखना, वह अन्य में देख। अन्य में अन्य ने वह देखा नहीं, इसी प्रकार तूने भी नहीं देखना, लेकिन ऐसा ही तेरा भी होगा ही। अन्य देहों में कोई मर गया है, उसने अपनी मृत्यु नहीं देखी तू अपनी देख ले, कि मेरी भी ऐसे ही होगी। उसकी भस्मी बनी, तो उसने नहीं देखी तू अवधारणा कर ले तेरी भी ऐसे ही बनेगी। तू भस्मी बन गया है। कोई छत्रपति सम्राट था, उसकी भस्मी और तू एक साधारण व्यक्ति है, तेरी भस्मी भी वैसी ही होगी। दोनों की भस्मी में कोई अन्तर नहीं होगा। अन्य जो परिवर्तनशील है, उसमें तेरी एक देह भी है और अन्य+एक=अनेक का आधार **'एक'** है। **'भस्मी'** एक (नाम-रूप की देह) के अन्त के अन्त का अन्त है, इसलिए भस्मी स्थिति में नाम-रूप की देह, जगत सहित विलय हो जाती है। देह से भस्मी बनेगी, लेकिन भस्मी किसी देह विशेष या विशेष देह की नहीं होगी। भस्मी की अवधारणा तुझे एकान्त की अनुभूति कराएगी। एकान्त स्वतः अनेकान्त भी है। जिसकी **'भस्मी'** बनती है, उसने वह एकान्त स्थिति नहीं देखी, तू देख ले। प्रभु कृपा से यह सम्भव है। तब तुझे अपनी यथार्थ देह की अनुभूति होगी।''

हम जन्मों-जन्मान्तरों से अज्ञान (संदेह) के अज्ञान में विचर रहे हैं। अन्धकारपूर्वक जीवन बिता रहे हैं और उस अन्धकार से छूटना नहीं चाहते। इसे मैंने **'अन्धान्ध रोग'** की संज्ञा दी थी। सब अन्ततः शमशान ले जाए जाते हैं। शमशान में चाहे जितने भी ताम-झाम हों, शव के लिए उनका कोई महात्म्य नहीं होता। **प्रभु ने मुझ एक के साथ अन्य (जगत) इसलिए दिया है, कि मैं स्वयं में वह एक देखूँ, जो सबका एक ही है।** किसी ने नहीं देखा और जिसका है उसने नहीं देखा। यह 'अन्य' का सद् है, यह **'स्वयं-दर्शन'**

है। **'भस्मी'** एकान्त है। **'शव'** एकान्त नहीं है, क्योंकि जिसका **'शव'** है, वह एक शवरूप में साकार है। भस्मी देहातान्तान्त है। यही एकान्त स्थिति है। सद्गुरु उस **'एक' 'भस्मी'** का मूर्तिमन्त स्वरूप है। सद्गुरु ने अपना एकान्त दर्शन किया है, अदृश्य दर्शन उसे सिद्ध है। सद्गुरु सहज समाधि में रहता है। वह उस एक तत्त्व के बारे में जनवा सकता है। सद्गुरु कहता है, कि "उस **'एक'** तत्त्व के बारे में जान, जिज्ञासा रख। अन्य में जो सबका एक है, वह तू अवधारित कर ले। तू एक से एकान्त में प्रविष्टि पा लेगा। जो तूने अन्य का देखा है, कि कुछ भी बनकर अन्ततः भस्मी बन गया। उसे तू अपने ऊपर ढाल। यही तेरा निजी व्यक्तिगत कर्म एवं कर्तव्य है। जो स्थिति तेरे में, तेरे लिए दृश्यमान नहीं है, उसकी अनुभूति करने से तुझे अपने एक जीवात्मा तत्त्व का दर्शन हो जाएगा। अन्ततः तेरे सभी भविष्यों का एक ही भविष्य है, उस भविष्य के लिए तू लालायित, विदीर्ण, उत्कण्ठित हो। जब हर क्षण, हर वर्तमान में उस भविष्य को उतारने की चेष्टा, लालसा, उत्कण्ठा, बेचैनी, जुनून एवं वहशियत होगी और जिस वर्तमान क्षण में वह भविष्य उतर जाएगा, वह क्षण तुझे भूत, भविष्य और वर्तमान से परे **कालातीत-अकालातीत** कर देगा। **तू स्वयं युगों-युगान्तरों से परे युगातीत ही है**।"

ध्यानाग्नि में जिज्ञासु जब अति सद्गुरु कृपा से अपनी देह को **'भस्मी'** बनता हुआ देखता है, तो लययोग की स्थिति में देह अपने **'नाम-रूप'** के '**बन्धन**' से छूट जाती है। कुछ क्षणों के लिए उस स्थित्यातीत समाधि स्थिति में अपने एकान्त की आनन्दावस्था एवं अभावमयता की अनुभूति होती है। इस अनिर्वचनीय विश्राम एवं शान्ति के लिए जीव को क्रान्ति से गुज़रना पड़ता है। **'मैं हूँ'** तो ही सृष्टि है, दूसरे शब्दों में यदि मैं नहीं हूँ, तो सृष्टि नहीं है। मेरा और सृष्टि का बहुत गहरा सम्बन्ध है। अर्थात् **'मैं'** जो, जब, जहाँ, जैसा हूँ सम्पूर्ण सृष्टि का प्रतिनिधित्व करता हूँ। जैसा भी 'मैं हूँ' सृष्टि भी तदनुसार होती है।

सन्देह नामक अज्ञान का ज्ञान होने के बाद जब **'मैं'** सन्देह का निवारण या उन्मूलन चाहता हूँ, तो देह भी चाहती है। वहाँ देह और

उसके साथ प्रकट सृष्टि **सहयोगी** ही होती है। सहज संधि के फलस्वरूप जब **'मैं'** अपने स्वरूप को पा लेता हूँ, तो मेरे साथ जो देह होती है, वह **यथार्थ** होती है। भस्मी देह का अर्थ है और यह **'अर्थ'** ही पुरुषार्थ का प्रथम सोपान है। इसका नित्याध्यासन करते-करते **'विरक्ति'** जाग्रत हो जाती है। यह विरक्ति (जो **'अर्थ'** का **'अर्थ'** है) **'धर्म'** (पुरुषार्थ का दूसरा सोपान) है। सद्‌गुरु कहता है, कि ''जो प्राणयुक्त देह **'मैं'** नहीं लगा सकती, वह अर्थहीन होती है। प्राणयुक्त देह **'मैं'** लगते ही **'अर्थ युक्त'** हो जाती है। यदि **'मैं'** (जीवात्मा) ने इसका अर्थ (भस्मी) नहीं लगाया और मात्र देहार्थ (देह व देहों के लिए) पदार्थों के लिए दौड़ाया, तो देह भी ईश्वरीय सुकृति है अतः निरर्थ, व्यर्थ एवं अनर्थ में भटकाएगी। देह का अर्थ मात्र भस्मी है। यदि तूने यह जान लिया, मान लिया और इसकी बार-बार जाँच की, तभी तेरी देह यथार्थ (यथा+अर्थ) होती है। यथार्थ देह **'तदर्थ'** होती है। विरक्ति ईश्वर तत्त्व अथवा ब्रह्मत्व है। विरक्ति से तेरी विभूतियाँ जाग्रत होंगी और तुझे भक्ति का वरदान मिल जाएगा। पुरुषार्थ का तृतीय सोपान **'काम'** (भक्ति) है।'' यथार्थ देह के साथ ही संसार **'स सार'** एवं सार्थक होता है। भस्मी के साथ आत्मसात् होते-होते अवचेतना में चेतना की चरम सीमा को प्राप्त कर चुकी देह आत्मामयी यथार्थ देह होती है। समर्थ सद्‌गुरु **'अर्थ'** पकड़ा देता है। तभी **'अर्थ-दर्शन'** होता है। **'मैं'** दृष्टा हूँ और **'मैं'** ही दृष्टा हूँ, **'मैं'** दृष्टा ही हूँ। लेकिन देह व जगत का निर्माता, पालनकर्ता और संहारकर्ता मैं नहीं हूँ। हर विधा का कारण और समस्त कारणों का कारण वह स्रष्टा ही है।

ईश्वर द्वारा रचित वास्तविक प्रदर्शन रूप सृष्टि का रसास्वादन यथार्थ देह में ही सम्भव है, क्योंकि जैसा **'मैं हूँ'** सृष्टि तदनुसार ही होगी। मेरी वह यथार्थ देह, अर्थ (भस्मी या वैराग) सहित होने के कारण जन्म-मृत्यु, जरा, आधि, व्याधि, उपाधि, रोग-दोष, पाप, पुण्य, वैर-वैमनस्य, दुःख, पीड़ा आदि से पूर्णतः रहित होती है। वह सम्पूर्ण

प्रदर्शन का प्रतिनिधित्व करती है और मुझ जीवात्मा के साथ ईश्वर की बहुआयामी कलाओं के दर्शन एवं स्वयं ईश्वर के दिग्दर्शन का प्रतिनिधित्व भी करती है। पंच-प्राण सहचर रूप में इसके साथ चलते हैं। यह देह अदृश्य परमात्मा के पूर्णतः अधीन होती है। अदृश्य की इच्छा से ही दृश्यमान होती है अन्यथा अदृश्य रहती है। **साधारण देह, असाधारण व पूजनीय होते हुए अन्ततः दर्शनीय हो जाती है।**

''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(13 अक्टूबर से 25 अक्टूबर 2010)

अतिरिक्त

'अतिरिक्त' शास्त्रीय शब्द है, जो **'अति'** और **'रिक्त'** दो शब्दों के युग्म से बना है। व्याकरण की दृष्टि से परस्पर सम्बन्ध रखने वाले शब्दों के मेल को **समास** कहते हैं। 'अति'+'रिक्त'=**अतिरिक्त** का अर्थ है– अलावा, extra अथवा आवश्यकता से अधिक। **'अतिरिक्त'** शब्द का विच्छेदन करने पर **'अति' 'रिक्त'** का अर्थ हुआ **'अत्यधिक खाली'**। भौतिक रूप से जीव की समस्त भाग-दौड़ एवं गतियाँ जब पद, प्रतिष्ठा, मान-सम्मान, अतिरिक्त पदार्थों, जन-बल, धन-बल तथा देह सहित जगत की अन्य विभिन्न विधाओं के लिए **ही** होती हैं, तो मानसिक रूप से वह अति-अति रिक्त होता जाता है। आवश्यकता से अधिक (अतिरिक्त) भौतिक विधाएँ अक्सर हमारी शोभा नहीं बढ़ातीं। वे निरर्थक तथा व्यर्थक तो होती ही हैं, **'अनर्थक'** भी होती हैं, क्योंकि इनकी साज-सम्भाल अधिकतर हमें तनावित करती रहती है। जीव जितना अधिक अतिरिक्त एकत्र करेगा, उतना अधिक खाली, अभाव में और असंतृप्त रहेगा।

ईश्वरत्व एवं आत्मत्व में हमारी देह, जगत सहित है तथा हम सब ईश्वर के गर्भस्थ हैं। सम्पूर्ण युगों-युगान्तरों का दृश्यमान साकार एवं निराकार जगत ईश्वर के उदरस्थ है और ईश्वर ही स्वयं में स्रष्टा, दृष्टा एवं सृष्टि है। सृष्टि के अस्तित्व का प्रमाण 'मैं' शब्द स्वयं में शब्द ब्रह्म है। **'मैं'** शब्द सम्पूर्ण सृष्टि के एकमात्र दृष्टा जीवात्मा का प्रतिनिधि है। जीवात्मा (दृष्टा) का प्रतिनिधि **'मैं'** शब्द कहीं बाहर से प्रकट नहीं होता, क्योंकि वह महा दृष्टा (जीवात्मा) एक यथार्थ मानव-देह द्वारा ही सम्पूर्ण युगों-युगान्तरों

में विस्तृत सृष्टि की दृश्यमान विधाओं का रसास्वादन करता है एवं अदृश्य विधाओं का दर्शन करता है। दृश्यमान में देखना, सुनना, चखना, सूंघना, स्पर्श करना के साथ, सब कुछ कैसा लगा भी समाहित है। **'मैं'** शब्द के प्रकट होने के लिए एक जीवित व जाग्रत मानव-देह का तनिक अवलम्बन अत्यावश्यक है। मानव-देह में देह का प्रतिनिधि **'रूप'** अथवा चेहरा है। किसी भी व्यक्ति की पहचान और परिचय उसके चेहरे से की तथा करवाई जाती है। एक दर्शित यथार्थ मानव-देह युगों-युगान्तरों की सम्पूर्ण सृष्टि के प्रदर्शन की प्रतिनिधि एवं संघनित स्वरूप है। देह जब भी है, जगत सहित है। **'रूप'** देह **में** है और देह **का** है। 'चेहरा' देह नहीं है, बल्कि रूप सहित पूरी देह का प्रतिनिधि है। देह में, जिस देह का प्रतिनिधित्व रूप करता है उसका जो नाम रखा जाता है, वह देह के **'अतिरिक्त'** है।

मानव-शिशु जन्म लेते ही प्रथम श्वास लेते हुए **'मैं' 'मैं'** शब्द के घोष के साथ रुदन करता है। **'मैं' 'मैं'** शब्द के साथ यह रुदन देह के साथ तद्‌रूपता सी में आत्म-क्रन्दन है। **'नाम'** देह के साथ नहीं आता, अतः नाम स्वयं में देह नहीं है और देह का अंग भी नहीं है। **'नाम'** का अपना कोई नाम और रूप नहीं है। अतः **'नाम'** स्वयं में अनाम व अरूप है। शिशु के रूप का **'नाम'** नहीं था, जगत व्यवहार, सम्बोधन एवं पहचान के लिए इसका नाम रखा गया। शनैः शनैः उस नाम ने सम्पूर्ण देह और उस देह से सम्बन्धित प्रत्येक विधा (पति-पत्नी, मकान, दुकान, ऑफिस, धन, पद, प्रतिष्ठा, प्रौपर्टी, बेटा, बेटी, धर्म, कर्म, कर्तव्य, अकर्तव्य, ज्ञान-अज्ञान, देश, काल, स्थिति, अवस्था, आयु, परिस्थिति आदि) का अधिग्रहण कर लिया। **'रूप'** और नाम की अदृश्य गांठ इस प्रकार पड़ी, कि मानव-देह का यथार्थ रूप और **'अर्थ'** नाम ने पूर्णतः आच्छादित कर लिया। देह के रूप की तद्‌नामता में **'नाम'** अतिरिक्त होते हुए भी अदृश्य रूप से छिपा हुआ दृश्यमान देह का स्वामी बन गया। **'नाम'** के साथ रूप **'गुण्ठित'** हो चुका था अतः मानव-देह स्वयं में अति सीमित व कुण्ठित हो गई। **'मैं'** ने प्रकट होते ही इस अदृश्य गाँठ की पुष्टि कर दी और मैं अमुक-अमुक (नाम-रूप) देह हो गया।

'मैं' के बिना जगत की कोई भी दृश्यमान साकार या निराकार विधा, क्रिया-अक्रिया, सोच, असोच, भाव, अभाव, कुभाव, प्रदर्शन, दर्शन, दिग्दर्शन प्रमाणित नहीं होते। देखने में लगता है, कि देह में **'रूप'** का वर्चस्व है, लेकिन अक्सर प्रत्येक मानव-देह पर उसका नाम जो स्वयं में अनाम और अरूप है, अदृश्य होते हुए भी हावी है। फोन पर पूछा कि कौन बोल रहा है? उत्तर मिला कि **'मैं'** बोल रहा हूँ। **'मैं'** शब्द द्वारा मानव-देह और उसका होना प्रमाणित होते हुए भी उत्तर अधूरा है, क्योंकि कौन है, यह पता नहीं चलता। यदि उत्तर देते हुए केवल **'नाम'** बता दिया होता, तो **'मैं'** शब्द, जाग्रत **'मानव-देह'** और उसका **'होना'** तीनों अंग होते और उत्तर पूर्ण होता। देह से अतिरिक्त **'नाम'** जब नाम व रूप को जगत सहित प्रमाणित करने वाली **'मैं'** पर हावी हो गया, तो वह देह यथार्थ से अतिरिक्त अन्यार्थ (निरर्थ, व्यर्थ, अनर्थ) हो गई। 'मैं' ने प्रकट होने के लिए एक नाम में गुण्ठित, यथार्थ से अतिरिक्त जाग्रत मानव देह का अवलम्बन लिया तो उस देह के साथ मैं भी अतिरिक्त हो गई और अपना सर्वव्यापी स्वरूप खो बैठी। **'मैं'** शब्द जीवात्मा के प्रतिनिधि **'शब्द ब्रह्म'** के अतिरिक्त **'शब्द भम्र'** बनकर नाम-रूप की देह का प्रतिनिधित्व करने लगा। अध्यात्म विद्या के परम रहस्यमय एवं मात्र श्रुतिगम्य विषय को इष्ट कृपा से मैं विश्व में प्रथम बार अनावृत कर रहा हूँ। आपकी अति श्रद्वा एवं विशेष एकाग्रता वांछनीय है।

किसी भी मानव का उठना और उठना घोषित होना **'मैं'** शब्द द्वारा ही होता है। **'मैं'** शब्द जीवात्मा नहीं है, उस आत्मतत्त्व का प्रतिनिधि है। यह प्रतिनिधि देह के साथ नाम-रूप में तद्‌रूप हो सकता है और हुआ। स्वयं जीवात्मा कभी नाम-रूप की देह के साथ तद्‌रूप नहीं होता। **'मैं'** शब्द रूप प्रतिनिधि को प्रकट होने के लिए दृश्यमान सृष्टि में दर्शित जीवित एवं जाग्रत एक मानव-देह का तनिक अवलम्बन अत्यावश्यक है। प्रतिनिधित्व करने वाली विधा, जिसका वह प्रतिनिधित्व करेगी उसके समकक्ष एवं समान नहीं हो सकती। Representative को represent करने के लिए कोई आसरा चाहिए। उदाहरणतः, हिन्दी वर्णमाला के विभिन्न स्वरों

का प्रतिनिधित्व विभिन्न मात्राएँ करती हैं। मात्राएँ किसी न किसी व्यंजन के साथ लग कर ही शब्दों को अर्थ प्रदान कर सकती हैं, लेकिन मात्राएँ जिन स्वरों का प्रतिनिधित्व करती हैं वे 'स्वर' स्वयं में स्वतन्त्र एवं पूर्ण हैं। जैसे एक शब्द लें—'मिल', 'इ' स्वर की प्रतिनिधि मात्रा को प्रकट होने के लिए 'म' वर्ण का अवलम्बन लेना पड़ा और एक सार्थक शब्द प्रकट हुआ, जो अन्य शब्दों के साथ मिल कर सार्थक अथवा निरर्थक वाक्यों को प्रकट करेगा। 'ई' स्वर की प्रतिनिधि मात्रा 'मृत्यु होगी' में 'ग' वर्ण के साथ प्रकट होकर एक सुनिश्चित भविष्य का संकेत करती है, जबकि मूल स्वर 'ई' 'मृत्यु हो गई' में अतीत में हो चुकी घटना की सूचक बन जाती है। मात्रा प्रतिनिधि है, इसलिए 'ग' के साथ चिपक गई और उसी शब्द में समाहित हो गई। 'ई' ग के साथ होते हुए भी पृथक् रही। इस प्रकार प्रतिनिधि विधा और जिसका प्रतिनिधित्व किया जा रहा है, दोनों समान हो ही नहीं सकतीं। प्रतिनिधि स्वयं में स्वतन्त्र नहीं है, लेकिन जिसका वह प्रतिनिधि है, वह स्वयं में पूर्ण व स्वतन्त्र है। 'मैं' शब्द जीवात्मा का प्रतिनिधि है, अतः उसे प्रकट होने के लिए एक जाग्रत मानव-देह का अवलम्बन लेना पड़ा। लेकिन आत्मत्त्व स्वतन्त्र है और 'मैं' शब्द के प्रकट होते ही सम्पूर्ण जगत सहित देह अविलम्ब उस पर अवलम्बित होते हुए सेवा में आ जाती है। कृपया एकाग्र करिए।

देह का एक सरल सा **'नाम'** रूप के साथ गुण्ठित होकर एक Complex बन गया और देह से अतिरिक्त होते हुए भी अदृश्य गाँठ के रूप में देह का स्वामी बन गया। **'मैं'** शब्द ने प्रकट होते ही इस गाँठ की परिपुष्टि कर दी। **'नाम'** ने एक देह को दबोचते हुए उसे उसके जगत से अतिरिक्त कर दिया और जीव अपने ही जगत से अलग-थलग हो गया। क्योंकि नाम जिस देह पर हावी हुआ वह देह Conceptual (गर्भित) और जीव-कोटि की निरर्थ, व्यर्थ और अनर्थ देह थी। इस गर्भित देह का भी जब जन्म हुआ, तो उसका कुछ नाम नहीं था। वह देह 'नाम' के साथ गुण्ठित व तद्नाम हो गई और यथार्थ से अतिरिक्त हो गई। इस देह का होना प्रमाणित करने में जीवात्मा तत्त्व का प्रतिनिधि **'मैं'** सर्वव्यापी और सर्व (देह सहित जगत) का

एक ही होते हुए भी अपने मूल स्वरूप से अतिरिक्त हो कर, आत्मतत्व के स्थान पर नाम-रूप की देह के एक व्यक्ति का प्रतिनिधित्व करने लगा। यह **'नाम'** Complex देह पर हावी हो गया और होश सम्भालते ही मानव की चेतनामयी ईश्वरीय बुद्धि अतिरिक्त होते हुए अवचेतना में उतर आई। जीव को **'नाम रोग'** ने ग्रसित कर लिया। प्रभु के नाम-जाप का महात्म्य सर्वोपरि है, क्योंकि इससे नाम रोग के लक्षण प्रकट नहीं होते। देह के उस अतिरक्त **'नाम'** के **'देह'** और **'मैं'** पर हावी होने से जीव की समस्त भाग-दौड़ एवं गतिविधियाँ **'अतिरिक्त'** के लिए हो गईं और नाम रोग के लक्षण प्रकट होने लगे। अपने **'नाम'** की ललक ने जीव को असंख्य दुर्विकारों व विकृतियों (काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, ममकार, ईर्ष्या, द्वेष, स्पर्धा, वैर, वैमनस्य, जलन, स्वार्थ, छल, कपट, आसक्ति, अतृप्ति, असंतोष आदि) ने घेर लिया। जीव होश सम्भालते ही प्राप्य की प्राप्तियाँ कर्ताभाव से करने लगा। वह **'लब्ध'** को **'उपलब्ध'** करने लगा।

होश सम्भालते ही हम मानव स्वयं को अति रिक्त (अभाव में) अनुभव करते हैं और **'अतिरिक्त'** वस्तुओं, सम्बन्धों, पद-प्रतिष्ठा, डिग्रियाँ, ज्ञान, जन-बल, छल-बल, धन-बल, प्रौपर्टी आदि-आदि के पीछे भागने लगने लगते हैं। हम बहुत सी ऐसी वस्तुओं और विधाओं की प्राप्ति के लिए भागते और संघर्ष करते हैं, जो हमारे लिए अतिरिक्त होती हैं। आवश्यकता से अधिक एकत्र करने की दौड़ में मानसिक रूप से अति रिक्त होते जाते हैं। जीव की गति भी 'सद्गति' के अतिरिक्त ही होती है। स्पर्धा, ईर्ष्या, द्वेष, वैर, वैमनस्य, जलन, तनाव, आधि-व्याधि-उपाधि, अशान्ति, अतृप्ति, आसक्ति, असंतुष्टि, दुःख, पीड़ा, रोग-दोष और समस्त भटकन का कारण यही नाम रोग एवं अतिरिक्तता है। हम अतिरिक्तता को लेकर जन्म लेते हैं और अतिरिक्त रहते हुए जीते जी ही मर जाते हैं। मानव अनाम पैदा होता है और नामक व्यक्ति मरता है। नामक व्यक्ति के मरने और अविशेष भस्मी बन जाने पर भी **'नाम'**

यथावत् वैसा का वैसा अवशेष रह जाता है। **'नाम'** किसी भी देह विशेष (व्यक्ति विशेष) का ऐसा अनोखा व अखण्ड अवशेष है, कि व्यक्ति का किसी दुर्घटना में चाहे हाथ, पैर, सिर आदि कुछ भी टूट-फूट जाए, नाम का बाल बांका भी नहीं होता। **'नाम'** पंच-तत्त्वों से परे है क्योंकि देह के साथ आया नहीं था, अतः देह के साथ जाता नहीं।

मानव जीवन, जो मानव-देह के **'अर्थ'** सहित है, वही **'सार्थक'** है। किसी भी सारगर्भित, सार्थक प्रश्न में उसका **'अर्थ'** या उत्तर समाहित रहता है। प्रश्न के भीतर उत्तर छिपा रहता है और उस प्रश्न को हल करने वाला विद्वान उसके भीतर से **'अर्थ'** निकाल कर प्रकट कर देता है। तदनन्तर उत्तर या अर्थ प्रश्न के बाहर आ जाता है वह अर्थ प्रश्न से बिल्कुल पृथक् होता है। फिर प्रश्न स्वयं में रहता ही नहीं अथवा प्रश्न का महात्म्य समाप्त हो जाता है। यदि उत्तर पहले ही पता हो, तो प्रश्न हल करने वाला अवश्य सतर्क हो जाता है, कि जो उत्तर दिया है, वही आए। जहाँ ज़रा सी गलती का आभास भी होता है, वहीं वह संभल जाता है और उस दिशा में आगे नहीं बढ़ता। प्रत्येक सोपान पर वह सतर्क एवं जागरूक रहता है।

मानव-जीवन स्वयं में जशन, यजन अथवा हवन है। हवन शुरू करने से पहले हमें उसमें अर्पित किए जाने वाले विभिन्न पदार्थों एवं यज्ञ के अर्थ का ज्ञान था। हवन व यज्ञ का अन्ततः अन्त या प्रसाद **'भस्मी'** ही होगी। किसी भी मानव-देह के अन्त के अन्त का अन्त भस्मी है। यह अन्ततः तय है, कि मानव-देह जब, जहाँ, जैसी भी हो, कुछ भी हो, कहीं भी हो, वह अन्ततः अन्ततोगत्वा **'भस्मी'** ही बनती है। युगों-युगान्तरों से यह क्रम रहा है, चाहे वह सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग कोई भी काल हो। मानव जीवन में एक-एक श्वास स्वयं में स्वाहा-स्वाहा की आहूति है। हवन में अग्नि प्रज्ज्वलित करते ही भस्मी बननी शुरू हो जाती है। हवन के दौरान अग्नि की लपटों के सौन्दर्य, प्रकाश, जलते हुए विभिन्न पदार्थों एवं धूने को देखा जा सकता है; प्रचण्डता एवं ताप को महसूस किया जा सकता है, लेकिन **'भस्मी'** अदृश्य रहती है। **'भस्मी' अदृश्य**

रहती है और अग्नि की लपटों का सौन्दर्य, प्रकाश, जलते हुए विभिन्न पदार्थ, प्रचण्डता, धूना **दृश्यमान** होता है। जो दृश्यमान है, हवन के कुछ देर बाद अदृश्य हो जाता है और अदृश्य भस्मी दृश्यमान हो जाती है। उस दृश्यमान भस्मी को हवन के दौरान दृश्यमान अग्नि की लपटें नहीं देख सकतीं, लेकिन दृश्यमान भस्मी ने अदृश्य रहकर अग्नि की लपटों का सौन्दर्य, प्रकाश, जलते हुए पदार्थ, धूने और प्रचण्डता को देखा है। दृश्यमान अग्नि की लपटें बिना अदृश्य भस्मी के नहीं हो सकतीं, लेकिन दृश्यमान भस्मी उनके बिना है। लपटें हैं, तो भस्मी भी होगी। लपटों का प्रकाश व प्रचण्डता है, तो भस्मी भी होगी। जलते हुए विभिन्न पदार्थ होंगे, तो भस्मी भी होगी। लेकिन जब भस्मी **ही** होगी, तो मात्र भस्मी ही होगी, इनमें से कुछ भी नहीं होगा। भस्मी है भी, थी भी और होगी ही।

भस्मी किसी युग से बंधी हुई नहीं है। किसी देह विशेष अथवा विशेष देह से बँधी हुई नहीं है, यह सबका सम **'अर्थ'** है। कैसी भी किसी ने उम्र बिताई है, उसका अर्थ **'भस्मी'** ही है। मानव-देह रूपी प्रश्न का उत्तर ईश्वर ने सबको पहले ही स्पष्ट प्रत्यक्ष दिखाकर इसकी अवधि पूर्णतः गुप्त रखी है। भस्मी अदृश्य परमात्म तत्त्व की सत्ता या अस्तित्व का दृश्यमान निराकार तत्त्व है। आज तक जिनकी भस्मी बनी, उन्होंने स्वयं नहीं देखी और मैंने भी इसी प्रकार अपनी भस्मी नहीं देखनी। यह दैवीय रहस्य है। जीवन **में** विभिन्न भविष्यों के पूर्ण होने की कल्पना करके ही मैं उनके लिए कार्यरत होता हूँ। वे भविष्य पूरे हो जाते हैं और अतीत बन जाते हैं साथ ही अन्य अनेक भविष्य और खड़े हो जाते हैं। जीवन में हर भविष्य के लिए हम लालायित रहते हैं, कि पूरा हो जाए। जीवन का भविष्य जो सुनिश्चित, दर्शित, परिलक्षित है यह मेरे लिए हमेशा से भविष्य ही रहा है। जीवन **का** भविष्य एक ही है, वह है– डेढ़-दो किलो भस्मी।

'मैं देह हूँ' यह अज्ञान है और इस अज्ञान का नाम सन्देह है। इससे मैं अनभिज्ञ हूँ, यह बहुत बड़ा दुर्भाग्य है। मानव होते हुए भी यदि

मैं जानना नहीं चाहता, तो यह अभिशप्ति है। इस अभिशप्ति और दुर्भाग्य में मेरी समस्त भाग-दौड़, करना, पाना, खोना अतिरिक्त के लिए ही होता है। मुझे **'एक'** मानव-देह प्रभु ने दी है। मैं अपनी **'एक'** से सन्तुष्ट न होकर अतिरिक्त सम्बन्ध, जन-बल, मित्र आदि चाहता हूँ। **'एक'** के साथ स्वतः अनेक हैं ही। लेकिन मैं अनेकानेक चाहता हूँ। अतिरिक्त व्यक्ति (जन-बल), अतिरिक्त धन (धन-बल) और साकार जगत की विभिन्न भिन्न-भिन्न अतिरिक्त विधाओं को एकत्र करने एवं जोड़-तोड़ में मेरा मन अति रिक्त होता जाता है। जीव **'रिक्त'** और **'अभाव में'** मानसिकता को लिए पुनः पुनः जन्मता-मरता रहता है। वास्तव में मेरा **'कुछ नहीं'** है क्योंकि **'कुछ नहीं'** के साथ मैं नंगा-भूखा पैदा हुआ जिसका मुझे ज्ञान नहीं था। इसी प्रकार **'कुछ नहीं'** के बिना असंख्य अतिरिक्त विधाओं की मानसिकता का बोझ लिए जीते जी मर जाता हूँ तथा मृत्यु फिर भी भविष्य बनी रहती है।

होश सम्भालते ही 'मैं देह हूँ' अज्ञान (सन्देह) की अनभिज्ञता में हमने अपनी मृत्यु और भस्मी को जाने-अनजाने उपेक्षित किया है। स्वयं का जन्म, मृत्यु और पंच-तत्त्वों में विलय किसी ने नहीं देखा। देहान्त के उपरान्त जिस प्रकरण के अन्तर्गत सम्पूर्ण मानव-देह पंच-महाभूतों में विलीन होती है, उसमें यज्ञ या हवन की भाँति प्रकरण और प्राकट्य साथ-साथ चलते हैं। देहान्तान्त के अन्त में पंच-महाभूतों की देह के शव के पूर्णतः विलय होने पर **'भसम'** रूप में पूर्णतः अनाम व अरूप एक अविशेष पदार्थ (वस्तु) का प्राकट्य होता है, जो स्वयं में पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं आकाश से परे तत्त्वातीत तत्त्व है। इस तत्त्वातीत तत्त्व के प्राकट्य की अनिवार्यता है, कि देह का अन्त (मृत्यु) होने के बाद किसी भी तरह से और सब तरह से पंच-महाभूतों की देह अपने जगत सहित पूर्णतः पंच-महाभूतों में विलय हो जाए। इस प्रकरण का प्रमाण, परिणाम एवं महादृष्टा यह तत्त्वातीत तत्त्व (भस्मी) है। देह को मुखाग्नि देते ही इस तत्त्व का प्रकट होना प्रारम्भ हो जाता है अतः मुखाग्नि देने से

देह के पूर्णतः पंच-महाभूतों में विलय होने के सम्पूर्ण प्रकरण के क्षण-क्षण की महादृष्टा मात्र भस्मी है। भस्मी ही देह के अन्तान्त का प्रमाण, परिणाम एवं पंच-महाभूतों में पूर्णतः विलय होने के रहस्य की महादृष्टा है।

सद्‌गुरु कहता है, कि ''हे मानव ! तू शंकर का सुचिन्तन कर। 'सुशंकरस्य चिन्तनम्' भस्मी चिन्तन है। भस्मी को ससम्मान गंगा-यमुना में विसर्जित किया जाता है। एक अपमानित, दुर्जन, दुष्ट, चोर, ठग की **'भस्मी'** भी निर्दोष एवं पवित्र मानी जाती है। भस्मी महातत्त्व है, जो राजा-भिखारी, अमीर-गरीब, साधु-ठग, पापी-पुण्यी, उच्च कुल, निम्न कुल, धर्मी-अधर्मी की एक ही है। जीवन-काल में एक क्षण के लिए भी यह नहीं भूलना चाहिए, कि मेरा नाम, मेरी भस्मी की तरह अतिरिक्त है। मेरे साथ आया नहीं था और मेरे साथ जाएगा नहीं। अतः **'नाम'** परमात्मा का ही है। किसी व्यक्ति के मरने पर अर्थी उठाने वाले ''राम नाम सत्य है'' ही कहते हैं। अतः जीवन-काल में शीघ्रातिशीघ्र मुझे जानना और मानना होगा, कि मेरा नाम '**अतिरिक्त**' है, जिसने मुझे **'अति रिक्त'** कर दिया है। अतिरिक्त नाम ने मेरी पूरी देह को अधिकृत करके दबोच लिया और मुझे अतिरिक्त वस्तुओं, पदार्थों, जन-बल, धन-बल आदि के लिए भटकाया है। जो कुछ अतिरिक्त एकत्र हुआ, वह नाम का रहा और **'मैं'** जीवकोटि में नाम सहित सब कुछ छोड़कर असंतृप्त, आसक्त, रिक्त का रिक्त ही जन्मता-मरता हूँ, तो मेरे होने का अर्थ क्या है? मेरा होना ही जगत का होना है। जगत में रूप पृथक्-पृथक् हैं, नाम पृथक्-पृथक् हैं, लेकिन मैं एक ही है। अतः जैसा मैं हूँगा, वैसा ही मेरा जगत होगा। कृपया एकाग्र करिए।

दृश्यमान देह सहित जगत के दौरान अदृश्य का प्रतिनिधि निराकार पदार्थ रूप में दृश्यमान है। हम बिना दृश्यमान के रह नहीं सकते। भस्मी निराकार दृश्यमान पदार्थ है, जो मानव-देह का अर्थ है और मेरे (जीवात्मा के) पद का अर्थ है। मानव-देह का सदुपयोग यही है,

कि प्रत्येक स्तर पर प्रत्येक स्थिति, अवस्था, परिस्थिति में देह व जीवन के इस उत्तर को मिलाते रहें। यह दैवीय कानून है। इसलिए मानव देहधारी को होश सम्भालते ही एक-एक क्षण सतर्क एवं जागरूक रहना है, कि प्रश्न का उत्तर मिलाते रहे, कि मैं कुछ कर लूँ, पा लूँ, खो लूँ, बन-बना लूँ, अन्ततः अन्ततोगत्वा मेरी देह का अर्थ डेढ़-दो किलो भस्मी है। अतः अतिरिक्त पदार्थों एवं देह से सम्बन्धित विभिन्न विधाओं के लिए मेरी अतिरिक्त भाग-दौड़ न केवल निरर्थ एवं व्यर्थ है बल्कि अनर्थकारी है। वह देह जो एक दिन थी नहीं और अन्ततः रहेगी नहीं, वह मध्य में इस **'सद्'** से अवगत होने के लिए ही है। देह के इस अर्थ को दृष्टि में रखकर यदि देह का सदुपयोग नहीं करेंगे, तो मानव होते हुए भी जीवन पशुवत् होगा। स+अर्थ=सार्थक जीवन वही है जो अर्थ सहित हो। यह **'अर्थ'** जीवन का तत्त्व है, जो सम्मुख तो आता है, लेकिन अपनी देह का किसी के सामने नहीं आता। इसलिए **'भस्मी'** तत्त्व अदृश्य विरक्ति रूप में देह में होते हुए भी देहातीत एवं देह से अतिरिक्त है।

'नाम' अतिरिक्त है और **'भस्मी'** अतिरिक्त है। **'नाम'** स्वयं में अनाम और अरूप है तथा **'भस्मी'** भी ऐसी ही है। **'नाम'** जिस व्यक्ति विशेष की देह विशेष एवं अन्य विशेषों का प्रतिनिधित्व कर रहा था वह व्यक्ति नहीं रहा और वह अपनी सम्पूर्ण देह व जगत के विशेषों सहित भसम रूप में **'अविशेष'** हो गया। लेकिन नाम अवशेष रहता है। नाम देह रहित ऐसा अतिरिक्त अवशेष है, जो न देह के साथ आता है, न देह के साथ मरता है और न देह के साथ जलता है। देह पंच-महाभूतों में विलय हो जाती है और अविशेष दृश्यमान **'भस्मी'** उस विलय की साक्षी होती है। देह से अतिरिक्त यह भस्मी, देह काल में विरक्ति की द्योतक है। मैं पुनः वर्णन करूँगा। '**भस्मी**' देह का अविशेष है। जो 'भस्मी' विशेष (नाम विशेष)-विशेष (देह व जगत सम्बन्धी अन्य विशेष) देह की होते हुए भी, जब पूर्णतः प्रकट होती है, उससे किसी विशेष-विशेष देह का पता नहीं चलता। क्योंकि पूर्ण भस्मी के प्रकाट्य रूप में दृश्यमान

होने से पूर्व देह अपने जगत सहित पंच-महाभूतों में पूर्णतः विलीन हो जाती है। अतः भस्मी स्वयं में अविशेष है इसलिए **प्रकट भस्मी अविशेष देह** की है। जब उसकी अवधारणा द्वारा मैं उससे आत्मसात् हुआ, कि मैं भस्मी हूँ तो मेरी देह स्वयं में अविशेष हो जाएगी। नाम से परे, देहातीत, लिंगातीत, देशातीत, कालातीत, कर्मातीत, कर्तव्यातीत, धर्मातीत, सम्बन्धातीत और माया के तीनों गुणों से अतीत वह अविशेष विदेह देह दिव्य व पूजनीय होगी। सद्‌गुरु कृपा से जब साधक अपनी ही देह के इस अतिरिक्त तत्त्व से आत्मसात् होता है और आत्मसात् होते-होते भस्मीमय हो जाता है, तो जब कोई उसका नाम अथवा किसी का नाम लेता है, तो उसे शमशान में जलती हुई खोपड़ी के अतिरिक्त कुछ नज़र नहीं आता। वह अपने अक्षुण्ण पद की अनुभूति करते हुए देह सहित जगत की सभी विधाओं का रसास्वादन करता है।

सद्‌गुरु कहता है, कि ''तेरे नाम सहित जितना तेरा अतिरिक्त है, उसकी वजह से तू व्यक्ति विशेष और विशेष-विशेष व्यक्ति (V.V.I.P) है। तेरी देह का एक 'पदार्थ' भस्मी है, जो देहातीत है और देह का अर्थ एवं तेरे पद का अर्थ है। देह की यह भस्मी 'अविशेष' है और 'अविशेष देह' की भस्मी है। जब तू भस्मी की अवधारणा करेगा, कि मैं भस्मी हूँ उस समय तेरी विशेष-विशेष देह 'अविशेष' होनी शुरू हो जाएगी। देह के अविशेष पदार्थ भस्म की अवधारणा में तेरे समस्त विशेष-विशेष तेरे मानस में लुप्त होने लगेंगे। आत्मतत्व जाग्रत होने से वह देह 'मैं मयी' अविशेष देह हो जाएगी। उसका नाम दिव्य एवं ईश्वरीय हो जाएगा। अविशेष देह, अतिरिक्त नहीं, यथार्थ होगी। उसके तनिक अवलम्बन से प्रकट 'मैं' अतिरिक्त नहीं, विशुद्ध जीवात्मा की प्रतिनिधि होगी तथा देह सहित समस्त जगत अविलम्ब उस पर अवलम्बित हो जाएगा।

''बोल सियावर रामचन्द्र की जय''

(15 अप्रैल से 28 अप्रैल 2011)

यत्न

सर्वशक्तिमान परमात्मा स्वयं में अदृश्य व इन्द्रियातीत है। परमात्मा स्वयं में अदृश्य बहुआयामी कलाओं का स्वामी है और उन बहुआयामी कलाओं का असंख्यामी प्रदर्शन सृष्टि रूप में दृश्यमान है। यद्यपि प्रदर्शन क्षणिक एवं सतत् परिवर्तनशील है, तदपि ईश्वर के चेतन एवं आनन्द के होने का प्रमाण एवं दोनों के पूर्ण समन्वय का परिणाम है। इसलिए सम्पूर्ण दृश्यमान प्रदर्शन स्वयं में सद् है और परमात्मा की अदृश्य विभूतियों का प्रकाट्य है। इस प्रदर्शन से परमात्मा के अदृश्य स्वरूप का अनुमान लगता है और उसकी अदृश्य विभूतियों की अनुभूति होती है। परमात्मा की तीन विधाएँ हैं—सद्, चेतन और आनन्द, इसीलिए परमात्मा सच्चिदानंद है। **'सद्'** को सर्वोपरि एवं सर्वप्रथम इसीलिए रखा गया है, क्योंकि प्रकट व दृष्टिगोचर **'सद्'** से उस अगोचर व अदृश्य अनन्त चेतना और अनन्त आनन्द की अनुभूति होती है। उस अनुभूति से दृश्यमान **'सद्'** प्रदर्शन की पुष्टि हुई।

'सद्' प्रकाट्य में स्रष्टा की निर्माण, पालन एवं संहार तीन विधाएँ हैं। निर्माण, पालन एवं संहार स्वयं में प्रकाट्य है, क्योंकि **'निर्मित** का निर्माण होता है, **'पालित'** का पालन होता है और **'संहारित'** का संहार होता है। अतः निर्माण, पालन एवं संहार स्वयं में निर्मित, पालित एवं संहारित है। सम्पूर्ण युगों युगान्तरों की दृश्यमान सृष्टि का एकमात्र दृष्टा जीवात्मा है, जो स्रष्टा परमात्मा की भाँति अदृश्य है। जब दृष्टा की दृष्टि बहुत उदात्त और प्रदर्शन के दृष्टव्य के योग्य हो जाती है, तो वह प्रकाट्य में निर्माण, पालन,

संहार को नहीं निर्मित, पालित एवं संहारित को देखता है। तब दृष्टा कोई व्यक्ति न होकर स्वयं जीवात्मा होता है। जब अपने स्वरूप की अनुभूति हो जाती है, तो दृष्टा Process में नहीं पड़ता, बल्कि Processed का रसास्वादन करता है। Outcome of the process is processed. प्रकाट्य Processed है।

ईश-सृष्टि में प्रकाट्य है, प्रकरण नहीं है। सम्पूर्ण दृश्यमान सृष्टि में स्वयं परमात्मा ही एक से अनेक हो कर खेलता है। जिस स्तर का **'मैं'** दृष्टा हूँ, मैं सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में उसी स्तर का खेल देखता हूँ। एक दृष्टा निर्माण, पालन एवं संहार का आनन्द लेता है और एक दृष्टा निर्मित, पालित एवं संहारित का रसास्वादन करता है। यह दृष्टा का **'दृष्टि दोष'** नहीं **'दृष्टि भेद'** है। जहाँ अहंकार हो जाए, कि मैंने इतना किया तब वह निर्मित हुआ अथवा पालित हुआ, वह **दृष्टि दोष** है। कुछ निर्माण व पालन के निमित्त बनते हैं, कुछ किसी निर्माण की मात्र योजना बनाकर चले जाते हैं, कुछ निर्माण करके किसी कारणवश स्थानान्तरित हो जाते हैं और कुछ सीधा निर्मित का रसास्वादन करते हैं। दृष्टा एक है, वह भी **'मैं'** हूँ, यह भी **'मैं'** हूँ। यह एक ही दृष्टा का दृष्टि भेद है। कुछ लोगों के हृदय में निमित्तता का भाव भी नहीं होता। उनके द्वारा निर्मित, पालित का निर्माण व पालन होता है और वे इसका भरपूर आनन्द लेते हैं। क्योंकि वे **प्रयत्न** नहीं करते उनके द्वारा स्वतः कुछ **यत्न** होता है, जो ईश्वर स्वयं कराते हैं। साथ ही उन्हें इसकी अनुभूति भी होती है। इसलिए ईश्वरीय यत्न का प्रकाट्य ही उनको देह व देहों द्वारा हुए प्रकरणों में दृष्टिगत होता है।

जब निर्मित के लिए निर्मित का निर्माण किया जाता है, कि मैं ऐसा करके ऐसा बना लूँगा, तो वहाँ **'दृष्टि दोष'** है। वह कभी भोग नहीं कर सकता। जो दृष्टि अहं से निर्माण करती है, वह निर्मित के भोग से वंचित कर दी जाती है। जितने लोगों ने उसके निर्माण की योजना बनाई और निर्माण किया, वह निर्मित का भोग करने वालों के लिए किया। Processed का भोग करने वाले महामानवों को जो-जो चाहिए दैवीय शक्तियाँ कर्ता भाव से

निर्माण व पालन करने वालों से करवाती हैं। तद्नुसार उसमें संशोधन, परिवर्तन, पुनर्निर्माण एवं नवीनीकरण होता रहता है। जिन महामानवों ने सब कुछ प्रभु पर छोड़ा होता है और जिनमें स्वयं निर्माण और पालन की धारणा ही नहीं है, प्रभु स्वयं उनके लिए सब कुछ करते-करवाते हैं।

युगों-युगान्तरों का सम्पूर्ण मायिक प्रदर्शन, जो अनादि काल से हो चुका है, हो रहा है और अनन्त तक होगा, इसकी प्रतिनिधि एक मानव-देह है। यह दर्शित मानव-देह काल से बंधी है। इसके होने से इसका भूत, भविष्य, वर्तमान है। **जो दृष्टा है, वह 'है', 'था' एवं 'गा' से परे है। 'सद्'** का दर्शन चेतन और आनन्द है। दृश्यमान दृश्य का जो दृश्यमान नहीं होता, उसकी अनुभूति उसका **'दर्शन'** है। प्रदर्शन की हर दृश्यमान विधा जब अदृश्य की अनुभूति कराए, तो वह प्रभु के अदृश्य चेतन व आनन्द स्वरूप की अनुभूति कराएगा। तब साकार-निराकार के समस्त आकारों-प्रकारों में मात्र प्रभु का दर्शन होगा।

सम्पूर्ण कोटि-कोटि दृश्यमान महाब्रह्माण्ड प्रभु का **'यत्न'** हैं। इनके निर्माता, पालनकर्ता एवं संहारकर्ता प्रभु ही हैं। इस समस्त प्रकाट्य में मानव बुद्धि प्रयत्न करके **'प्रदर्शन'** को **'प्रश्न'** बना देती है। सद्गुरु कहता है, कि "मानव ! तू सतर्क रह और प्रतीक्षा कर। उचित समय प्रभु अपने यत्नानुसार तुझे स्वतः प्रेरित करेंगे और साथ ही उस कार्य में सहायक, प्रबन्धक, बाधक सभी लोगों को प्रेरणा देंगे। उसी के अनुसार प्रकृति की छटाएँ होंगी। मानव-जीवन तुझे एक सुवर्ण अवसर मिला है, जो बहुत ही क्षणिक और क्षण-भंगुर है। प्रभु के यत्नानुसार तू चाहे भी तो प्रयत्न नहीं कर सकता। **'यजन'** द्वारा स्वाहा-स्वाहा के रूप में प्रभु के **'यत्न'** की वाह-वाह कर, हे मानव ! यही तेरा कर्म है, जो मात्र कृपासाध्य है।"

प्रभु ने सम्पूर्ण महाब्रह्माण्ड यज्ञ रूपी यत्न से प्रकट किया है। प्रभु के इस **'यत्न'** के रसास्वादन के लिए प्रयत्न का विचार घातक है। सदगुरु सतर्क करता है, "जो तेरे द्वारा भी होगा, वह भी प्रभु का ही यत्न है। **'यत्न पर यत्न'** प्रयत्न है। जब तेरा प्रयत्न भी प्रभु का यत्न बन जाए, (प्रभु करा रहे हैं, मैं कुछ नहीं कर रहा)

तभी **'तू'** प्रदर्शन का रसास्वादन करेगा। तू देख, प्रभु क्या चाहते हैं? प्रभु के यत्न पर तेरा यत्न, प्रयत्न होगा और तू प्राप्य की प्राप्ति करेगा। जो लब्ध होना है, उसे उपलब्ध करके उसे भोग के अधिकार से वंचित कर दिया जाएगा। कोई ऐसा प्रयत्न नहीं है, जो यत्न को पा सके। **प्रयत्न सीमित मानवीय बुद्धि का है और यत्न परमात्मा का है। प्रयत्न व्यक्तिगत है, यत्न समष्टिगत है।** कोई कृत्य व्यक्तिगत है ही नहीं। तेरे लिए **'यजन'** ही **यत्न** है। प्रभु की योजनाओं का यजन द्वारा प्रकाट्य है, जो तुझे तेरे द्वारा और अन्य लोगों द्वारा होता दृष्टिगत हो, वह तेरी दृष्टि में प्रभु का **'यत्न'** ही हो। तेरे लिए प्रकरण भी प्रकाट्य होगा और प्रकाट्य भी प्रकाट्य होगा। यदि तू आनन्द नहीं लेगा, तो जो आनन्द ले रहे हैं, वो भी तू ही होगा। तेरा मानस इतना विस्तृत हो जाएगा, कि सम्पूर्ण विश्व उसमें समा जाएगा।''

चेतन और आनन्द का अनन्त समन्वय **'यत्न'** है और उस समन्वय से अनन्त **'सद्'** प्रकट हुआ है। आपकी **सोच**, आपके **कृत्यों** और उनके एवज़ में **कुछ पाने अथवा खोने में** कोई तालमेल नहीं होता। सोचा कुछ, और किया कुछ, तथा जो पाया उसका उस सोच एवं कृत्य से कोई सम्बन्ध नहीं होता। कभी सोचने मात्र से वस्तु प्रकट हो जाती है, कभी बहुत कुछ करके भी न केवल कुछ हाथ नहीं आता, बल्कि जो पास होता है वह भी खो जाता है। अनेक बार ऐसा भी होता है, कि जो पाना चाहते थे, उसका बिल्कुल विपरीत मिलता है। We are tempted and we make attempts. Our all attempts are for attaining temporary temptations and therefore we are temperatured all the time. Whatever we attain will never be according to our attempts. You may gain it just by thinking of that attempt, just in the beginning or middle of that attempt or you may not get anything in spite of attempting again and again.

सद्गुरु कहता है, कि ''जो कोई ऐसा कहता है, कि मैंने सोचा था, फिर प्रयत्न करके पा लिया, वह झूठ बोलता है। ऐसा हो ही नहीं सकता। जो सोच के प्रयत्न करके पाया, वह उसे भोग तो देगा ही नहीं, उस पर प्रारब्ध का केस भी

चलेगा। यहाँ प्राप्य की प्राप्ति है अतः तू प्रयत्न करके लब्ध को ही उपलब्ध करता है। ईश्वर के यत्न के लिए तेरा दिल-दिमाग कोई प्रयत्न सोच भी नहीं सकता।'' पशु और मानव में मुख्य अन्तर इसी रूप में प्रकट होता है। अक्सर मानव **देह के लिए** ही प्रयत्नशील रहता है, वह मानव-देहधारी होते हुए भी मानव-जीवन का रसास्वादन नहीं कर सकता। जब कोई मानव-देहधारी **'देह काहे के लिए है'** इसे जानने के लिए ही जीता है, तभी वह मानव कहलाने योग्य होता है।

जीवन में जब **'मैं'** होश सम्भालता हूँ उससे पहले मेरे जीवन के बहुत से परिदृश्य निकल चुके होते हैं। अपने होने का आभास होते ही मैं बनी-बनाई सम्पूर्ण देह को जगत सहित अपने साथ पाता हूँ। मेरी देह और जिन माता-पिता के अंश से मेरा जन्म हुआ होता है, वे बने-बनाए मुझे लब्ध होते हैं। पंच-महाभूत—पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश अपनी समस्त विधाओं और ऐश्वर्य के साथ मुझे स्वतः लब्ध होते हैं। अतः इस सबके लिए मेरी होश की कोई आवश्यकता नहीं थी। होश में आने की मैंने परिभाषा दी थी, कि ''जब मैं अपने लिए निर्णय ले सकता हूँ, दूसरों को परामर्श दे सकता हूँ और कुछ करने योग्य हो जाता हूँ, उस स्थिति को होश आना कहा जाता है।'' महादुर्भाग्यवश, होश आते ही मैं प्रभु के यत्न को प्रयत्नों द्वारा अस्तव्यस्त कर देता हूँ। मैं अपने होश सम्भालने से पहले की स्थितियों के विषय में विचार ही नहीं करता। जिस स्थान, ग्रह-नक्षत्र में मेरा जन्म हुआ, वह मेरा चुनाव नहीं था। मेरे माता-पिता किसी अन्य द्वारा चुने गए। होश आने के बाद प्रभु मेरे बच्चों की माँ अथवा मेरे बच्चों के पिता के चुनाव का उत्तरदायित्व मुझे क्यों देंगे? मुझे होश क्यों आई, जब मेरी देह का निर्माण और आज तक पालन-पोषण मेरी होश के बिना हो गया और अन्ततः जब भी, जैसे भी मेरी होश जाएगी तो सब कुछ मेरे लिए परमात्मा द्वारा ही किया-करवाया जाएगा, तो अब मेरी होश की भूमिका क्या है?

सद्‌गुरु कहता है, कि ''तू जिनसे पैदा हुआ, वह तेरा चुनाव नहीं था, इसलिए तेरी सन्तान जिनसे पैदा होगी, वह लड़की या लड़का भी तेरा चुनाव नहीं होगा। तेरी पत्नी अथवा तेरा पति मात्र तेरी पत्नी अथवा तेरा पति

नहीं होगा, तेरी होने वाली सन्तान की माँ अथवा पिता भी होगा। इसलिए प्रभु पर सब कुछ छोड़ दे। जो सन्तान जब, जैसी, जिससे होनी है, वह निर्धारित है। तू इस विषय में अपनी अमूल्य होश को व्यर्थ मत कर, तुझे इसलिए होश नहीं आई है। तेरी सन्तान के माता-पिता भी उसी तरह निर्धारित हैं, जैसे तेरे माता-पिता तेरे लिए तेरी होश आने से पहले निर्धारित थे। तेरे माता-पिता के माता-पिता भी प्रभु ने ही निर्धारित किए थे। तू पहले अपनी होश का दर्शन कर, कि तुझे होश क्यों आई है? तुझे परमात्मा ने सर्वोत्कृष्ट चेतना युक्त बुद्धि दी है, उससे तू विवेकशील होकर विचार करेगा, तो पाएगा, कि तू कुछ नहीं जानता है और जान भी नहीं सकता। अतः जिसने तुझे होश दी है, उसके आगे अपनी होश का समर्पण कर दे। मानव-देह तुझे एक स्वर्ण अवसर मिला है, तू व्यर्थ की बातों में अपनी होश को बरबाद मत कर। अपने होश में आने से पहले की स्थितियों पर विचार करते हुए होश-दर्शन कर। तुझे सम्पूर्ण चराचर सृष्टि एवं स्वयं अपने में प्रभु के यत्न का दर्शन हो जाएगा। तुझे प्रारबधवश एक देह मिली है, जो उपहार नहीं है; क्योंकि देने वाला इसे कभी भी छीन सकता है। सब कुछ तेरे लिए हुआ-हुआ है, प्रभु समय-समय पर तेरा मन वैसा ही बनाएँगे और प्रारब्धानुसार जो तुझे लब्धियाँ होनी होंगी, तदनुसार तुझसे तेरे जगत सहित करवाएँगे। तू लब्ध को अपने प्रयत्नों द्वारा यदि उपलब्ध करेगा, तो दैवीय अधिनियमानुसार उनके भोग से वंचित कर दिया जाएगा।''

प्रभु ने पशु-पक्षी तथा समस्त प्राणी जगत में प्रत्यक्ष दिखाया है, कि सबका पालन-पोषण करने वाले स्वयं प्रभु हैं। ''**जीवन के लिए,** तो पशु-पक्षी आदि भी करते हैं, तू मानव है, तू सोच **जीवन काहे के लिए है।** पशु-पक्षी भी जीवन के लिए आवश्यकता से अधिक एकत्र नहीं करते, माँ प्रकृति उनका समस्त अनुकूलन एवं प्रबन्धन करती है। तेरा सारा जीवन भी यदि जीवन के लिए ही है, तो तुझमें और पशु में कोई अन्तर नहीं है। तू सोच, कि प्रभु ने तुझे मानव-देह क्यों दी? तू सोच सकता है, कि वह मानव-देह जो तुझसे कभी भी छीन ली जाएगी, उससे तू क्या कर रहा है, कब तक करेगा और किस-किस के लिए करेगा और जो तू पाना-बनना-बनाना चाहता है, वह हो भी जाए, तो

क्या हो जाएगा? कुत्ता, घोड़ा, सांप, शेर, गधा नहीं सोच सकते, कि जीवन काहे के लिए है, **तू होश में आते ही विचार कर, कि जीवन काहे के लिए है?** पशुओं को अपने कृत्यों का अभिमान भी नहीं है, निष्काम कर्म पशु करते हैं। प्रभु उन्हें उनके निष्काम कर्मों का क्या फल देते हैं? तू **'कर्म का मर्म'** समझ, कि कर्म है क्या? तू कर्म का रहस्य सोच, कि कोई भी कर्म तेरे अपने हाथ में नहीं है। सब कुछ प्रभु का यत्न है। तेरे अपने प्रयत्न न केवल निरर्थक एवं व्यर्थक हैं, बल्कि अनर्थक हैं।''

अपनी शक्ति का जिसे ज्ञान नहीं है, उस निरभिमानी की सुषुप्त शक्तियाँ सद्गुरु जाग्रत करके ईश्वरीय बना देता है। पंच-तत्त्वों की पूजा की जाती है। इन सहज जड़ निरभिमानी तत्त्वों की पूजा से हमारी देह में ईश्वरीय शक्तियाँ जाग्रत हो जाती हैं। जब साकार पदार्थ, प्राणी और किसी भी विधा का रस, सार या तत्त्व ग्रहण कर लेते हैं, तो वह साकार नहीं निराकार हो जाता है। फल का रस निकालने के बाद फल का आकार नहीं रहता। महासशक्त होते हुए भी सहज जड़ पाँचों तत्त्वों को अपना, अपनी शक्तियों का कोई ज्ञान नहीं है, इसलिए ये निरभिमान हैं। शक्ति का ज्ञान होना और शक्ति का अभिमान होना, दोनों पृथक्-पृथक् हैं। जहाँ अपनी शक्ति का ज्ञान होगा, वहाँ उसका अभिमान अवश्य होगा, अर्थात् शक्ति को अपना मानने से स्वतः अभिमान हो जाएगा। कोई भी शक्ति ईश्वर प्रदत्त ही होती है। अतः सभी शक्तियों को प्रभु चरणों में समर्पित करना ही तेरा कर्म है, जिससे तू ईश्वर के यत्न का रसास्वादन कर सकता है।

''बोलिए सियावर रामचन्द्र की जय''

(17 मई से 22 मई 2011)

प्रपंच

पंच-महाभूतों द्वारा निर्मित, पालित एवं संहार के बाद इन्हीं में विलय हो जाने वाला सम्पूर्ण साकार व निराकार दृश्यमान जगत **प्रपंच** है। निराकार का सन्धि-विच्छेद करें तो हुआ—निर+आकार। अर्थात् जिसका अपना कोई आकार नहीं है, वह निराकार है। निराकार, स्वयं में किसी विशेष आकार से रहित है और साकार, आकार सहित है। समस्त प्राणियों एवं चराचर जगत की समस्त विधाओं की पहचान आकार से की जाती है। जलचरों, थलचरों, नभचरों, कीट-पतंगों और मानव आकारों में असंख्य प्रकार हैं। विभिन्न प्रकार के फूल, फल, वनस्पतियाँ एवं प्राणी, जगत में हैं। प्रकृति ने न केवल साकार बल्कि निराकार में भी प्रकार दिए हैं। पंच-महाभूत स्वयं में निराकार हैं, और दृश्यमान हैं। पृथ्वी कहीं हरी-भरी है, कहीं पथरीली, कहीं बंजर व कहीं उपजाऊऽहै। विभिन्न प्रकार के समुद्र, नदियाँ, कुएँ, तालाब, झरने आदि जल के स्रोत हैं। इस प्रकार **साकारित एवं निराकारित दोनों प्रकारित** हैं। कृपया एकाग्र करिए, मैं सविस्तार वर्णन करूँगा।

''एकोऽहम् बहुस्याम्'' सृष्टि के प्रकाट्य के लिए वह महाकाल सत्ता ब्रह्मात्मा, दो अदृश्य स्वरूप धारण करती है—परमात्मा एवं जीवात्मा। **परमात्मा स्रष्टा है** और जो परमात्मा ने सृजन किया है, उसका एक **दृष्टा जीवात्मा** है। इस सृजन के निर्माण, पालन और संहार तीन अंग हैं। तीनों दशानन गति से एक ही समय में साथ-साथ होते रहते हैं। ईश्वरीय सृष्टि में तीनों अंगों में परस्पर अति संतुलन बना रहता है। ऐसा नहीं, कि निर्माण बहुत अधिक हो गया और उस सबका पालन नहीं हो पा रहा। संतुलित रूप से संहार, पुनर्निर्माण तथा पालन अविरल, अबाध, निरन्तर, चिरन्तन, अकाट्य, परम विशिष्ट, अति संक्षिप्त, अति सारगर्भित, उद्देश्यात्मक,

गुणात्मक (दशानन) गतियों में अदृश्य रूप से सतत् होता रहता है। जीवात्मा इस ईश्वरीय सृजन के तीनों अंगों का एकमात्र अदृश्य दृष्टा है। स्वयं में अदृश्य अतिशक्ति 'विरक्ति' और उससे निःसृत पंच-प्राणों की महाशक्ति में परस्पर अदृश्य में स्वतः, स्वान्तः सुखाय क्रीड़ा हुई और उसके सुफल स्वरूप पंच-महाभूतों का प्रकाट्य होता है। प्राण, अपान, समान, उदान एवं व्यान से क्रमशः अग्नि, वायु, पृथ्वी, जल एवं आकाश का प्रकाट्य होता है। पंच-महाभूतों को प्रकारित करना प्रकृति का कार्य है, साकारित माँ भवानी करती है। सभी आकारों का उद्गम पंच-महाभूत स्वयं में निराकार हैं। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं आकाश और इनके संगम से निर्मित असंख्य आकारों को विभिन्न, भिन्न-भिन्न प्रकार देने वाली **'प्रकृति'** आद्याशक्ति माँ भवानी की एक विधा है। **'प्रकृति' प्रकारों की रति है।** कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों के युगों-युगान्तरों में विस्तृत मायिक जगत में, प्रकृति द्वारा **'प्रकारित'** एवं आकारों की स्वामिनी माँ भवानी (सुकृति) द्वारा **'साकारित'** **'मानव-देह'** सर्वोत्कृष्ट, परम रहस्यमयी, विशेष रूप से चमत्कारिक एवं अति विलक्षण सुकृति है।

मानव-देह में, देह का प्रतिनिधित्व रूप या चेहरा करता है। पंच-महाभूतों का पूर्ण पृथक्-पृथक् प्रतिनिधित्व एक चेहरे में है। अग्नि का नेत्र, वायु की त्वचा, पृथ्वी की नाक, जल की जिह्वा तथा आकाश का प्रतिनिधित्व कान करते हैं। इसीलिए किसी की पहचान चेहरे से की और करवाई जाती है। इसी प्रकार पाँचों ईश्वरीय महाविभूतियों का प्रतिनिधित्व पंच-महाभूतों में है। शक्ति का अग्नि, ख्याति का त्वचा, ऐश्वर्य का पृथ्वी, सौन्दर्य का जल तथा ज्ञान का आकाश तत्त्व प्रतिनिधित्व करते हैं। देह सहित सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड पंच-महाभूतों द्वारा ही निर्मित एवं पालित होते हैं तथा अन्ततः इन्ही पंच-महाभूतों में विलय हो जाते हैं। सम्पूर्ण प्रदर्शन में साकार एवं निराकार दोनों दृश्यमान हैं तथा निर्माण, पालन एवं संहार इस प्रकाट्य की तीन विधाएँ हैं।

मानव से अन्य, समस्त (जलचर, थलचर, नभचर) प्राणी जगत माँ

प्रकृति के अधीन है। इसलिए ईश्वरीय संविधान की 1008 धाराएँ उन पर लागू नहीं होतीं। मानव में, प्रकृति में हस्तक्षेप करने की क्षमता है। मानव बुद्धि ही इस साकार-निराकार प्रकाट्य के प्रकारों के सौन्दर्य, कलात्मकता, विभिन्नता, विविधता की प्रशंसा कर सकती है। मानव-बुद्धि में यदि अहं होगा और समर्पित नहीं होगी, तो यह प्रकृति की आलोचना, प्रत्यालोचना करते हुए हस्तक्षेप करेगी। मानव ही प्रकृति में बाधा डाल सकता है और डालता है। मानव यदि ईश्वर के विमुख भी हो, तो भी वह स्रष्टा इसके विमुख कभी नहीं होता। अहंवश यदि मानव परमात्मा की उपेक्षा भी करे, तो भी परमात्मा इसकी **उपेक्षा** नहीं करता और इससे ही **अपेक्षा** रखता है, कि यह कभी न कभी उस अदृश्य सत्ता के प्रति पूर्णतः समर्पित हो जाए और उसकी प्रत्येक प्रकट विधा की प्रशंसा करे।

पंच-महाभूतों में निर्मित, पालित एवं संहारित समस्त साकार और निराकार जगत रूपी प्रपंच प्रकाट्य है। प्रकाट्य से पहले अप्रकट था और प्रकाट्य के बाद अप्रकट हो जाएगा तथा जब प्रकट है, तो भी अप्रकट एवं अदृश्य भी है ही। ईश्वर की **अदृश्य** व **अप्रकट** असंख्य बहुआयामी कलाओं के होने का **प्रमाण** एवं **परिणाम** यह प्रकट दृश्यमान प्रदर्शन ही है। पंच-महाभूतों की सम्पूर्ण निराकार व साकार सृष्टि में अनादि से अनन्त तक के समस्त प्रदर्शन का विलक्षण, अत्यन्त कलात्मक, परम चमत्कारिक एवं अति रहस्यमय प्रतिनिधित्व मात्र एक मानव-देह करती है। यह मानव-देह जब भी **'है'** युगों-युगान्तरों के सम्पूर्ण जगत सहित है। अप्रकट अनन्त महासागर की नाईं है। सागर से बूँद प्रकट हुई, बूँद तो बूँद है, सागर नहीं हो सकती। दृश्यमान प्रदर्शन स्वयं में प्रकाट्य है। जिज्ञासा उठती है, कि इसका अप्रकट व अदृश्य क्या है?

सम्पूर्ण प्रकाट्य का एक **'स्रष्टा'** परमात्मा है और एक जीवात्मा उसी की **'दृष्टा'** विधा का प्रतिनिधित्व करता है। स्रष्टा और दृष्टा दोनों अदृश्य हैं। जैसे ब्रह्मात्मा की परमात्मा एवं जीवात्मा दो अभिन्न विधाएँ हैं, उसी प्रकार महाकाल की काल एवं अकाल स्वयं में अभिन्न विधाएँ हैं। अदृश्य की बहुत सी अदृश्य कलाएँ हैं, जिनका कुछ अंश इस असंख्यामी प्रदर्शन में

दृश्यमान होता है। प्रकट रूप में दृश्यमान होने पर उन कलाओं की पुष्टि-दर-पुष्टि होती रहती है। युगों-युगान्तरों में विस्तृत कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों का यह समस्त प्रदर्शन एक जाग्रत मानव-देह के होने से है। इसमें **'था'** (भूत) और **'गा'** (भविष्य) भी उस एक के होने से है। अतः दर्शित एक मानव-देह न केवल समस्त दृश्यमान प्रदर्शन (जो आज तक हुआ था, हो रहा है और आगे युगों-युगान्तरों में होगा) की प्रतिनिधि है, बल्कि अदृश्य जीवात्मा, परमात्मा एवं उसकी असंख्य अदृश्य बहुआयामी कलाओं की प्रतिनिधि भी है। दृश्यमान के होने से ही तीनों अदृश्य विधाओं का दर्शन होता है। **'मैं'** शब्द के प्रकाट्य के लिए एक जाग्रत मानव-देह का होना अत्यावश्यक है। **'मैं'** शब्द प्रकट होकर देह सहित समस्त युगों-युगान्तरों के दृश्यमान प्रदर्शन, अदृश्य स्रष्टा, उसकी अदृश्य व अप्रकट कलाओं एवं एक अदृश्य दृष्टा (जीवात्मा) का होना प्रमाणित करता है। कृपया एकाग्र करें, अध्यात्म के अति विशिष्ट एवं गोपनीय विषय को मैं परम सद्गुरु कृपा से आप समस्त जिज्ञासुओं के लिए अनावृत कर रहा हूँ।

प्रकाट्य की सत्ता एवं कारण अप्रकट है। प्रकाट्य के दृष्टा को प्रकट होने के बाद ज्ञात हो जाता है, कि क्या अप्रकट था क्योंकि जो प्रकट हुआ, वह पहले अप्रकट था। जब वह अप्रकट था, तो ज्ञात नहीं था, कि क्या प्रकट होगा। कोई वस्तु, पदार्थ, प्राणी और साकार व निराकार प्रकाट्य की कोई विधा जो प्रकट होती है, वह अप्रकट अवश्य होती है। प्रकट होने से पहले क्या प्रकट होगा एवं कुछ भी, कैसा भी प्रकट होगा भी या नहीं, यह ज्ञान नहीं होता। जो प्रकट हुआ, वह अप्रकट में क्या था, यह नहीं मालूम, प्रकट में क्या है, यह नहीं मालूम। प्रकाट्य के बाद अप्रकट होकर उसका क्या हुआ, यह भी दृष्टा को मालूम नहीं होता। किस समय क्या प्रकट होना है, नहीं मालूम और किस समय क्या अप्रकट होना है, यह भी नहीं मालूम। यदि प्रकट होकर कुछ अप्रकट हो गया है, तो मालूम हो जाता है, कि यह अप्रकट हो गया। कृपया एकाग्र करें, मैं पुनः वर्णन करूँगा।

यह प्रदर्शन प्रकाट्य है। जो कल प्रकट हुआ था, वह अप्रकट हो

गया। आने वाला कल यदि मेरे लिए प्रकट होगा, तो मेरे लिए कुछ प्रकट होगा और प्राकाट्य नित नूतन है। जिस अप्रकट से कुछ भी प्रकट हो रहा है, वह कोई पुराना नहीं है, वह सदा-सदा नूतन ही है। प्रत्येक प्राकाट्य **'है'** (अप्रकट) से प्रकट **'हुआ है'** और प्रकट होकर अप्रकट हो जाता है। यदि **'है'** (अप्रकट) न होता तो **'हुआ'** (प्रकट) न होता। अतः **'हुए'** (प्रकट) ने **'है', 'है'** (अप्रकट) को प्रमाणित किया है। **'है', 'है'** अदृश्य व अप्रकट है तथा **'हुआ', 'हुआ'** दृश्यमान प्राकाट्य है। जो हुआ है वह रहे**'गा'** नहीं और पहले **'था'** नहीं। पुनः वह अदृश्य व अप्रकट **'है', 'है'** में विलीन हो जाएगा। अप्रकट **'है', 'है', 'है',** जब कुछ प्रकट है तब भी है और जब कुछ प्रकट नहीं है तो भी अप्रकट है ही। प्रकट होने से पहले अप्रकट था और प्रकट के अप्रकट हो जाने के बाद अप्रकट होगा। **'अप्रकट'** के लिए **'था' 'है'** और **'गा' 'प्रकट'** की सापेक्षता में कहा जाता है। अर्थात् कुछ प्रकट हुआ था, वह अप्रकट हो गया। कुछ अब प्रकट है, वह अप्रकट हो जाएगा और जो प्रकट होगा वह अप्रकट से प्रकट होगा। अप्रकट का क्या हुआ? कि अप्रकट '**है**'। अप्रकट से कुछ भी, कभी भी प्रकट हो सकता है। प्रकट **'काल'** है और अप्रकट '**अकाल'** है।

प्राकाट्य समुद्र में बूँद बराबर भी नहीं है। अप्रकट तो महासागर है, उससे कुछ भी प्रकट हो सकता है। यद्यपि जो अभी-अभी प्रकट होकर उसी अप्रकट में विलय हो गया, वह पुनः प्रकट नहीं होगा, पुनः कुछ अन्य प्रकट होगा। **अप्रकट वही रहता है, प्रकट बदलता रहता है**। इसे शास्त्र ने नित नूतन कहा है। **'प्रकट'** नित नूतन है और **'अप्रकट'** सदा-सदा नवीन ही है। सम्पूर्ण दृश्यमान प्राकाट्य में **'सत्ता' 'अस्ति'** और **'है'** प्राकाट्यातीत है। **'है'** वस्तुतः **'अप्रकट'** है। अप्रकट **से** कुछ न कुछ प्रकट होता रहा **था**, हो रहा **है** और होता रहे**गा**। अप्रकट, प्रकट नहीं हुआ। अप्रकट **से** प्रकट हुआ **था**, हुआ **है** और हो**गा**। हर प्रकट पहले **था** नहीं और **रहेगा** नहीं और जब प्रकट **'है',** तो भी सत्ता अप्रकट की ही है। अप्रकट सम्पूर्णतः प्रकट नहीं होता, अप्रकट **से** जो कुछ न कुछ प्रकट होता है, वह मूलतः अप्रकट की अनुभूति के लिए

है। कृपया एकाग्र करें, मैं पुनः वर्णन करूँगा।

प्रकट ने अप्रकट के होने का आभास करा दिया है, कि **अप्रकट है, है, है**। **प्रकट का अस्तित्व, अप्रकट** है। प्राकट्य में **'है, गा, था'** **'काल'** है। अप्रकट **'है'** **'अकाल'** है और जहाँ **'है'** भी कहने में नहीं आता, वह **'महाकाल'** है। **'प्रकट'** से ज्ञान होता है, कि अप्रकट में कुछ ऐसी अदृश्य बहुआयामी कलाएँ हैं, जिनसे युगों-युगान्तरों में असंख्यामी प्रदर्शन प्रकट होता रहता है। प्रदर्शन क्षणिक एवं क्षण-भंगुर है और अप्रकट शाश्वत् है। क्षणिक का **'हैत्व'** अथवा होना, शाश्वत् का होना है। दृश्यमान अथवा प्रकट के होने से अदृश्य व अप्रकट की अनुभूति हुई। जब दृश्यमान प्राकट्य नहीं रहा, तो अदृश्य व अप्रकट की अनुभूति तो रहती है, क्योंकि अनुभूति स्वयं में अदृश्य है और अदृश्य की ही है। इस प्रकार एक मानव-देह सम्पूर्ण अदृश्य और अप्रकट की प्रतिनिधि भी है। क्योंकि जो दर्शित मानव-देह है, वह भी अप्रकट से प्रकट हुई, पहले थी नहीं और रहेगी नहीं। अभी भी जो प्रकट है, उसका आधार अप्रकट ही है। अतः प्रकट होते हुए भी इसमें कुछ अप्रकट व अदृश्य अवश्य है। एक प्रकट मानव-देह का अप्रकट सम्पूर्ण महा अप्रकट का प्रतिनिधित्व करता है।

रात्रि की निद्रा में, मूर्च्छा में, विस्मृति में देह होते हुए भी मेरे लिए अप्रकट हो जाती है। प्रकट देह का एक ही क्षेत्र ऐसा है, जिसमें पंच-महाभूतों की देह अपने चराचर जगत सहित पंच-महाभूतों में विलय होकर अदृश्य हो जाती है। वह क्षेत्र है—**भस्मी।** समस्त भिन्न-भिन्न मानव-देहों का एक ही पदार्थ ऐसा है, जो **'सम'** है और प्रकट है। **'भस्मी'** राजा-भिखारी, मालिक-नौकर, बड़े-छोटे, नए-पुराने की एक ही है तथा एक ही जैसी है। भस्मी तत्त्वातीत तत्त्व है, जो किसी देह **से** है, लेकिन किसी देह **का** नहीं है। प्रकट देह का प्रकट पदार्थ **'भसम'** प्रकाट्यातीत व देहातीत है, इसलिए सबका एक ही जैसा होते हुए भी स्वयं में किसी का नहीं है। इस प्रकट (भसम) से किसी प्रकट (देह) का अनुमान नहीं लगाया जा सकता। इसका कोई भूत, भविष्य नहीं है इसलिए इसका वर्तमान भी नहीं है। इस

भस्मी की अवधारणा एवं अनुभूति स्वयं में महा अप्रकट व अदृश्य की अनुभूति है। मैं सविस्तार वर्णन करूँगा, कृपया एकाग्र करें।

जब **'मैं'** अप्रकट था, तो क्या था, जब मैं अप्रकट हूँगा, तो क्या हूँगा, जब मैं होते हुए (निद्रा, मूर्च्छा, विस्मृति, मृत्यु, भस्मी) अप्रकट होता हूँ तो क्या होता हूँ? इस अप्रकट तत्व की अनुभूति, आत्मानुभूति है। पंच महाभूतों से निर्मित व पालित साकार मानव-देह संहारान्त में पांचों निराकार तत्वों में पूर्णतः विलय होकर अदृश्य हो जाती है। साकार देह के पूर्णतः अदृश्य होने पर एक निराकार तत्वातीत तत्व **'भसम'** दृश्यमान होता है। साकार देह के शव को मुखाग्नि देते ही यह भसम प्रकट होनी शुरू हो जाती है, लेकिन अग्नि की लपटों व धूने आदि से आच्छादित रहती है। देह जब तक दृश्यमान रही, भस्मी अदृश्य रही और देह के पूर्णतः अदृश्य होने पर पूर्ण भस्मी दृश्यमान हुई। पंच महाभूतों में निर्मित, पालित व संहारित कोटि-कोटि महाबह्माण्ड़ों की समस्त साकार-निराकार सृष्टि की प्रतिनिधि एक मानव-देह है। इस पंच तत्वों की दर्शित मानव-देह में कुछ ऐसा भी है, जो जीवन काल में दृश्यमान नहीं होता, जो देह के पंच महाभूतों में विलय होते हुए अदृश्य होने पर पंच तत्वों से अतीत तत्वातीत तत्व **'भसम'** के रूप में दृश्यमान होता है। अतः दृश्यमान **'भस्मी'** देह की उस गुप्त, रहस्यमयी विधा की प्रतिनिधि है, जो अदृश्य है। अपनी **'भस्मी'** किसी ने आज तक न देखी है, न देख पाने की सम्भावना है और सब जानते हैं और तहे-दिल से मानते हैं, कि भस्मी अवश्य बनेगी तथा कभी भी बनेगी।

अध्यात्म का मूल यह है, कि जो प्रकट है, उसके होते हुए मैं उस प्रकटीकरण का अप्रकटीकरण कर दूँ। इसके लिए प्रकट देह के अप्रकट व पंच-तत्वों में विलय होने के बाद प्रकट **'भसम'** की प्रकट देह के रहते अवधारणा करूँ, कि 'मैं भस्मी हूँ'। **'भस्मी'** प्रकट देह का प्रकट वह दृश्यमान पदार्थ है, जो प्रकट देह के रहते प्रकट नहीं होता, अप्रकट रहता है। देह धारणा (मैं देह हूँ) के दौरान **'मैं भस्मी हूँ'** की अवधारणा ही उस प्रकटीकरण का अप्रकटीकरण है। **अप्रकट कालातीत है, अकालातीत है।**

यह क्षण-भंगुर प्रदर्शन जिससे बना है, वह अप्रकट व अदृश्य है। अर्थात् अदृश्य में कुछ ऐसा अदृश्य भी है, जो प्रकट व दृश्यमान नहीं होता। लेकिन उसी की वजह से कभी भी कुछ प्रकट हो**गा**, हो रहा **है** और हुआ **था**। **'गा' 'था'** का आधार प्रकट **'है'** काल से बँधा है। इसका अप्रकट **'है'** अकाल है। अर्थात् प्रकट **'है'** का आधार अप्रकट **'है'** है। अप्रकट **'है'** ही कभी कुछ **'था'**, कुछ **'है'** और कुछ **'होगा'**। प्रकट होकर भी अप्रकट ज्यूं का त्यूं वैसा का वैसा ही रहता है। इस प्रकट के **'है'** से अप्रकट के तीनों है (वर्तमान), है (भूत) है (भविष्य) का ज्ञान हो जाता है। यह त्रिकाल दर्शन है। नश्वर का होना अथवा हस्ती शाश्वत् की **'अस्ति'** है। शाश्वत् में **'गा'** और **'था'** होता ही नहीं। प्रकट के साथ समय की तीन विधाएँ भूत (था) भविष्य (गा) और वर्तमान (है) हैं। तीनों में है (वर्तमान) सबसे महत्त्वपूर्ण है।

'काल' की समय, स्थान और स्थिति तीनों विधाओं में **'है', 'था', 'गा'** (वर्तमान, भूत, भविष्य) समय के तीन स्वरूप हैं। समय और स्थान दोनों **'स्थिति'** पर निर्भर हैं। हैत्व अथवा अस्तित्व स्वयं में स्थित्यातीत है; अतः स्थानातीत एवं समयातीत भी है। **'समय'** का वर्तमान **'अकाल'** का है। यदि काल न हो, तो अकाल में **'है'** का होना नहीं हो सकता। इसलिए जब प्रकट है, तो उसका होना अकाल की अनुभूति कराता है। क्योंकि हमारे किसी भी भूत अथवा भविष्य का आधार किसी भी वर्तमान में हमारा होना **है।** काल में इस **'है'** का **'होना' अकाल** के **'होने'** से है। जब **'अकाल'** में यह होना नहीं होगा, तो जो **'कुछ नहीं'** होगा वह महाकाल है। अर्थात् **'है'** का होना जब नहीं होगा, तो जो अप्रकट **'है'** वह **'महाकाल'** है। जड़ता में काल, अकाल और महाकाल तीनों नहीं होते, क्योंकि महाकाल होते हुए भी उसकी अनुभूति नहीं होती। काल और अकाल दोनों महाकाल के अधीन हैं। **महा+काल=महाकाल, महा+अकाल=महाकाल।** महाकाल ही काल एवं अकाल का स्वामी है। महाकाल सर्वोपरि है, काल और अकाल उसके गर्भस्थ हैं। काल, अकाल और महाकाल में इस पारदर्शी विभाजन की अनुभूति विशिष्टतम जिज्ञासा, श्रद्धा एवं अति सद्गुरु कृपा से ही सम्भव है।

मानव-देह मात्र दृश्यमान प्रदर्शन की प्रतिनिधि ही नहीं अदृश्य की प्रतिनिधि भी है। परमात्मा, जीवात्मा एवं परमात्मा की बहुआयामी कलाएँ अदृश्य हैं तथा प्रदर्शन दृश्यमान है। पंच-महाभूतों की दृश्यमान देह, बिना अदृश्य सत्ता के नहीं है। पंच-महाभूतों सहित पंच-महाभूतों में निर्मित, पालित एवं संहारोपरान्त इन्हीं में विलय हो जाने वाली दृश्यमान सृष्टि न होती, तो उस अदृश्य सत्ता (परमात्मा, जीवात्मा और परमात्मा की बहुआयामी कलाएँ) का अनुमान भी न होता। भस्मी पंच-महाभूतों की दृश्यमान देह के रहते अदृश्य **'है'** और देहातीत **'है'**। अतः सदगुरु कृपा से देह के रहते जीवन काल में उस **'भस्मी'** का ध्यान-चिन्तन स्वयं में **'भस्मी-दर्शन'** है। **'भस्मी-दर्शन'** से भस्मी का रूपान्तरण **'विरक्ति'** में होना शुरू हो जाता है। **'विरक्ति'** ही अदृश्य सत्ता है। यह होना (हैत्व) ही **'गा', 'गे', 'गी'** और **'था', 'थे', 'थी'** का मूल एवं आधार है। साकार देह जब पंच-महाभूतों में विलय हो जाती है, तो वह अदृश्य **'विरक्ति'** ही दृश्यमान **'भस्मी'** बन कर प्रकट होती है।

सद्गुरु कहता है, कि ''तेरी **'मैं'** ने प्रकट होने के लिए नाम-रूप में गुण्ठित जाग्रत मानव देह का अवलम्बन लिया था और उसके रूप के साथ नाम-रूप में तदरूपता सी के कारण देह के साथ तेरी **'मैं'** भी अवचेतना में आ गई। जब तू किसी अन्य देह की भस्मी को अपनी देह की भस्मी की प्रतिनिधि बनाकर **'मैं'** का अवलम्बन देते हुए अवधारणा करेगा, कि 'मैं भस्मी हूँ', तो तेरी विशुद्ध **'मैं'** जाग्रत हो जाएगी। दोनों प्रतिनिधि (मैं और भस्मी) जब मिलेंगे, तो भस्मी की अवधारणा अतिशीघ्र तेरी धारणा बन जाएगी और तेरी देह धारणा निर्मूल होने लगेगी। **'मैं' (जीवात्मा)** को अपनी स्मृति आनी शुरू हो जाएगी, तो प्रतिनिधि भस्मी लुप्त हो कर तेरी मूल विभूत्यातीत विभूति विरक्ति को जाग्रत कर देगी। क्योंकि वह **'भस्मी', 'मैं'** जैसी देशातीत, कालातीत, लिंगातीत, धर्मातीत, कर्मातीत, सम्बन्धातीत और मायातीत है। तुझे आत्मानुभूति होगी। यह स्मृति भगवती है और इस विषय का श्रवण श्रुति भगवती है।''

जब जीते जी ध्यान में साधक सदगुरु कृपा से तत्त्वातीत तत्त्व

भस्मी की अवधारणा करता है, कि **'मै'** भस्मी हूँ', तो उसके मानस में विरक्ति का अभ्युदय होने लगता है। उसे **'भस्मी-दर्शन'** की अनुभूतियाँ होती हैं। **'मैं भस्मी हूँ' तो वह मानस क्या एवं कैसा है, इसकी अनुभूति से विभूत्यातीत विभूति 'विरक्ति' की जागृति हो जाती है और पंच महाविभूतियों–ऐश्वर्य, सौन्दर्य, ख्याति, शक्ति एवं ज्ञान का प्रतिनिधित्व ही क्रमशः पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि एवं आकाश की महासृष्टि में प्रदर्शन रूप में दृश्यमान होता है।** विरक्ति, वीरता है, आसक्ति, अशक्ति है। **'वीरेन भोग्या वसुन्धरा'** पृथ्वी का भोग वीर ही कर सकता है। जिसकी भौतिक पदार्थों एवं वस्तुओं में आसक्ति है, वे भोग नहीं कर सकते। पंच-महाभूतों की भौतिक सृष्टि में एक पदार्थ एवं **वस्तुतः एक ही वास्तविक वस्तु है, वह है–'भस्मी'**। रावण जैसा भौतिक पदार्थों से सम्पन्न राजा भी इसी वस्तु की आकांक्षा करता है–**''क्वचिद् दिगम्बरे मनो विनोदमेतु वस्तुनि।''**

भस्मी, विशेष-विशेष मानव-देह का अविशेष पदार्थ है। अतः भस्मी अविशेष देह की है। अविशेष देह, विरक्त यथार्थ देह है, जिसे अपने नाम सौन्दर्य, ज्ञान, शक्ति, ख्याति एवं ऐश्वर्य आदि विभूतियों का कोई महात्म्य नहीं होता। अर्थात् दृश्यमान विशेष-विशेष साकार देह में एक अदृश्य देह भी है, जो अविशेष है। दृश्यमान देह के रहते भस्मी अदृश्य है और **'भस्मी'** अविशेष है। भस्मी, दृश्यमान देह सहित जगत के रहते अतिशक्ति विरक्ति का प्रतिनिधित्व करती है, जिससे दृश्यमान विशेष; विशेष देह सहित समस्त जगत दृश्यमान होते हुए प्रकट होता है और उसी में समाहित हो जाता है। प्रकट व दृश्यमान (प्रपंच) से ही अप्रकट व अदृश्य अविशेष देह की अनुभूति होती है। अविशेष देह विरक्ति है, इसकी देहानुभूति ही आत्मानुभूति एवं आत्म-दर्शन है। यही विरक्ति, मानव को प्रपंच से मुक्त कर उसका रसास्वादन करवाती है।

''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(9 मई से 18 मई 2011)

अन्ततः

अध्यात्म में प्रविष्टि के लिए सर्वप्रथम किसी भी साधक (जीव) को इस विषय में पूर्णतः आश्वस्त होना अति आवश्यक है, कि जो कुछ भी वह कर-करवा रहा है, वह उसके बिना भी हो सकता है और कदाचिद् बेहतर हो सकता है। **'मैं'** कौन हूँ', से पहले यह जिज्ञासा होनी आवश्यक है, कि मैं क्यों हू? मेरे होने का अर्थ क्या है? मानव-देह के रूप में एक अस्थाई, क्षण-भंगुर लेकिन ईश्वरीय संरचनाओं में सर्वोत्कृष्ट सुकृति मुझे क्यों दी गई है और कभी भी मुझसे क्यों छीन ली जाएगी? मैं कुछ न कुछ कर-करवा रहा हूँ, तो क्या मैं वह करने के लिए हूँ, जो मेरे बिना भी हो रहा था और मेरे बिना भी होगा तथा मैं अभी छोड़ दूँ, तो बहुत बेहतर होगा। मैं क्यों हूँ, का यह विचार जब किसी की नींद उड़ा दे, बेचैन कर दे, तो उसकी देह का मूल्य कई गुना बढ़ जाता है। साथ ही वह जो कुछ कर-करवा रहा है, वह गुणात्मक और दिव्य होने लगता है।

मैं युगों-युगान्तरों से जीव-सृष्टि में भटक रहा हूँ। प्रारब्ध की जकड़न एवं विभिन्न नाम-रूपों में फँसा हुआ मैं अपनी भटकन का कारण व निदान नहीं जान पाता। रोग की जानकारी, उसका कारण और समाधान तीनों आवश्यक हैं। कोई रोग जब विभिन्न लक्षणों में प्रकट होता है, तो उनसे परेशान होने पर ही हम चिकित्सक के पास जाते हैं। रोग के लक्षण प्रकट होने से पहले हमें रोग का ज्ञान ही नहीं होता। जब प्रकट लक्षण हमारी दैनिक जीवनचर्या में परेशान करते हुए बाधा डालते हैं, तभी हम चिकित्सक की खोज करते हैं। चिकित्सक उसके कारण और समाधान से अवगत

कराता है। सदगुरु हमारी विभिन्न मानसिकताओं के कारणों, लक्षणों एवं समाधान का ज्ञाता, महावैद्य है।

सदगुरु कहता है, "तू मान ले, कि तू देह है, अभी 'मैं कौन हूँ' का ख्याल छोड़ कर विचार कर 'मैं क्यों हूँ'? पैदा होने से पहले तू नहीं था और मृत्यु के बाद तू नहीं रहेगा। अब जो तू है, तेरा यह होना इतना अनिश्चित, क्षण-भंगुर और अस्थाई है, कि कोई भी दिन तेरे जीवन **का** अन्तिम दिन हो सकता है। वह दिन आज भी हो सकता है। जितना बीत गया, वह तूने देखा और आगे आने वाला समय तेरी कल्पना है। जब से तूने होश सम्भाला, तूने स्पष्ट देखा है, कि भविष्य तेरे हाथ में नहीं है और अतीत तेरे हाथ में नहीं था। तू कब से है, यह तू जानता है, लेकिन कब तक होगा, यह तू बिल्कुल नहीं जानता। अभी तक तू क्यों है, तू यह भी नहीं जानता। तूने जो अब तक किया है, क्या तूने किया है? तू और जो करना, पाना, बनना, बनाना चाहता है, यदि तू उस लक्ष्य को पा भी ले, तो क्या हो जाएगा? जब तुझे सुनिश्चित नहीं है, कि आने वाला कल तेरे लिए आएगा या नहीं; तो तेरे होने, कुछ भी पाने-खोने, करने-करवाने का अर्थ क्या है? **तू विचार कर, कि अन्ततः क्या चाहता है**? जगत व्यवहार के हर क्षेत्र में जो कुछ भी तू कर-करवा, बन-बना रहा है, उसमें अन्ततः जो तू पाना चाहता है, उसकी कल्पना करके ही कार्यरत होता है। कुल जीवन का अन्ततः जो होना है, वह तुझे मालूम है। वह कल्पना नहीं है, क्योंकि वह तय है। वह आज भी हो सकता है और कभी भी हो सकता है। तू उसके लिए क्या कर रहा है? तेरी समस्त शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक शक्तियाँ तुझे किस ओर ले जा रही हैं?"

किसी भी विवेकशील बुद्धिजीवी मानव को ये समस्त प्रश्न बेचैन कर देने के लिए पर्याप्त हैं। अन्ततः **'मैं'** क्या चाहता हूँ और वह अन्ततः क्या है ? क्या मैं जीवन बिताने के लिए जी रहा हूँ? जीवन का लीडर क्या मैं हूँ? यदि मैं हूँ, तो आज तक जो कुछ पाया, उससे सन्तुष्ट क्यों नहीं हूँ? मेरे पास छोटा घर था, बड़ा हो गया, दो-चार बच्चे हो गए, सबके हो जाते हैं। बच्चों के घर बसाना क्या मेरा दायित्व है? मैं व्यर्थ के उत्तरदायित्व अपने

ऊपर क्यों लादे हुए हूँ। जब बच्चे थे नहीं, तो क्या मैं स्वतन्त्र था? जो मैंने एकत्र किया है, वह सब कुछ मेरी देह के जाने के साथ ही मेरे लिए कुछ नहीं रहेगा। यहाँ से जिज्ञासु अपनी चाहतों को समेटने लगता है।

वास्तव में हम स्वयं से, स्वयं को ढक रहे हैं। अन्त को मद्देनज़र रखते हुए ही, कोई भी शुरुआत की जा सकती है। अन्त, जीवन में प्रत्येक आरम्भ का है, लेकिन '**अन्ततः**' सम्पूर्ण देह व जीवन का होता है, जो **'तय'** है। भौतिक देह व जीवन के लिए किए जाने वाले कार्यों को भी हम कार्यों के अन्त में मिलने वाले फल को मद्देनज़र रखते हुए आरम्भ करते हैं। शुरुआत और अन्त के बीच मध्य है। मध्य का एक पूर्वार्द्ध होता है, एक उत्तरार्द्ध होता है। जीवन के लिए जो कुछ हम करते हैं और जो भविष्य स्वयं तय करते हैं, स्वयं में अन्तहीन दौड़ है। इसका कुछ भी अन्त तय नहीं है और न केवल व्यर्थ और निरर्थ है; बल्कि अनर्थ है। यह अन्तहीन दौड़ **अतिरिक्त** के लिए ही है। हमने अन्त में मिलने वाले फल की कल्पना करके उन कार्यों का अन्त स्वयं तय किया है। । पर अन्ततः एक बात तय है, कि मृत्यु किसी भी क्षण हो सकती है और फिर अन्ततः डेढ़-दो किलो भस्मी ही रह जाएगी। **'अन्ततः'** जो होना सुनिश्चित, दर्शित व परिलक्षित है, वह **'तय'** है यह हमें भली-भाँति मालूम है। अन्ततः जो तय है, वह कभी भी हो सकता है। उस निश्चित, परिलक्षित, दर्शित भविष्य को जानबूझ कर उपेक्षित करते रहते हैं। इस अन्ततः को कोई **'तय'** नहीं कर सकता, कि कब होगा ? सदगुरु कहते हैं, कि ''प्रभु द्वारा **'तय'** उस अन्ततः होने (मृत्यु-भस्मी) को अपनी अन्तहीन दौड़ के मध्य में प्रस्थापित नहीं करेगा, तो तू अतिरिक्त एकत्र करते हुए अतृप्त, आसक्त एवं अति, अति रिक्त ही मरेगा और अगले जन्म में मृत्यु पुनः तेरा भविष्य बनकर सम्मुख खड़ी होगी। यदि तू इस ओर देखना नहीं चाहता, तो अन्य भविष्य क्यों खड़े करता है? अपना कोई भी भविष्य खड़ा करने वाला तू कौन होता है? तेरा और देह का सम्बन्ध क्या है? कौन सा ऐसा कार्य है, जो तेरे बिना नहीं हो सकता था और यदि तू छोड़ दे, तो क्या नहीं होगा? देह के भीतर और बाहर असंख्य क्रियाएँ तेरी जानकारी के बिना

हो रही हैं, होती रहीं हैं और जब तक वह चलाने वाला चाहेगा, होती रहेंगी। तू क्यों है?''

कोई जल का नल खुला छोड़ दे, कमरे की बत्ती खुली छोड़ दे, तो कहा जाता है, कि पानी, बिजली व्यर्थ क्यों कर रहे हो। हम कुल जीवन के श्वास उस देह व जीवन के लिए व्यर्थ करते रहते हैं, जिसके अगले पल का भरोसा नहीं है। हमने सोचना ही नहीं चाहा, कि देह व जीवन काहे के लिए है? यह 'सद्' दृष्टिकोण तभी उभरेगा, जब अन्ततः जो भविष्य तय है, उस पर हमारी दृष्टि जाएगी। यह भविष्य हमारे द्वारा तय की गई योजनाओं, कार्यों और परियोजनाओं से बँधा नहीं है। वह महा भविष्य अन्ततः तय है और सुनिश्चित, दर्शित व परिलक्षित है। ''उस भस्मी की तू अवधारणा कर, कि मैं भस्मी हूँ। तुझे जन्मों-जन्मान्तरों से देह की धारणा हो चुकी है। तूने कभी उस सुनिश्चित भविष्य से आत्मसात् होने की चाहत एवं चेष्टा नहीं की। अपनी देह व जीवन के यथार्थ का अर्थ तुझे संहार से मालूम चलेगा। संहार की उपेक्षा के कारण जीव-सृष्टि की भटकन है। भटकन केवल निरर्थ, व्यर्थ, अनर्थ होती, तो भी कुछ नहीं था। जिस देह से तू भटक रहा है, उस देह और अन्य देहों द्वारा महाकाल की 1008 धाराओं के अन्तर्गत तुझे सज़ाएँ मिलती हैं। मानसिक उत्पीड़न में तू देह का सदुपयोग तो क्या उपयोग भी नहीं कर सकता। तुझे सद्गुरु का शरणागत होना होगा।''

सद्गुरु कहता है, कि ''हे मानव! तुझे नहीं मालूम, कि वह अन्त कब आएगा? इसलिए अन्ततः जो भस्मी बनेगी, वह तू नहीं देख सकता। तू मानव है, अतः तू मान ले, कि वह अन्त हो गया। मृत्यु **'होगी'** नहीं **'हो गई'** और तेरी भस्मी बन गई। तू पहले अपना यह कार्य निबटा ले। तभी तू देह व जीवन का रसास्वादन कर सकता है। इसी कार्य के लिए प्रभु ने तुझे मानव-देह दी है और उसे पूरी तरह से वही चला भी रहा है। देह, क्षणिक व क्षण-भंगुर है। यदि तू अन्ततः अपनी चाहत को नहीं जानना चाहता, तो तू इसे व्यर्थ गवाँ रहा है। जिसने तुझे यह दी है, वह तुझे देह व देहों द्वारा सज़ाएँ देगा। तेरी व्यष्टि-समष्टि तेरे विरुद्ध होगी। जो कार्य सबसे

महत्त्वपूर्ण है, वह तू करना नहीं चाहता इसलिए तू जवानी में ही सठिया गया है। तेरी बुद्धि तुझे अनर्थ की ओर ले जा रही है। तू लब्ध को उपलब्ध कर रहा है, इसलिए जो भी तेरी उपलब्धियाँ हैं, उनके भोग के अधिकार से वंचित कर दिया गया है।''

अन्ततः की प्राप्ति मेरा अपना **'कुछ नहीं'** (भस्मी) है। अन्ततः मुझे मेरा **'कुछ नहीं'** मिल जाए। मेरा **'कुछ नहीं'** मेरे पास रहा नहीं इसलिए **'सब कुछ'** मेरे लिए तनाव का विषय बन गया। अन्ततः क्या तय करना है, यह जनवाना प्रभु की जिम्मेदारी बनाने के लिए अपना **'कुछ नहीं'** प्रभु से माँगना होगा। उस **'कुछ नहीं'** पर अपना कब्जा करना होगा, कि 'मैं भस्मी हूँ'। अन्ततः तय कर लिया, अन्ततः जानकर, मान लिया तो बीच का **'सब कुछ'** प्रभु स्वयं करेंगे। सद्गुरु कहता है, कि ''हे जीवात्मा ! सभी ईश्वरीय विभूतियाँ तुझे स्वतः लब्ध हैं, क्योंकि तू उस पारब्रह्म परमेश्वर ब्रह्मात्मा की ही दो अदृश्य विधाओं में से एक है। दोनों (परमात्मा और जीवात्मा) में अदृश्य द्वैत है। तू स्रष्टा नहीं, मात्र दृष्टा है और परमात्मा स्रष्टा भी है और महाद्रष्टा भी है। सौन्दर्य, ज्ञान, शक्ति, ख्याति, ऐश्वर्य एवं विरक्ति सभी विभूतियाँ तुझे लब्ध हैं। काम, अहंकार, क्रोध, मोह, लोभ और आसक्ति आदि विकृतियाँ जीव भाव में मानव-देह के रूप के साथ नाम-रूप में तदरूपता **सी** में तू अपने प्रयत्नों द्वारा उपलब्ध करता है। तेरी अदृश्य विभूतियों का दर्शन भी तुझे देह **से** होगा। इसलिए दृश्यमान देह का तनिक अवलम्बन लेकर तू देह के उस पदार्थ का अधिग्रहण कर, जहाँ देह नहीं होती, अतः जगत भी नहीं होता। इसके लिए तेरी देह का, तेरे लिए सहयोगी होना बहुत आवश्यक है। क्योंकि देह का वह निश्चित, परिलक्षित, दर्शित भविष्य जहाँ देह अपने जगत सहित पंच-महाभूतों में विलय होकर अदृश्य हो जाती है, वह देह ने अपने रहते हुए तुझे दिखाना है।''

देह के इस देहातीत क्षेत्र का नाम है—**'भसम'**। **'भसम'** शब्द शास्त्रीय है इसमें 'भावसम' (मैं भस्मी हूँ) छिपा हुआ है। मानव-जीवन के प्रत्येक परिदृश्य में एक **'समभाव''** (मैं देह हूँ) प्रकट होता है। 'मैं देह हूँ' यह

समभाव विकृति रूप में बार-बार पुष्ट व पुष्टतर होते-होते परिपक्व **'स्वभाव'** बनकर एक complex बन चुका है। 'मैं देह हूँ' यह एक **'समभाव'** (मैं देह हूँ) नित्य नई देह और नए जगत के रूप में प्रकट होता है। देह सहित जगत अन्ततोगत्वा एक सम पदार्थ **'भस्मी'** या राख के प्रकाट्य में समाप्त हो जाता है। **'मैं'** शब्द का प्रकाट्य **मायारम्भ** (माया + आरम्भ) का द्योतक है और **'भस्मी'** के प्रकाटय में **मायान्त** (माया + अन्त) हो जाता है। 'मैं' शब्द जीवात्मा का प्रतिनिधि है। मैं शब्द के प्रकाट्य के लिए एक जाग्रत मानव-देह का होना अत्यावश्यक है तथा मैं प्रकट होकर उस देह का, जगत सहित होना प्रमाणित करती है। यह मानव देह पंच महाभूतों से निर्मित है, पंच महाभूतों द्वारा पालित है और अन्ततः पंच महाभूतों में विलय होगी। इसी देह की 'भस्मी' का प्रकाट्य प्रमाणित करता है, कि वह मानव देह पंच महाभूतों से निर्मित थी, पंच महाभूतों द्वारा पालित थी और अन्ततः अपने समस्त चराचर जगत सहित पंच महाभूतों में ही विलय हो गई है। 'मैं' और 'भस्मी' के संगम से देह व जगत के होते हुए मैं (जीवात्मा) अपने मायातीत स्वरूप की अनुभूति में आविर्भूत हो जाती है। अदृश्य '**समभाव**' 'मैं देह हूँ' के **'भावसम'** मैं भस्मी हूँ' को जीते जी आत्मसात् करने में वह दृश्यमान भस्मी ही अदृश्य भावसम विरक्ति में रूपान्तरित हो जाती है और 'समभाव' 'मैं देह हूँ' से छुटकारा मिल जाता है।

ईश्वरीय माया का सौन्दर्य है, कि समस्त देह व जगत '**भाव सम**' पदार्थ '**भसम**' में समाप्त हो जाता है। **'भस्मी'** देह व जगत के रहते अदृश्य है। अतः देह व जगत के रहते इस देहातीत पदार्थ को आत्मसात् करने में जीव बने जीवात्मा की अदृश्य विभूति **'विरक्ति'** जाग्रत होने लगती है। समभाव **'मैं देह हूँ'** स्वयं में अदृश्य है, देह सहित जगत के रूप में प्रकट होता है और देह सहित जगत अन्ततः एक सम पदार्थ में अन्त होता है, वह है—**'भस्मी'।** समभाव 'मैं देह हूँ' भाव सम में अन्ततः अन्त हो जाता है। भस्मी मानव-देह व जीवन का अर्थ है तथा जीवात्मा के पद का अर्थ है। प्रकट रूप में वह भस्मी है और अप्रकट रूप में 'भावसम' है, कि मैं भस्मी हूँ। यह भसम

देह और जगत की एक ही है। समभाव (मैं देह हूँ) प्रकट होता है देह सहित जगत के रूप में और देह और जगत भावसम (मैं भस्मी हूँ) में सिमट जाते हैं। समभाव विकृत भाव है, 'मैं देह हूँ' सन्देह है, जिसने समस्त विभूतियों को विकृतियाँ बना दिया। भावसम (मैं भस्मी हूँ) भसम से जब 'समभाव' का मूलोच्छेदन हो जाएगा, तो समस्त विभूतियों का मूल विरक्ति जाग्रत हो जाएगी और विरक्ति के साथ ही आत्म-स्मृति आनी शुरू हो जाती है। आत्म-स्मृति के बाद साधक अपने उस स्वरूप को पाना चाहता है। आत्म-दर्शन में वाणी मूक हो जाती है। मन-वाणी से परे आत्म-दर्शन ही आत्मानुभूति है, जो **अन्ततः** जीवन का सार है।

''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(20 *मई से* 26 *मई* 2011)

उत्साह

उत्सव और उत्साह दोनों शब्द उच्चारण में लगभग एक जैसे हैं और अर्थ की दृष्टि से भी दोनों में अभेद-भेद सा है। दोनों में Common Factor **'आनन्द'** है। जब एक से अधिक व्यक्ति आनन्द में मिलते हैं, आनन्द में विचरते हैं और पुनः आनन्द में मिलने के लिए, आनन्द में बिछड़ते हैं—इस प्रकरण का नाम **'उत्सव'** है। **आनन्द मानस का है और मिलना दैहिक है।** आनन्द से ओत-प्रोत इस उत्सव रूपी प्रकरण में सभी लोगों में अति उत्साह का होना आवश्यक है, क्योंकि **आनन्द मिश्रित कर्म** को **'उत्साह'** कहते हैं। कोई भी कर्म देह के द्वारा होता है। जब देह द्वारा कोई कर्म आनन्द में होगा, तो वह स्वतः होगा और उस कर्म के प्रारम्भ, मध्य एवं समाप्ति में आनन्द ही आनन्द होगा। **'उत्सव' 'आनन्द में'** हुआ प्रकरण है और **'उत्साह' 'आनन्द मिश्रित कर्म'** है। दोनों में अन्तर **सा** यह है, कि उत्सव सामूहिक है और उत्साह व्यक्तिगत होता है। यह **अन्तर सा** भी इसलिए है, क्योंकि **एक उत्साही पुरुष और उसके अनेक में अन्तर सा होता है।**

एक उत्साही पुरुष के साथ जो जगत प्रकट होता है, उसमें और उस जगत में कोई अन्तर नहीं होता, बल्कि **अन्तर सा** होता है। इसलिए उत्साह एवं उत्सव में वैसा ही अन्तर **सा** है, जो व्यष्टि-समष्टि में है। पूरी देह को यदि ब्रह्माण्ड मान लें, तो सिर व्यष्टि है और सिर सहित पूरी देह समष्टि है। समष्टि में व्यष्टि है और व्यष्टि की समष्टि है। समष्टि में व्यष्टि का होना आवश्यक है। व्यष्टि होगा, तो समष्टि होगी ही। जब प्रभु किसी के द्वारा आनन्दमिश्रित कर्म करवाएँगे, तो उसमें और उसकी समष्टि की सोच, दिल,

दिमाग में कर्ता भाव तो क्या निमित्तता का भाव भी नहीं होगा। उत्साही व्यक्ति की एक अपनी समष्टि होती है और उस समष्टि-व्यष्टि में उत्सव ही चलते हैं। वहाँ **'उत्सव'** के अतिरिक्त और कुछ हो ही नहीं सकता। **जो व्यष्टि उत्साह से ओत-प्रोत है, उसकी समष्टि 'उत्सव' से ओत-प्रोत होगी ही।** वह बन्धन-मुक्त और आनन्द-युक्त होता है। वहाँ जो होगा वह उत्सव ही होगा। मानव-जीवन स्वयं में एक अनन्त आनन्दमय उत्सव है।

सुख-दुःख दोनों विरोधी भाव हैं। सुख-दुःख सीमित हैं। जब इनकी सीमाओं का उल्लंघन हो जाता है, तो दोनों में कोई भेद नहीं रहता। इसे **अभेद भाव** कहा गया है। सुख-दुःख दोनों मानसिक हैं। दोनों भाव जब भावातीत हो जाते हैं तब खुशी, खुशी से परे और दुःख, दुःख से परे हो जाता है और दोनों में भावातीत संगम हो जाता है। उनमें सीमाओं का उल्लंघन Common Factor है। दोनों विरोधी भाव तब सहयोगी भाव हो जाते हैं। **अभेद भाव 'अभाव भाव'** है। **'अभाव भाव' आनन्द** है। एक भाव वापिस लौटता है और लौट कर परिवर्तित हो जाता है। खुशी, बहुत खुशी, अति खुशी, अत्यन्त खुशी जब लौट कर आएगी, तो कम, और कम होते-होते विषाद बन जाएगी। विषाद बहुत, अति, अत्यन्त होते-होते लौटते हुए समाप्त होने लगता है और उसका महात्म्य समाप्त हो जाता है तथा एक दिन खुशी बन जाता है। एक भाव जब सीमाओं के उल्लंघन के बाद लौटेगा, तो परिवर्तित हो जाएगा। एक दूसरे से विरोधी और पृथक् भाव जब सीमाओं का उल्लंघन करते हैं, तो जो भाव प्रकट होता है, वह न खुशी होता है, न गम। वह भावातीत भाव, अभाव भाव **'आनन्द'** होता है। वहाँ **'कुछ नहीं'** भी नहीं होता। आनन्द, बहुत आनन्द, महा आनन्द, अति आनन्द, अत्यन्त आनन्द, अनन्त आनन्द। **अनन्त आनन्द ईश्वरीय ही है**। वहाँ से कोई वापिस सुखों-दुःखों में नहीं आता। वहाँ मानसिकता, आनन्दमय मानस में रूपान्तरित हो जाती है।

एक ही दृश्य को पाँच व्यक्ति देखते हैं, सबको उस दृश्य की भिन्न-भिन्न विधाएँ प्रभावित करती हैं। जिसे जो अच्छा या बुरा लगा वह

उसके मानस की प्रतिक्रिया है, जिसे वह काफी समय तक ढोता रहता है। किसी भी फिल्म को देखने से पहले और देखने के बाद की मानस स्थिति अक्सर भिन्न होती है। इसी प्रकार यह जगत जिसे हम **'सद्'** मानकर चल रहे हैं, उसके भी विभिन्न प्रभाव हमारे मानस को युगों-युगान्तरों से घेरे हुए हैं। सुख-दुःख, आनन्द के अतिरिक्त हैं। जब **'सब कुछ'** का भाव समाप्त हो जाता है और **'कुछ नहीं'** का भाव रह जाता है तथा जहाँ **'कुछ नहीं'** का भाव भी नहीं रहता, वह **आनन्द** है। प्रत्येक सुख और दुःख अस्थाई है। दुर्भाग्यवश हम इसी अस्थाई प्रभाव के लिए लालायित रहते हैं और अपने स्थाई, अचल एवं शाश्वत् आनन्दमय स्वरूप की अनुभूति नहीं कर पाते। एक बार अपने स्वरूप की अनुभूति होते ही एक सहज मुदिता बनी रहती है। मैं पहले ऐसा था, अब विशिष्ट हो गया हूँ और भविष्य में और तरक्की होगी। यह **'काल-बन्धन'** है। यह Conceptual देह है। **नित नूतन सृष्टि** मेरे लिए देह सहित जगत बनकर प्रकट होती है। यह **अकाल-बन्धन** है। **'दिने दिने नवं नवं'** में भी अकाल-बन्धन बना रहता है। **सद-सदा नूतन सृष्टि**, जिसका आगे-पीछे के दिनों से कोई सम्बन्ध नहीं है, वह स्वयं **महाकाल** है।

सर्वशक्तिमान परमात्मा सच्चिदानंद है। सद्, चेतन और आनन्द को परस्पर पृथक् नहीं किया जा सकता। सृष्टि के प्रकाट्य के लिए ब्रह्मात्मा की अदृश्य स्वरूप दो विधाएँ **परमात्मा** और **जीवात्मा** ही क्रमशः **स्रष्टा, दृष्टा** बनती हैं। प्रकट दृश्यमान जगत मिथ्या नहीं है। यह सतत्, अविरल, अस्थिर व परिवर्तनशील जगत अदृश्य चेतन और आनन्द के होने का प्रमाण तथा चेतन व आनन्द के अकाट्य समन्वय का **'सद्'** परिणाम है। इसलिए दृश्यमान जगत स्वयं में सद् है। जहाँ **'सद्'** होगा, वहाँ चेतन और आनन्द का होना अवश्यम्भावी है। अनन्त चेतना और अनन्त आनन्द के अनन्त समन्वय से प्रकट कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों की दृश्यमान सृष्टि ईश्वर का चरित्र है और ईश्वरीय अदृश्य बहुआयामी कलाओं का असंख्यामी प्रदर्शन है। अतः सम्पूर्ण परमात्मा अदृश्य नहीं है। उसके तीनों अंगों में चेतन और आनन्द अदृश्य हैं और **'सद्'** दृश्यमान है। ईश्वरीय चेतना और आनन्द में

अदृश्य में द्वैत है। भारतीय तत्त्वज्ञों, मनीषियों, साधकों और तपस्वियों को ईश्वरीय अनन्त चेतना और अनन्त आनन्द की अनुभूति दोनों के पारस्परिक अनन्त समन्वय से प्रकट दृश्यमान मायिक सृष्टि की विभिन्न विधाओं से हुई; जिसे उन्होंने गूंगे का गुड़, अनिर्वचनीय मन-वाणी से परे, मात्र अनुभूतिगम्य आदि-आदि कह कर प्रकट किया।

दिव्य, उत्साही महापुरुष आनन्द से ओत-प्रोत होते हैं। दृश्यमान जगत के प्रदर्शन से **'सद्'** की अनुभूति करके जिन्होंने अदृश्य व अप्रकट चेतन व आनन्द का **'दर्शन'** कर लिया है, ऐसे उत्साही महापुरुषों का स्वयं का जगत उत्सवमय होता है। उनका जीवन एक **'महोत्सव'** की भाँति होता है। आनन्दमिश्रित कर्म वही होगा, जिसमें किसी का स्वयं का कोई हस्तक्षेप, योजना और कर्ता भाव नहीं होगा। वो व्यक्ति ईश्वरीय होता है और ईश्वर उसके द्वारा स्वयं ईश्वर प्रदत्त कर्म करवाते हैं। उनकी समष्टि भी ईश्वर द्वारा ही निर्धारित होती है। उन कर्मों में समय, स्थान, स्थिति का कोई बन्धन नहीं होता, क्योंकि वे कर्म स्थित्यातीत स्थिति में होते हैं। उत्साही व्यक्ति के साथ ईश्वर समय, स्थान और स्थिति को उसके अनुसार बाँध देता है। उत्साही व्यक्ति का अपना कोई प्रयत्न नहीं होता और वह ईश्वरीय यत्नों का प्रशंसक होता है। उसके सहयोगी, प्रतिरोधी, अवरोधी, गतिरोधी एवं सम्पूर्ण प्रबन्धक ईश्वर प्रदत्त ही होते हैं। यहाँ तक कि उस कर्म के समय समस्त प्रकृतिगत विधाएँ, चन्द्रमा और सूर्य की कलाएँ, वायु की गतियाँ आदि भी दैवीय ही होती हैं। आनन्दमय कर्म का प्रमाण प्रकृति है।

जीवन एक महोत्सव है, उसके लिए उत्साही होना है। उत्साहपूर्ण, आनन्दमय जीवन के लिए **'सद्'** के प्रति समर्पण अत्यावश्यक है। सद्गुरु के सद् निर्देशन में किया-करवाया गया जप-तप, यज्ञ-हवन आदि कृत्य जब अकृत्य हो जाएँ, तो वहाँ **'अहंकार'** का स्थान **'अधिकार'** ले लेता है। सद्पुरुषों को **'अधिकार'** होता है और घोर संसारी लोगों को **'अहंकार'** होता है। कृत्य में जब निमित्तता का भाव भी न रहे, तो कृत्य का अहंकार समाप्त हो जाता है। एक निमित्त ने दूसरे निमित्त को खोजा। जब दोनों

निमित्त बन जाएँगे, तो निमित्तता समाप्त हो जाएगी। एक निमित्त बनेगा, तो निमित्तता **अहंकार** बन जाएगी। दोनों निमित्त बनेंगे, तो निमित्तता, **अधिकार** बन जाएगी। सेवा करने वाला करने का निमित्त है और जिसकी सेवा की जा रही है, वह सेवा लेने का निमित्त है। दोनों परमात्मा करवा रहा है। इस भाव में **'कर्ता भाव'** का अभाव हो जाता है।

मानवीय बुद्धि जब पूर्णतः ईश्वर समर्पित हो जाती है, तो वह बुद्धि स्वयं कोई योजना नहीं बनाती, बल्कि ईश्वरीय यत्नों का आनन्द में रसास्वादन करती है। मानस आनन्द का स्रोत है। जो बुद्धि अपनी बुद्धि द्वारा समर्पित होती है, वह ईश्वरीय चेतना का स्रोत बन जाती है। जब किसी महा मानव से प्रभु स्वयं कुछ ऐसा विशिष्ट कार्य करवाते हैं, जो उसकी निजी व सीमित सोच, प्रतिभाओं, सीमाओं, योजनाओं, परियोजनाओं, काल-बन्धन, समय-बन्धन आदि से परे होता है, वह कार्य स्वतः उत्सवमय एवं उत्साहपूर्ण होता है। वह समस्त कार्य उस महा मानव के लिए विस्मय एवं रहस्य का विषय बना रहता है, कि प्रभु मुझसे यह कार्य करवा रहे हैं। उत्साह व्यक्तिगत है और उत्सव समष्टिगत प्रकरण है। जब उस उत्साही मानव के उत्साह पूर्ण ईश्वर प्रदत्त आनन्दमय कर्म का उत्साह उसकी समष्टि में प्रवाहित होता है, तो वह कर्म स्वयं में उत्सव का रूप ले लेता है। एक और अनेक (अन्य+एक) में 'एक' common है। यदि वह **'एक'** उत्साह से परिपूरित, आनन्दित, उन्मादित दीन-दुनिया भुलाए हुए है, तो वहाँ आनन्द का प्रस्फुटन उसके अनेक में स्वतः हो जाता है। वहाँ उसके और उसके अतिरिक्त अन्य कोई नहीं होता। वहाँ सब एक ही होते हैं और वहाँ उत्सव होना स्वाभाविक है।

सम्पूर्ण जीवन रूपी **सनमा** कोरे अभावमय **मानस** पर चलता है। आनन्द 'अभावमय' होता है। अभावमय पर भावमय चलचित्र चलता है और अचल अभावमय पर्दा छिप कर अदृश्य हो जाता है। **उत्साह का दूसरा नाम सद्‌गुरु है।** सद्‌गुरु अकर्ता होता है और उस स्रष्टा का जो समस्त चलचित्र का निर्माता व प्रस्तुतकर्ता है, उसका साक्षात् अंश भी होता है। **सद्‌गुरु का**

सान्निध्य स्वयं में उत्सव है। प्रारब्ध से बँधे नीरस जीवन के चलचित्र में सद्‌गुरु अकारण कृपा करके एक सरस, उन्मादित, हर्षित, विस्मृत, रुकावट डाल कर अभावमय आनन्द की ओर ले जाता है। It is the sweet, enforce and deliberate interruption in the routine, depressive film of life introduced by सद्‌गुरु। **सद्‌गुरु हमारे प्रारब्ध से बँधे जीवन की चलती हुई फिल्म के दौरान रुकावट डालकर हमें अचल व अदृश्य पर्दे की उपस्थिति के प्रति जाग्रत कर देता है।** इसके बाद जैसा जीवन होता है, वह कल्पनातीत एवं दिव्य ही होता है। वह ईश-सृष्टि होती है।

अचल पर्दा जीवात्मा का अपना अभावमय स्वरूप है, जिसने किसी चलचित्र को कोई भाव नहीं दिया। इस मानस रूपी पर्दे पर महत्त्वपूर्ण, विशेष व अत्यन्त महत्त्वपूर्ण, कम महत्त्वपूर्ण, अप्रिय, तनावपूर्ण आदि दृश्यों की भरमार रहती है। पर्दे के लिए सब समान होते हैं, क्योंकि स्वयं अदृश्य रह कर वह हर दृश्य की प्रस्तुति निर्लिप्त भाव से करता है। पर्दा सबका दृष्टा भी है। जो चलचित्र पर्दे पर चलता है, वह पहले से Recorded होता है, पर्दे ने उसका निर्माण नहीं किया। पर्दे ने अपनी पूर्ण **उपस्थिति**, **अदृश्यता** एवं **अचलता** में चलचित्रों के विभिन्न पहलुओं की प्रस्तुति निर्लिप्त भाव से की। पर्दा किसी भी दृश्य को छोड़ता नहीं और सम्पूर्ण प्रस्तुति का दृष्टा होते हुए भी पूर्णतः, सम्पूर्णतः अप्रभावित रहता है। सद्‌गुरु कहता है, कि ''तू कितनी भी Turn over कर ले, तेरी Over turn एक ही है। जब तेरी Turn Over हटेगी, तो तेरी Over turn पर्दा है। जीते जी चलती जीवन रूपी फिल्म में अपनी देह का तू कोई ऐसा तत्त्व अधिगृहीत कर, जो तुझे पर्दे की स्मृति दिला दे। तेरी हर क्रिया-प्रक्रिया और सब कुछ अचल पर्दे की वजह से है, लेकिन दृश्य का संचालक, निर्माता पर्दा नहीं है। हर दृश्य पहले से Recorded है। पर्दे पर मात्र प्रस्तुति होती है। पर्दे ने चराचर जगत सहित तेरे जीवन (एक सहित अनेकानेकों) का प्रत्येक पहलू देखा है। मानव-देह तुझे प्रारब्धवश मिली है, तू स्वयं प्रारब्धवश है। जब इस **'वश'** से तू विवश होकर आर्तनाद करेगा, तो वह परम कृपालु ईश्वरीय सत्ता प्रारब्ध

के चलते चलचित्र का दिव्य रूपान्तरण कर देगी। तेरा जीवन उत्सवमय और उत्साहपूर्ण हो जाएगा और तू निर्लिप्त भाव से प्रत्येक दृश्यमान विधा का रसास्वादन ही करेगा।''

आत्मानुसंधान, आत्मान्वेषण एवं जागृति के लिए मानव-देह मिली है। सद्गुरु के सद्-निर्देशन में हुए पुरुषार्थपरक प्रकरणों से मिली आनन्द की अनुभूति ही उनका **'सुफल'** है। **'सुफल'** मानस का आनन्द है, जो उत्सव और विभिन्न भौतिक विधाओं की लब्धि बनकर प्रकट होता है, **अन्यथा 'आत्मज्ञान' बनकर प्रकट होता है।** वास्तविक **'सुफल'** आत्मज्ञान ही है जो किसी भी उत्साही महामानव की लब्धि है।

''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(23 जून से 6 जुलाई 2011)

प्रदर्शन

कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों की साकार एवं निराकार सृष्टि में समस्त प्रदर्शन के नेपथ्य में एक ही अदृश्य कलाकार (ईश्वर) की विभिन्न बहुआयामी एवं स्वयं में अदृश्य कलाएँ, असंख्यामी होते हुए दृश्यमान हैं। हर पल, हर क्षण सतत् परिवर्तित होता हुआ यह प्रदर्शन उस अदृश्य की पहुँच और सान्निध्यता के लिए ही है। **दर्शन पर दर्शन=प्रदर्शन।** इस प्रदर्शन से हम मानव ही उस अदृश्य ईश्वरीय सत्ता को जान सकते हैं। हम जान सकते हैं, कि इस प्रदर्शन में हम एक रेत का कण, एक घास का तिनका, अपनी देह का एक रोम, एक बाल, एक नाखून, एक अंश भी नहीं बना सकते। हम नकली फूल बना सकते हैं, लेकिन उसमें खुशबू नहीं भर सकते। हम सभी मानव मान्य मान्यता अथवा अमान्य मान्यता के आधार पर किसी न किसी रूप, स्वरूप, अरूप, नाम, अनाम, साकार, निराकार में परमात्मा के अस्तित्व को मानते हैं अथवा अनुमान लगाते हैं।

अनुमान, मानव लगाता है और मानव ही अनुमान लगाता है। मानव प्रदर्शन से अनुमान लगाता है और उस अदृश्य सत्ता को मानता है। कला का प्रदर्शन तो सभी देखना पसन्द करते हैं, कुछ की उन कलाओं को सीखने और विकसित करने में रुचि हो जाती है। कुछ विरले मानवों को कला के दर्शन और प्रदर्शन से परे उस कलाकार के सान्निध्य और समीपता की दीवानगी हो जाती है। मात्र मानव ही प्रदर्शन में मात्र परमात्मा के होने को मानकर, जान सकता है। अपनी मान्यता अथवा अनुमान के आधार पर उस अदृश्य ईश्वरीय सत्ता का दिग्दर्शन एवं अनुभूति भी मात्र मानव ही कर

सकता है। मानव ही दृश्यमान प्रदर्शन के कण-कण में उस अदृश्य सत्ता को स्थापित-प्रस्थापित करता है।

प्रभु की सम्पूर्ण कलाओं के दर्शन, प्रदर्शन, स्वयं प्रभु के दिग्दर्शन एवं जीवात्मा की प्रतिनिधि एक **'मानव-देह'** है। उस अदृश्य ईश्वर को भी दृश्यमान करने की सक्षमतापूर्ण **'मानव-देह'** से प्रभु ने जीवात्मा को नवाजा है। **'मैं'** स्वयं में चेतना है और शब्द ब्रह्म है, लेकिन इसका प्रकाट्य किसी भी **जीवित, जाग्रत** और **जानवित** (नाम-रूप में जानी गई) **जो, जब, जहाँ, जैसी** मानव-देह है, अवचेतना में उसका प्रतिनिधित्व करता है और यहीं **जीवात्मा ('मैं') जीव-कोटि** के **माया-जाल में जकड़ा** जाता **है**। वह देह विशुद्ध चेतन **'मैं'** (जीवात्मा) का प्रतिनिधित्व नहीं करती। मानव-देह में दशानन गतिमान आन्तरिक कार्य प्रणालियों का सुचारु संचालन मानवीय बुद्धि के हस्तक्षेप से अस्तव्यस्त हो जाता है। मानव के अहं, दुर्बुद्धि, तुच्छ वासनाओं, व्यसनों, व्यस्तताओं एवं अस्त-व्यस्तताओं के कारण ईश्वरीय सृष्टि की यह सर्वोत्कृष्ट सुकृति (मानव देह) अपना यथार्थ (यथा+अर्थ) खोकर निरर्थ, व्यर्थ और अनर्थ की अन्तहीन जीव-सृष्टि के स्वनिर्मित मायाजाल में उलझी रहती है। इसका एकमात्र कारण यह है, कि **'मैं'** शब्द का प्रकाट्य एक जीवित एवं जाग्रत मानव-देह के तनिक अवलम्बन के बिना नहीं हो सकता और मानव-देह की सक्रियता, अर्थहीनता, सार्थकता, निरर्थकता, व्यर्थता, अनर्थता, **'सब कुछ'** एवं **'कुछ नहीं'** की पुष्टि, प्रामाणिकता एवं सत्यापन **'मैं'** शब्द के प्रकाट्य द्वारा ही होता है।

अवचेतना में **'मैं'** देह का प्रतिनिधित्व करती है और चेतना में मानव-देह विशुद्ध **'मैं'** (जीवात्मा) का प्रतिनिधित्व करती है। वह देह भी जीवात्मा की तरह जन्म-मृत्यु, जरा, देश, काल, धर्म, कर्म, कर्तव्य, सम्बन्ध, लिंग, माया के तीनों गुण, सुख-दुःख, रोग-दोष, लाभ-हानि, आधि-व्याधि-उपाधि, उन्नति-अवनति, मान-अपमान, ईर्ष्या-द्वेष, पाप-पुण्य, वैर-वैमनस्य, मर्यादा- अमर्यादा, रीति-नीति, इच्छा-आकांक्षा, भावना-सम्भावना और सब कुछ से परे होती है। कृपया एकाग्र करिए।

दृश्यमान प्राकट्य में यदि **'मैं'** नाम-रूप की देह के साथ तद्रूपता में सन्देहयुक्त व भ्रमित है, तो **'मैं'** शब्द, जीवात्मा का नहीं, एक नाम-रूप की देह का प्रतिनिधित्व करता है और वह देह यथार्थ (यथा+अर्थ) नहीं, अन्यार्थ जीव-सृष्टि के मायाजाल में फँसी होती है। जीवात्मा के लिए गर्वित एवं **'यथार्थ'** देह प्रकट होती है। वह मानव-देह गर्भित (Conceptual) नहीं होती। गर्भित देह सद्गुरु द्वारा कराए गये प्रकरणों एवं उसकी कृपा से नाम-रूप से परे होते हुए यथार्थ हो जाती है। मैं आज अति दुर्वह अध्यात्म विद्या के परम गोपनीय एवं मात्र श्रुतिगम्य विषय को अति सरल, सुबोध एवं सहज ग्राह्य शैली में आप जिज्ञासुओं की जिज्ञासावश अनावृत कर रहा हूँ।

देह सहित समस्त चराचर जगत का प्राकट्य अदृश्य स्रष्टा की बहुआयामी कलाओं का असंख्यामी प्रदर्शन है और स्वयं में ईश्वर का चरित्र है। चरित्र का चित्रण करने के लिए प्रदर्शन में सतत् गतिशीलता एवं परिवर्तन अत्यावश्यक है, अन्यथा **चरित्र-चित्रण 'चित्र'** बनकर रह जाएगा। यदि दृश्यमान प्रदर्शन चेतन और आनन्द के समन्वय से प्रकट हुआ है, तो वह **'सद्'** होगा और उसमें हर परिवर्तन सदासद् होगा। इस समस्त प्रदर्शन में जो अप्रकट है, वह उस **'सद्'** का दर्शन है। दृश्य और अदृश्य का समन्वय ईश्वर है। ईश्वर सच्चिदानंद है। चेतन और आनन्द अदृश्य हैं और **'सद्'** प्रदर्शन है, जो दृश्यमान है। यदि यह प्रदर्शन न होता, तो अदृश्य का दर्शन कैसे होता?

हर दृश्य के नेपथ्य में चेतन और आनन्द है। यह प्रदर्शन या **'सद्'** प्राकट्य जो, जब, जहाँ, जैसा दृश्यमान है, वह चेतन और आनन्द के होने का **'प्रमाण'** है तथा दोनों के समन्वय का **'परिणाम'** है। इसे **'प्रणाम'** करके चेतन और आनन्द की अनुभूति होती है। यह अनुभूति स्वयं अपना **'प्रमाण'** एवं **'परिणाम'** है। सद्गुरु किसी भी प्रकार से समाधि स्थिति में ले जाता है। समाधि स्थिति, चेतन और आनन्द का ध्यान है और स्वयं में स्थित्यातीत स्थिति का प्राकट्य है। जहाँ चेतन और आनन्द होगा, वहाँ दोनों में समन्वय ही होगा और प्राकट्य सद् ही होगा। योगी जब एकान्त अथवा ध्यान में होता

है, वहाँ चेतन और आनन्द ही होता है। वहाँ कोई दृश्य नहीं होता। उसका ध्यान से उठना **'सद्'** है। दृश्यमान **'सद्'** का अदृश्य-दर्शन चेतन और आनन्द है। तीनों स्वयं में इतने गुँथे-मुँथे हैं, कि दृश्य द्वारा अदृश्य का ही दर्शन होता है। **'सद्'** को देखने के लिए **'सद्'** दृष्टि चाहिए, जिसकी दृष्टि सद् नहीं है, उसके लिए यह दृश्यमान जगत प्रदर्शन नहीं, कभी न सुलझने वाला प्रश्न है।

इस सद् की अनुभूति के लिए हमें सद्गुरु के सद् निर्देशन में अपनी सुषुप्तावस्था एवं उसमें देखे गए स्वप्न पर एकाग्र चित से विवेक बुद्धि द्वारा चिन्तन एवं मनन करना होगा। स्वप्न की तथाकथित मेरी वह एक देह नाम-रूप में जानवित है एवं निद्रा से उठकर उसी एक व्यक्ति को सम्बोधित करके एवं उसी एक देह को **'मैं'** मानकर **'मैं'** स्वप्न में घटी कोई भी सुखद अथवा दुःखद घटना सुनाता हूँ, कि मुझे ऐसा स्वप्न आया। मैं विचार करूँ, तो पाता हूँ, कि स्वप्न का सम्पूर्ण दृश्य मैंने 'मैं देह हूँ' सन्देह में देखा। उसमें मैं प्रकट होकर जगत सहित एक देह रूप में **भी** था और सम्पूर्ण परिदृश्य का आधार देह रूप में **'मैं' ही** था। क्योंकि उस देह के स्वप्न से हटते ही स्वप्न समाप्त हो गया। वह जो, जब (किसी भी समय) भी, जहाँ (किसी भी स्थान) भी, जैसी (किसी भी स्थिति) भी नाम-रूप में जानवित देह थी, वह मायाजाल में जकड़ी हुई थी। **'मैं'** उसके साथ तद्रूप सा होकर अपनी अवचेतना (मैं देह हूँ) एवं सन्देह में उसका प्रतिनिधित्व करता हूँ। मेरी दृष्टि सब कुछ सन्देह में देखती है। मेरी हर सोच Doubt में होती है। जब भी मैं नाम-रूप में जानवित व्यक्ति रूप में दृष्टा होता हूँ, तो हर दृश्य मेरे लिए सन्देहयुक्त ही होता है। हर निर्णय doubtful और हर कृत्य या अकृत्य, प्राप्ति-खोना full of doubts होता है। इसीलिए दृष्टा असम्यक् और दृष्टि व दृष्टिकोण भी असम्यक् होते हैं।

किसी भी देह में, देह का प्रतिनिधित्व रूप या चेहरा करता है। उसका एक नाम रखा जाता है और उस देह को उस रखे गए नाम से पुकारा जाता है, पहचाना जाता है, दुत्कारा जाता है, सत्कारा जाता है, पुचकारा जाता है

और डाँटा जाता है। शनैः शनैः वह नाम उस देह (रूप) का अधिग्रहण कर लेता है और वह देह नाम से पहचानी ही नहीं जाती, बल्कि वह **'नाम'** ही हो जाती है। एक नाम एक देह का है, जो पहले अनाम थी। वह देह जब भी है, जगत के साथ ही है। **'मैं'** शब्द के प्रकाट्य के लिए एक जीवित व जाग्रत मानव-देह का तनिक अवलम्बन लेना पड़ता है। देह के होने और जगत में किसी होने या न होने, अच्छे-बुरे, छोटे-बड़े, पापी-पुण्यी होने का प्रमाण एवं सत्यापन भी **'मैं'** द्वारा किया जाता है। बिना मानव-देह के अवलम्बन के **'मैं'** शब्द प्रकट नहीं हो सकता और **'मैं'** शब्द के प्रकट हुए बिना जगत सहित देह एवं देह सहित जगत की किसी भी विधा को प्रमाणित नहीं किया जा सकता।

'मैं देह हूँ', 'मैं देह नहीं हूँ', 'मैं हूँ, 'मैं देह रूप में हूँ' कुछ भी कहने, अपने ज्ञान व अज्ञान को प्रकट करने के लिए देह चाहिए। देह सहित जगत के होने और वह कैसा लगा इसका अधिपत्य **'मैं'** के पास है और एक देह का अधिग्रहण **'नाम'** द्वारा है। देह जब होती है, तो जगत सहित ही होती है। सम्पूर्ण जगत एक देह का विराट है। इस विराट का सम्राट व स्वामी अदृश्य ईश्वर है और दृष्टा अदृश्य जीवात्मा है। मानव-देह के साथ नाम-रूप में **'मैं'** की तद्‌रूपता हुई। एक जीवन-काल में **'नाम'** एक ही रहता है और **'मैं'** वही रहती है। देह की अवचेतना में मुझे देह सहित जगत की अवचेतना होती है। सुषुप्तावस्था में मुझे देह की अवचेतना नहीं होती **'अतएव'** जगत की अवचेतना भी नहीं होती। निद्रा से उठते ही मुझे देह **'अतः'** जगत की अवचेतना हो जाती है। जब **'मैं'** देह होता हूँ, तो मैं अवचेतना में ही होता हूँ। इस अवचेतना में जो-जो मुझे ज्ञात व अज्ञात है उसे अंग्रेज़ी में Awareness कहते हैं। चेतना के लिए अंग्रेज़ी में कोई शब्द नहीं है।

परम विरक्त एवं अखण्ड आनन्दमय मानस (ब्रह्मात्मा) में 'एकोऽहम् बहुस्याम्' भाव का अभ्युदय होते ही एक सद् संकल्प प्रकट हो जाता है और अदृश्य अद्वैत में परमात्मा और जीवात्मा दो विधाओं के रूप में अदृश्य 'द्वैत' सा प्रकट हो जाता है। परमात्मा और जीवात्मा दोनों अदृश्य हैं और परस्पर

गुथे-मुथे हैं। परमात्मा स्रष्टा है और जीवात्मा **'एक से अनेक और अनेकों में एक'** दृष्टा है। माँ जगदम्बा विरक्त शिव की आसक्ति है और आसक्ति को, विरक्त शिव की ही आसक्ति है। विरक्ति की आसक्ति भी स्वयं में विरक्ति ही है। क्रीड़ा के लिए यह अदृश्य अद्वैत में अदृश्य द्वैत सा है। शिव परम विरक्त आनन्दमय एवं अभावमय मानस है। उसमें **'एकोऽहम् बहुस्याम्'** का भाव शिव की आसक्ति (माँ भवानी) की इच्छा से उठा। इस शिव-शक्ति-क्रीड़ा के आनन्द का प्रकाट्य कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों की यह युगों-युगान्तरों की त्रिगुणमयी मायिक प्रदर्शनी है। इस समस्त प्रदर्शनी का संघनित स्वरूप एवं प्रतिनिधि एक मानव-देह है।

दृश्यमान सृष्टि में माया के तीनों गुणों में जीव जन्मों-जन्मान्तरों के कल्पित काल-चक्र में फँसा रहता है। परमात्मा और जीवात्मा दोनों अदृश्य और त्रिगुणातीत हैं। पंच-महाभूतों की माया में तीनों गुण प्रपंचमय प्रदर्शन में हैं। गुणातीत पृथक् है और गुणाभाव (गुणों का अभाव) पृथक् है। गुणाभाव तामसी है। तमोगुण जब गुण छोड़ देगा, तो तामसी हो जाएगा। इसी प्रकार सतोगुण और रजोगुण जब गुण छोड़ देंगे, तो तामसी हो जाएँगे। सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण तीनों गुण हैं। इन तीनों गुणों से समस्त चराचर दृश्यमान सृष्टि का निर्माण, पालन एवं संहार होता है। लेकिन जब ये अपने सहज गुणों का त्याग कर देते हैं, तो प्रेत, भूत, डाकिनी, शाकिनी आदि तामसी रूपों में दृश्यमान होते हैं। सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण में गुणाभाव होने पर **'अवगुण'** दृश्यमान होते हैं। किसी का विध्वंस अथवा अहित करने के लिए की गई भागदौड़ (रजोगुण) अवगुण है। सत, रज, तम गुण घातक नहीं हैं, इन गुणों का अभाव घातक है। गुणातीत मात्र परमात्मा और जीवात्मा है।

देह की तद्रूपता में **'मैं'** अवचेतना में ही होगी। उस अवचेतनामयी **'मैं'** को मानसिक रूप से, ध्यान में एकाग्रता द्वारा देह का दहन करना होगा। सद्गुरु-कृपा से हुए इस प्रकरण में जब देह की भस्मी से **'मैं'** आत्मसात् होगा, तो उसकी आत्म स्वरूप की स्मृति जाग्रत हो जाएगी। उस

तत्त्वातीत तत्त्व **'भस्मी'** से आत्मसात् होने में विभूत्यातीत विभूति विरक्ति (कुछ नहीं) जाग्रत हो जाती है। यदि ध्यानावस्था में उसमें एकाग्रता हो गई, तो देह में एक प्रतिक्रिया होगी। वह **देह 'मैंमयी'** होकर सम्पूर्ण प्रदर्शन के साथ ईश्वर की समस्त कलाओं के दर्शन का रसास्वादन भी कराएगी। जो जीवित व जाग्रत देह मानसिकता द्वारा प्रेरित व संचालित थी, वह विरक्त आनन्दमय मानस द्वारा निर्देशित होगी। पहले **'मैं'** सन्देह में उस जीवित, जाग्रत, जानवित जो, जब, जहाँ, जैसी भी देह थी, उसका प्रतिनिधित्व कर रहा था, अब वह देह **'नाम-रूप'** खो कर स्थिति, समय और स्थान से परे स्थित्यातीत स्थिति में स्वयं जीवात्मा का प्रतिनिधित्व करती है। **'मैं'** (जीवात्मा) और **'तू'** (परमात्मा) एक ईश्वर ब्रह्मात्मा की दो अभिन्न विधाएँ हैं। इसलिए **'मैं'** (जीवात्मा) का प्रतिनिधित्व करने वाली वह देह **'तू'** (परमात्मा) का भी प्रतिनिधित्व करेगी।

'भस्मी रहस्य' स्वयं में प्रभु का रहस्य है। भस्मी में उस समस्त प्रदर्शन का अन्त हो गया, जिसका दृश्यमान जीवित प्राणयुक्त मानव-देह प्रतिनिधित्व कर रही थी। प्रदर्शन में माया की सतोगुणी, रजोगुणी, तमोगुणी तीनों विधाएँ निर्माण, पालन और संहार सहित हैं। प्रदर्शन के अन्त के अन्त का अन्त (भस्मी) **'दर्शन'** का आरम्भ है। **'दर्शन'** का अन्त स्वयं ईश्वर के दिग्दर्शन का प्रारम्भ है। इसके बाद सब कुछ **'भस्मी'** की तरह अनंत है। उसमें दर्शन, दिग्दर्शन और भक्त व भगवान के बीच विभिन्न सम्बन्धों में चारों मोक्ष (सायुज्य, सामीप्य, सालोक्य, सारूप्य) हैं। दर्शन की पकड़ और **'भक्ति'** के लिए भस्मी या विरक्ति चाहिए। सबका मूल भस्मी रूप में विरक्ति है। **'भस्मी'** की अवधारणा द्वारा अनासक्त होते ही समस्त आसक्तियाँ एक विरक्ति में समाहित हो जाती है। विरक्ति में **'आसक्ति'** का सदा के लिए अन्त हो जाता है। विरक्ति अनादि-अनन्त है।

युगों-युगान्तरों में विस्तृत कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों की साकार, निराकार सृष्टि के दृष्टव्य एवं रसास्वादन के लिए परमात्मा ने दृष्टा जीवात्मा को अपनी सृष्टि की सर्वोत्कृष्ट, विलक्षण, परम रहस्यमयी, अति

चमत्कारिक सुकृति मानव-देह दी है। देहान्त, प्रदर्शन का अन्त त्रिगुणमयी देह का शव है, लेकिन इस अन्त के अन्त का अन्त (अन्तान्तान्त) भस्मी है और यही प्रदर्शनी का प्रारम्भारम्भारम्भ भी है। भस्मी देहातीत, गुणातीत, मायातीत एवं प्रपंचातीत है। **'भस्मी'** अदृश्य विरक्ति के रूप में दृश्यमान सृष्टि के सम्पूर्ण प्रदर्शन में छिपी रहती है। विरक्ति के भस्मी रूप में दृश्यमान होते ही प्रदर्शन अदृश्य हो जाता है। सद्गुरु कहता है, कि '' **'सब कुछ'** है, लेकिन वास्तव में **'कुछ नहीं'** है। यदि तेरे पास तेरा **'कुछ नहीं'** (विरक्ति) नहीं होगा, तो इस **'सब कुछ'** के **माया जाल** में फँस जाएगा। जिसने इस इन्द्रजाल को भाव दे दिया, उसे किसी लब्धि का भोग नहीं मिलता। क्योंकि वह लब्ध को उपलब्ध करता रहता है।''

'मैं देह हूँ' एक मानसिकता है, जिसमें देह धारित ही होती है। इस धारणा में नाम-रूप में जानवित, जीवित व जाग्रत देह जो, जब, जहाँ, जैसी भी होती है, उसकी निर्धारणा हो जाती है। देह सहित जगत में **'सब कुछ'** **'कुछ नहीं'** (विरक्ति) से प्रकट होकर **'कुछ नहीं'** में चलता है और **'कुछ नहीं'** में समाहित हो जाता है। **'कुछ नहीं' मेरा** (जीवात्मा का) है। **'सब कुछ'** परमात्मा का है। प्रभु ने इस **'कुछ नहीं'** की प्रतिनिधि **'भसम'** कृपा करके माया के **'सब कुछ'** में दिखा दी है। जो न केवल देह सहित जगत में **'सब कुछ'** का **'अर्थ'** है, बल्कि जीवात्मा (**'मैं'**) के लिए दृश्यमान **पदार्थ** रूप में उसके **'पद'** का अर्थ भी है।

'मैं' और **'भस्मी'** दो तत्त्व ऐसे हैं, जो हमेशा वैसे के वैसे रहते हैं। **'मैं'** स्वर है, शब्द रूप में सुना जा सकता है। **'मैं'** को देखा, सूँघा, चखा और छुआ नहीं जा सकता। **'मैं'** को भी **'मैं'** के प्रकट होने के बाद ही सुना जा सकता है। तभी ज्ञानेन्द्रियाँ देखेंगी, सुनेंगी, सूँघेंगी, चखेंगी और स्पर्श करेंगी और वाणी द्वारा वर्णन होगा, कि सब कुछ कैसा लगा। इन्द्रियों से अनुभव करके भावाभिव्यक्ति वाणी द्वारा शब्दों में होती है। **'मैं'** लगने पर ही सृष्टि के प्राकट्य का कार्यक्रम प्रारम्भ होता है। निर्माण, पालन एवं संहार इस प्राकट्य की तीन विधाएँ हैं, जो समानान्तर दशानन स्वरूपों में चलती रहती हैं।

शब्द ब्रह्म भी है और शब्द भ्रम भी है। दृष्टा जीवात्मा, जीव कोटि में **'मैं'** देह हूँ की धारणावश भ्रमित व सन्देहयुक्त है, तो **मैं** शब्द **'भ्रम'** है। जो, जब, जहाँ, जैसी भी देह है, उसमें **'मैं'** वैसी की वैसी है, जो जीवित व जाग्रत मानव-देह के तनिक अवलम्बन से प्रकट होती है और प्रदर्शन के शुभ्भारम्भ की घोषणा एवं प्रमाण है। उसमें निरन्तरता सन्देह की है, कि मैं देह हूँ। **'भस्मी'** का प्रकाट्य दृश्यमान प्रदर्शन के अन्त के अन्त के अन्त का द्योतक है। मध्य में भी समस्त खेल **'मैं'** और **'भस्मी'** का है। **'मैं'** शब्द रूप में दृष्टा जीवात्मा का प्रतिनिधि है और भस्मी **'विरक्ति'** रूप में स्रष्टा की प्रतिनिधि है। दोनों का मिलन ही युगों-युगान्तरों की समस्त प्रदर्शनी का उद्देश्य है। युगों-युगान्तरों के समस्त प्रदर्शन के इस महारहस्य को अनावृत करने के लिए **'मैं'** आपको सिनेमा हाल में चलती हुई फिल्म का दृष्टान्त दूँगा, कृपया एकाग्र करें।

'भस्मी' मानव-जीवन रूपी फिल्म का सफेद पर्दा है। प्रत्येक फिल्म सफेद पर्दे पर दृश्यमान होती है। चलती हुई पिक्चर के दौरान वह सफेद पर्दा अदृश्य ही रहता है। रात्रि का कोई दृश्य हो, तो भी पर्दा नज़र नहीं आता और फिल्म का हर दृश्य पहले से ही Recorded होता है। पर्दा स्वयं में अभावमय है। पर्दा कहीं आता-जाता नहीं और उसमें कोई परिवर्तन नहीं आता, फिल्में बदलती रहती हैं। पर्दा स्थिर व अपरिवर्तनीय है। फिल्म शुरू होने से पहले पर्दा दृश्यमान था, फिल्म के दौरान पर्दा अदृश्य रूप में फिल्म से ढका रहता है और फिल्म के पूर्णतः समाप्त और **'समाप्त'** के समाप्त होने पर पर्दा पुनः दृश्यमान हो जाता है।

हमारा जीवन प्रारब्धानुसार चलता है। जब हम होश सम्भालते हैं तब तक हमारी जीवन रूपी पिक्चर शुरू हो चुकी होती है। उसके बहुत से परिदृश्य निकल चुके होते हैं। माँ के गर्भ में नौ महीनों में देह का निर्माण, शिशु देह का जन्म और वह फिर चार-पाँच वर्षों में होश सम्भालता है तथा माता-पिता और बाहरी परिदृश्य को पहचानता है। अतः संसार नाट्यशाला की फिल्म शुरू हो चुकी होती है। इसके बाद मानव-देहधारी कुछ पढ़ाई-लिखाई, डिग्रियाँ आदि लेता है, युवा होते-होते शादी-विवाह आदि

होता है। बच्चे पैदा होते हैं, उनका पालन-पोषण करते-करते वृद्धावस्था आ जाती है। अतिवृद्धावस्था होते हुए एक दिन देहान्त हो जाता है। देहान्त किसी भी अवस्था में हो सकता है क्योंकि शैशव और शव ही किसी मानव देह की सुनिश्चित अवस्थाएँ हैं। मध्य में किसी भी अवस्था की गारण्टी नहीं है। देहान्त में जीव के लिए जीवन रूपी फिल्म समाप्त नहीं होती, क्योंकि कुछ न कुछ भविष्य की योजनाएँ-परियोजनाएँ आदि अन्तिम साँस तक होती हैं। अतः चलती फिल्म के दौरान ही वह संसार रूपी सिनेमा हाल से बाहर निकाल दिया जाता है। जीवन में प्रविष्टि चलती फिल्म के दौरान होती है और हर कोई जीते जी ही मरता है। उसने कभी संसार रूपी सिनेमा हॉल का सफेद पर्दा बनाम अपनी देह की भस्मी देखी ही नहीं।

सिनेमा हॉल के पर्दे पर बहुत खून-खराबा, दौड़-भाग, मार-धाड़, प्रेम-घृणा और जाने क्या-क्या होता है, वह पर्दा ज्यूं का त्यूं टस से मस नहीं होता तथा फिल्म के किसी भी परिदृश्य का उस पर कोई प्रभाव भी नहीं पड़ता। यह नहीं कि हीरो लहू-लुहान हो गया, तो पर्दा भी लाल हो गया। वह पर्दा निर्मल, श्वेत एवं स्वच्छ बना रहता है। पर्दा है, तो फिल्म की प्रस्तुति हुई और फिल्म ने पर्दे पर पर्दा डाल दिया। यही माया है। फिल्म का सबसे नज़दीकी दृष्टा पर्दा ही है। लेकिन फिल्म में यह दृष्टा दृष्टिगत नहीं होता। यदि कभी रुकावट के कारण फिल्म न दिखाई दे, तो पर्दा दिखाई देता है। देखने वालों को यह रुकावट बुरी लगती है और वे शोर मचाते हैं। कभी-कभी मध्य में किसी भी तकनीकी खराबी से अथवा अन्यथा रील कटने के कारण पर्दा नज़र आता है और फिल्म रुक जाती है। देखने और दिखाने वालों के लिए यह रुकावट खेद का विषय होती है। फिल्म में मध्यान्तर योजनानुसार होता है और रुकावट कभी भी हो सकती है अथवा की जा सकती है। यह रुकावट हो अथवा जानबूझकर की जाए, जगत में कोई भी चलती फिल्म के दौरान पर्दा अथवा अपनी भस्मी देखना नहीं चाहता।

होश सम्भालते ही फिल्म चल रही थी और चलती फिल्म में ही होश गुम हो जाती है। फिल्म मैंने न शुरू की, न चलाई, न बन्द की। **'मैं'** चलती

फिल्म के ख्यालों में ही लगातार चल रहा हूँ। फिल्म में जो मुझसे करवाया जाना है, करवा लिया जाता है। संसार में हर व्यक्ति **'जीते जी'** मरता है। **'जीते जी'** होश सम्भालता है और **'जीते जी'** जीता है। हमने कभी सफेद पर्दा नहीं देखा, जो फिल्म के हर दृश्य का स्थिर अपरिवर्तनीय दृष्टा होते हुए भी बिल्कुल अप्रभावित रहता है और निर्मल एवं शुभ्र बना रहता है। सब कुछ पर्दे पर होता है और पर्दे को कुछ नहीं होता। फिल्म एक प्रोजैक्टर द्वारा पर्दे पर प्रस्तुत की जाती है। प्रोजैक्टर से रोशनी की किरणें आती दिखाई देती हैं। उस रोशनी में कोई आकार नहीं होते, कोई निराकार पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश, वायु आदि नहीं होते, लेकिन पर्दे पर असंख्य आकार बनते, भागते-दौड़ते तथा विभिन्न भावाभिव्यक्ति करते नज़र आते हैं। रील में अंकित सब कुछ के Projection को पर्दा प्रकट करता है। उन स्थितियों, परिस्थितियों की प्रस्तुति भी पर्दे पर होती है जिनमें Recording हुई। यदि फिल्म चल रही है, तो इस प्रकाट्य का प्रमाण पर्दा है।

जीवन रूपी फिल्म में जब हमारी प्रविष्टि हुई, तो ट्रेलर आदि निकल चुके थे और फिल्म शुरू हो चुकी थी। जन्म दिवस मनाते हैं लेकिन जन्म होते किसी ने नहीं देखा। जब मृत्यु हुई, तो फिल्म समाप्त नहीं हुई, क्योंकि जीते जी मरा और जन्म के समान मृत्यु भी किसी ने नहीं देखी। यह सफेद पर्दा मेरा आत्म-स्वरूप जीवात्मा है, जो अभावमय **'मा न स'** है और जिस पर जीवन रूपी कोटि-कोटि बह्माण्डों का **'स न मा'** (सिनेमा) चलता है। 'मा न स' को उल्टा करें, तो इस 'स न मा' (सिनेमा) का दृष्टा मैं हूँ, मैं था और मैं ही रहूँगा। ये **'था'**, **'हूँ'** और **'गा'** भी चलचित्र की सापेक्षता में कहता हूँ। जब इस सिनेमा का अन्त और अन्त का अन्त (समाप्त) तथा अन्तान्तान्त (समाप्त की समाप्ति) होगा, वह सफेद पर्दा (भस्मी का प्रकाट्य) आएगा और मैं नहीं देखूँगा, क्योंकि हर जन्म में **'मैं'** जीते जी मरा हूँ। कोई जब चल बसता है, तो वह अपने समस्त कार्यक्रमों और सिस्टम के साथ ही होता है। उसे नहीं मालूम, कि वह मर गया है जिस प्रकार सोते हुए यह मालूम नहीं होता, कि मैं सो रहा हूँ।

सिनेमा के पर्दे और अभावमय मानस रूपी पर्दे में अन्तर है। यदि मानस रूपी पर्दा चेतन और आनन्द स्वरूप चेतनानन्द है, तो उस समन्वय का प्रकाट्य **'सद्'** ही होगा। यह मानस रूपी श्वेत पर्दा सम्पूर्ण चराचर सृष्टि का एक ही है—लड़ाई, प्रेम, घृणा, राग, द्वेष, आँधी-तूफान सब कुछ एक ही पर्दे पर प्रकट होता है। सभी का सबसे नज़दीकी दृष्टा होते हुए भी यह मानस रूपी पर्दा किसी भी फिल्म अथवा फिल्म के विविध बहुआयामी दृश्यों के असंख्यामी प्रदर्शन में लिप्त नहीं है। पर्दा अदृश्य होगा, तो फिल्म दृश्यमान होगी। पर्दा स्थिर है, अदृश्य है और अपरिर्वतनीय है। समस्त भागदौड़ उस (स्थिर) पर ही होती है। स्थिर पर समस्त अस्थिरता और सतत् परिवर्तनीयता चलती है। आत्म-चिन्तन सफेद पर्दे रूपी अभावमय मानस का चिन्तन है। समस्त दृश्यमान जगत की प्रस्तुति पर्दे पर, पर्दे की वजह से और पर्दे के लिए होती है। बिना पर्दे के वहाँ निर्माण, पालन और संहार के किसी भी दृश्य का प्रकाट्य नहीं हो सकता। पर्दे की प्रस्तुति के प्रकाट्य के लिए तैयार होने का प्रमाण **'मैं'** शब्द का प्रकाट्य है। **'मैं'** शब्द के प्रकाट्य के लिए अभावमय मानस रूपी पर्दे पर जीवित व जाग्रत एक मानव देह का होना आवश्यक है।

'सब कुछ' देखने के दौरान हम **'कुछ नहीं'** देखना नहीं चाहते। रात्रि की निद्रा की प्रस्तुति हमारे लिए मध्यान्तर होता है रुकावट नहीं, क्योंकि निद्रा से उठते ही हमारी जीवन रूपी फिल्म वहीं से शुरू हो जाती है। अतः निद्रा से उठ कर चलती फिल्म से आँखें बन्द करके साधक घ्यान में रुकावट डालता है। सद्गुरु कृपा से दैवीय हस्तक्षेप फिल्म के प्रदर्शन में सद् रूप में प्रकट होता है। योगी मानव-देह द्वारा सम्पूर्ण जगत की फिल्म के चलते-चलते ध्यान में पर्दे पर एकाग्र करता है। फिल्म के चलते-चलते हठपूर्वक रुकावट डालकर फिल्म से ध्यान हटाकर मानस रूपी पर्दे पर ध्यान केन्द्रित करता है। वह अपनी इन्द्रियों को बाह्य जगत से मोड़कर अन्तर्मुखी करता है और ध्यान लगाने के लिए उसका ध्येय देह के निश्चित, परिलक्षित व दर्शित भविष्य **'भस्मी'** से आत्मसात् होना होता है। **'भसम'**

चेतन तत्त्व है अतः ध्यान में इस चेतन तत्त्व की अवधारणा से आनन्द का प्रस्फुटन होने लगता है। आनन्द का प्रस्फुटन होते ही चेतन और आनन्द में समन्वय होता है। योगी का ध्यान से उठना **'सद्'** का प्रकाट्य है। दृश्यमान देह के रहते यह **'भस्मी'** देहातीत है, अतः अदृश्य विरक्ति का प्रतिनिधित्व करती विभूत्यातीत विभूति है। यह विरक्ति ही सौन्दर्य, ज्ञान, शक्ति, ऐश्वर्य एवं ख्याति आदि विभूतियों का मूल स्रोत एवं परमात्मा का स्वरूप है।

हवन-यज्ञ प्रकरणों में हम ईश्वर की समस्त विभूतियों का दर्शन करते हैं। भस्मी **'यज्ञ'** का स्थिर एवं स्थाई तत्त्व है। लपटें उठती हैं, प्रचण्ड होती हैं, शान्त होती हैं। धूना बढ़ता है, धूना शान्त होता है और समस्त प्रकरण के दौरान भस्मी अविरल कभी कम, कभी ज्यादा मात्रा में बढ़ती रहती है। अन्ततः प्रकट रूप में भस्मी ही रहती है। **'भस्मी'** देहातीत है, लेकिन देह का अर्थ है। सद्गुरु के निर्देशन में इस **'अर्थ'** को अधिगृहीत करने की सुचेष्टा व योजना **'यजन'** है और यही मानव-जीवन का **'जशन'** है। इसका कार्यान्वयन पुरुषार्थ का प्रथम सोपान **'अर्थ'** है। भौतिक जगत में **'अर्थ'** (धन) की प्राप्ति आसक्ति को बढ़ाने वाली होती है और **'भस्मी'** रूप अर्थ की पकड़ **'विरक्ति'** का बीज है। विरक्ति के होने पर स्वतः **भक्ति** जाग्रत हो जाती है और मन निष्काम हो जाता है। प्रदर्शन व दर्शन की **कामना** नहीं रहती, मात्र प्रभु के सान्निध्य की चाहत रहती है। उस पूर्ण काम के दिग्दर्शन से पहले साधक निष्काम हो जाता है। जब उस पूर्णकाम का प्रेम मिलता है, तो वह अनुरक्ति अथवा मोक्ष है।

''बोलिए सियावर रामचन्द्र की जय''

(25 जुलाई, 10 से 15 अगस्त 2010 एवं 23 से 30 मार्च 2011)